गीता दर्शन–(भाग–7)
अध्याय—15 (प्रवचन—पहला) — मूल—स्त्रोतककी और वापसी

सूत्र—
श्रीमद्भगवद्गीता अथ पन्चदशोऽध्याय:
श्रीभगवानुवाच:

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णीनि यस्तं वेद स वेदवित्।। 1 ।।
अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गण्णप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसंततनि कर्मानुबन्धीनि मनष्यलोके।। 2 ।।
गणन्तय— विभाग— योग को समझाने के बाद श्रीकृष्ण भगवान बोले हे अर्जुन, जिसका मूल ऊपर की ओर तथा शाखाएं नीचे की ओर है, ऐसे संसाररूप पीपल के वृक्ष को

अविनाशी कहते हैं तथा जिसके वेद पत्ते कहे गए है, उस संसाररूप वृक्ष को जो पुरूष मूल सहित तत्व से जानता है, वह वेद के तात्पर्य को जानने वाला है।

उस संसार— वृक्ष की तीनों गुणरूप जल के द्वारा बढ़ी हुई एवं विषय—भोगरूप कोंपलां वाले देव मनुष्य और तिर्यक आदि योगरूप शाखाएं नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं।

तथा मनुष्य— योनि में क्रमों के अनुसार बांधने वाली अहंता, ममता और वासनारूप जड़ें भी नीचे और ऊपर सभी लोकों में व्याप्त हो रही हैं।

इस सूत्र में प्रवेश के पहले कुछ बातें समझ लेनी जरूरी हैं।

पहली बात, आधुनिक समय के बहुत—से विचारक, अधिकतम, मानते हैं कि जगत का विकास निम्न से श्रेष्ठ की ओर हो रहा है। डार्विन या मार्क्स, बर्गसन, और भी अन्य। जैसे—जैसे हम पीछे जाते हैं, वैसे—वैसे विकास कम; और जैसे—जैसे हम आगे आते हैं, वैसे—वैसे विकास ज्यादा। अतीत पिछड़ा हुआ था। वर्तमान विकासमान है। भविष्य और भी आगे जाएगा।

इस पूरी विचार—सरणी का मूल—स्रोत, उदगम को छोटा मानना और विकास के अंतिम शिखर को श्रेष्ठ मानना है। लेकिन भारत की मनीषा बिलकुल विपरीत है, और इस सूत्र को समझने के लिए जरूरी होगा।

हम मानते रहे हैं कि मूल श्रेष्ठ है। वह जो स्रोत है, श्रेष्ठ है। बिलकुल ही उलटी तर्क—सरणी है। का आदमी श्रेष्ठ नहीं है, वरन गर्भ में छिपा हुआ जो बीज है, वह श्रेष्ठ है। और जिसे पश्चिम में वे विकास कहते हैं, उसे हम पतन कहते रहे हैं।

अगर विकास की बात सच हो, तो परमात्मा अंत में होगा, प्रथम नहीं हो सकता। तब तो जब सारा जगत विकसित होकर उस जगह पहुंच जाएगा, श्रेष्ठता के अंतिम शिखर पर, तब परमात्मा प्रकट होगा। लेकिन भारतीय दृष्टि कहती रही है कि परमात्मा प्रथम है। तो जिसे हम संसार कह रहे हैं, वह विकास नहीं बल्कि पतन है। और अगर अंतिम को पाना हो, तो प्रथम को पाना होगा। और हम उससे ऊंचे कभी भी नहीं उठ सकते, जहां से हम आए हैं। मूल—स्रोत से ऊपर जाने का कोई भी उपाय नहीं।

इसलिए जब कोई व्यक्ति अपनी जीवन की श्रेष्ठतम समाधिस्थ अवस्था को उपलब्ध होता है, तो एक छोटे बच्चे की भांति हो जाता है। जो परम उपलब्धि है शांति की, निर्वाण की, मोक्ष की, वह वही है, जैसा बच्चा मां के गर्भ में शांत है, निर्वाण को उपलब्ध है, मुक्त है।

प्रथम से ऊपर जाने का कोई भी उपाय नहीं है। या ठीक होगा, हम इसे ऐसा भी कह सकते हैं कि जितने हम आगे जाते हैं, उतने ही हम पीछे जा रहे हैं। और जो हमारी आखिरी मंजिल होगी, वह हमारा पहला पड़ाव था। या और तरह से कह सकते हैं कि जगत का जो विकास है, वह वर्तुलाकार है, सर्कुलर है। एक वर्तुल हम खींचते हैं; तो जिस बिंदु से शुरू होता है, उसी बिंदु पर पूरा होता है।

जगत का विकास रेखाबद्ध नहीं है, लीनियर नहीं है। एक रेखा की तरह नहीं जाता; एक वर्तुल की भांति है। तो प्रथम अंतिम हो जाता है; और जो अंतिम को पाना चाहते हैं, उन्हें प्रथम जैसी अवस्था पानी होगी।

जगत परमात्मा का पतन है। और जगत में विकास का एक ही उपाय है कि यह पतन खो जाए और हम वापस मूल—स्रोत को उपलब्ध हो जाएं, पहली बात। इसे समझेंगे तो ही उलटे वृक्ष का रूपक समझ में आएगा।

कोई उलटा वृक्ष जगत में होता नहीं। यहां बीज बोना पड़ता है, तब वृक्ष ऊपर की तरफ उठता है और विकासमान होता है। और वृक्ष बीज का विकास है, अभिव्यक्ति है, उसकी चरम प्रसन्नता है। लेकिन गीता ने और उपनिषदों ने जगत को उलटा वृक्ष कहा है। वह परमात्मा का पतन है, विकास नहीं। ऊंचाई का खो जाना है, नीचे उतरना है, ऊंचाई का पाना नहीं है।

जैसे वृक्ष ऊपर की तरफ बढ़ता है, ऐसे हम संसार में ऊपर की तरफ नहीं बढ़ रहे हैं। हम संसार में जितने बढ़ते हैं, उतने नीचे की तरफ बढ़ते हैं। जैसा हम देखते हैं, ठीक उससे उलटी अवस्था है। जिसे हम विकास कहते हैं, वह पतन है।

इसी कारण पूरब का समग्र चिंतन त्यागवादी हो गया। हो जाने के पीछे यही कारण था। त्याग का अर्थ है, संसार जिसे विकास कहता है, उसे हम छोड़ देंगे। संसार जिसे उपलब्धि कहता है, उसे हम तुच्छ समझेंगे। संसार जिसे भोग कहता है, वह त्याग के योग्य है।

एक आदमी धन इकट्ठा करता चला जाता है। वह विकास कर रहा है। पश्चिम में उसे विकासमान कहा जाएगा। पूरब में हमने उन लोगों को विकासमान कहा. बुद्ध ने धन छोड़ दिया, महावीर ने साम्राज्य छोड़ दिया, तो हमने विकासमान कहा।

पश्चिम में इकट्ठा करना विकास है। पूरब में छोड़ना विकास है। पश्चिम में कितना आपके पास है, उससे आपकी ऊंचाई का पता चलता है। पूरब में कितना आप छोड़ सके, कितना कम आपके पास बचा. .जिस दिन आप अकेले ही बच रहते हैं और कुछ भी पास नहीं होता, उस दिन पूरब विकास मानता है।

उलटे वृक्ष की धारणा में ये सारी बातें समाई हुई हैं।

कुछ और बातें, फिर हम सूत्र में प्रवेश करें।

यह वृक्ष कितना ही उलटा हो, लेकिन परमात्मा से जुड़ा है। यह कितनी ही दूर निकल गया हो, लेकिन इस वृक्ष की शाखा—प्रशाखाओं में उसी का ही प्राण प्रवाहित होता है। शाखा कितनी ही दूर हो, जड़ से जुड़ी होगी। जड़ से टूट जाने का कोई उपाय नहीं है।

संसार विपरीत हो सकता है, लेकिन परमात्मा का अभिन्न हिस्सा है। और हम संसार में कितने ही दूर निकल जाएं, हम उससे जुड़े ही रहते हैं। क्षणभर को भी उससे अलग होने का कोई उपाय नहीं। उसका ही प्राण—रस संसार में भी प्रवाहित है।

इसलिए एक दूसरी अनूठी धारणा पूरब में पैदा हुई। वह यह कि पूरब त्यागवादी है, लेकिन संसार को परमात्मा का शत्रु नहीं मानता। संसार भी परमात्मा का अभिन्न भाग है। नीचे की तरफ बहती हुई धारा है, लेकिन धारा उसी की है।

धारा का रुख बदलना है। धारा को उसके मूल उदगम की तरफ ले जाना है। लेकिन धारा से कोई शत्रुता और कोई घृणा नहीं है।

परमात्मा अगर उलटा खड़ा हो जाए तो संसार है। संसार अगर सीधा खड़ा हो जाए तो परमात्मा है। पर जैसा हम संसार को देखते हैं, उसे हम मानते हैं कि वह सीधा है। इसलिए समस्त धार्मिक साधनाएं सांसारिक आदमी की दृष्टि में उलटी मालूम पड़ती हैं। सांसारिक मन जो करता है, उसे सीधा मानता है। इसलिए संन्यासी को सांसारिक मन उलटा मानता है। लेकिन जो परमात्मा की दृष्टि को, इस उलटी बहती धारा को ठीक से समझ लें, उनके लिए संसार में उलटे होकर जीना ही एकमात्र सीधे होने का उपाय है।

संसार का गणित जिसको सीधा कहता है, उसे आप थोड़ा सोच—समझकर स्वीकार करना। संसार में जिन्हें लोग बुद्धिमान समझते हैं, उनकी बुद्धिमानी पर थोड़ा शक करना। संसार जिसको सफलता कहता है, उसे आंख बंद करके आलिंगन मत कर लेना। क्योंकि सभी कहते हैं, इसलिए कोई बात सत्य नहीं हो जाती।

अल्वर्ट आइंस्टीन को जर्मनी से निकल जाना पड़ा था। हिटलर, उसके नाजी प्रचार और यहूदियों के विरोध के कारण। और जब आइंस्टीन अमेरिका पहुंचा, तो उसे खबर मिली कि हिटलर ने सौ वैज्ञानिक तैनात किए हैं यह सिद्ध करने को कि आइंस्टीन की सारी खोज गलत है। सौ वैज्ञानिकों ने बड़ी मेहनत भी की।

आइंस्टीन को जब खबर मिली, तो उसने हंसकर कहा कि अगर मैं गलत हूं तो एक वैज्ञानिक उसे सिद्ध करने को काफी है, सौ की कोई जरूरत ही नहीं। और अगर मैं गलत नहीं हूं, तो सारी दुनिया के वैज्ञानिकों को भी हिटलर इकट्ठा करे तो भी—तो भी मैं गलत हो जाने वाला नहीं हूं। और हिटलर को सौ की जरूरत पड़ रही है, वह इसीलिए..।

सत्य तो अकेला भी काफी है। असत्य को भीड़ चाहिए। असत्य की शक्ति भीड़ से पैदा होती है। असत्य के पास अपनी कोई शक्ति नहीं है।

संसार जिसे ठीक कहता है, आप भी उसे ठीक मान लेते हैं। क्योंकि भीड़ की एक शक्ति है। लेकिन उससे वह ठीक नहीं हो जाता। ठीक होने के कोई प्रमाण भी नहीं मिलते।

समझें, एक राजनीतिज्ञ सफल है, क्योंकि बड़े पद पर है। संसार उसे सफलता कहता है। और उस सफलता के भीतर खुशी की एक किरण भी नहीं है। उस सफलता के भीतर आनंद का एक फूल भी कभी नहीं खिलता। और खुद राजनीतिज्ञ से पूछें। उसकी सफलता बिलकुल रेगिस्तान जैसी सूखी है! उसे कुछ भी मिला नहीं है।

दूसरे महायुद्ध में जनरल मैकार्थर का बड़ा नाम था। एक हंसोड़ फिल्म अभिनेता.....मैकार्थर जिस टुकड़ी का मुआयना करने जापान में गया था, वहा सैनिकों को प्रसन्न करने के लिए कुछ हंसी—मजाक करने के लिए एक अभिनेता आया हुआ था। जब वह अभिनेता विदा होने लगा तो मैकार्थर ने कहा कि आओ, मेरे साथ खड़े हो जाओ एक चित्र निकलवाने के लिए।

अभिनेता बहुत ही प्रसन्न हुआ। और उसने मैकार्थर से कहा कि मेरा अहोभाग्य, कि आप जैसे महान जनरल, सेनापति, ख्यातिलब्ध, इतिहास में जिसका नाम रहेगा, ऐसे व्यक्ति के साथ मुझे चित्र उतरवाने का मौका मिला। मैकार्थर ने कहा कि छोड़ो; मेरे छोटे बच्चे ने पत्र लिखा है कि जब तुम यहां आओ, तो तुम्हारे साथ एक चित्र उतरवाऊं। क्योंकि मेरा छोटा बच्चा तुम्हें एक बहुत ख्यातिलब्ध अभिनेता, एक जगत—प्रसिद्ध अभिनेता मानता है। मैं तो कुछ भी नहीं हूं उसके लिए।

जिन्हें हम जगत में सफल कहते हैं, उनकी अवस्था करीब—करीब ऐसी है। उनकी सफलता मान्यता पर निर्भर है। उन्हें आप सफल मानते हैं, तो वे सफल हैं। आप उन्हें असफल मानते हैं, तो वे असफल हैं। और खुद उनसे पूछें, तो आपसे भी ज्यादा अनिर्णय की उनकी अवस्था है।

एक आदमी बहुत धन इकट्ठा कर लेता है, तो सफल है। और जिसने धन इकट्ठा किया है अपने को बेच—बेचकर, उससे पूछें, तो उसे जीवन व्यर्थ खो गया मालूम होता है।

यह संसार का वृक्ष बिलकुल उलटा है। यहां जो सफल दिखाई पड़ते हैं, वे अपनी विफलता को छिपाए बैठे हैं। यहां जो धनी दिखाई पड़ते हैं, वे बिलकुल निर्धन हैं। यहां जो बाहर से मुस्कुराते हुए और आनंदित मालूम पड़ते हैं, भीतर दुख से भरे हैं।

यहां सभी कुछ उलटा है। लेकिन थोड़ी गहरी आंख हो, तो यह दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। और जिस दिन आपको यह दिखाई पडना शुरू होता है कि संसार का वृक्ष उलटा है, उस दिन आपके जीवन में क्रांति का क्षण आ गया। अब आप बदल सकते हैं।

अब हम इस सूत्र में प्रवेश करें।

गुणत्रय—विभाग—योग को समझाने के बाद श्रीकृष्ण बोले, हे अर्जुन, जिसका मूल ऊपर की ओर तथा शाखाएं नीचे की ओर हैं, ऐसे संसाररूप पीपल के वृक्ष को अविनाशी कहते हैं, तथा जिसके वेद पत्ते कहे गए हैं, उस संसाररूप वृक्ष को जो पुरुष मूल सहित तत्व से जानता है, वह वेद के तात्पर्य को जानने वाला है।

यह बडा क्रांतिकारी वचन है। लेकिन इस गढ़ ढंग से कहा गया है कि बहुत मुश्किल है उसके पूरे अर्थ में प्रवेश कर जाना।

पहली तो बात, जिसका मूल ऊपर की ओर।

मूल सदा नीचे की ओर होता है। इस संसार में तो मूल सदा नीचे की ओर होता है। जरूर कहीं हम भूल कर रहे हैं।

पूरब सदा ही मां को, पिता को आदर देता रहा है। पश्चिम में वैसा आदर नहीं है, क्योंकि मूल को हम ऊपर मानते हैं। बेटा कितना ही बड़ा हो जाए वह बुद्ध हो जाए, तो भी वह मां के चरण छुएगा। क्योंकि मूल से ऊपर जाने का कोई उपाय नहीं है। पश्चिम में वैसा आदरभाव नहीं है। क्योंकि पश्चिम में मूल को ऊपर मानने की वृत्ति नहीं है। देखने में भी यही आता है कि मूल तो नीचे होता है। वृक्ष का मूल तो जमीन में छिपा होता है, शाखाएं ऊपर होती हैं।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, यह संसार उलटा वृक्ष है। मूल ऊपर है। और ध्यान रहे, अगर माता—पिता ऊपर नहीं हैं, तो परमात्मा भी ऊपर नहीं हो सकता। क्योंकि वह जगत का मूल है।

गुरजिएफ अपने आश्रम में एक पंक्ति लिख छोड़ा था। और पंक्ति यह थी कि जो व्यक्ति अपने मां और पिता को आदर देने में समर्थ हो जाता है, उसे ही मैं मनुष्य मानता हूं।

इससे कोई सीधा संबंध नहीं दिखाई पड़ता। अनेक लोग गुरजिएफ से पूछते भी थे कि ऐसी छोटी—सी बात यहां किसलिए लिख रखी है! गुरजिएफ कहता, बात छोटी नहीं है।

और अगर हम मनोविज्ञान की आधुनिक खोजों को समझें, फ्रायड और उसके अनुयायियों को, तो वे सभी कहते हैं कि हर बेटा अपने मां—बाप को घृणा करता है।

मूल को लोग घृणा करते हैं। मूल से लोग बचना चाहते हैं, छिपाना चाहते हैं। शायद कामवासना के प्रति हमारी निंदा का कारण यही हो कि वह मूल है। उसे हम छिपाना चाहते हैं। आप कभी सोचते भी नहीं कि आप कैसे पैदा हुए हैं! कहां से पैदा हुए हैं! कहां आपका मूल है! आप कभी सोचते भी नहीं कि आपका जन्म, आपका यह जीवन दो व्यक्तियों की गहरी वासना से शुरू होता है।

मूल को हम छिपाते हैं। मूल छोटा मालूम पड़ता है, ओछा मालूम पड़ता है; हम बड़े हैं। लेकिन ध्यान रहे, जहां से आप आए हैं, उससे बड़े होने का कोई उपाय नहीं है। और अगर आप बडे हैं, तो एक ही बात सिद्ध होती है कि मूल बड़ा है।

अगर बुद्ध पैदा हो सकते हैं कामवासना के स्रोत से, तो कामवासना में बुद्ध को पैदा करने की क्षमता है, यही सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त कुछ और सिद्ध होने का उपाय नहीं है। और अगर आप बुद्ध नहीं हो पा रहे हैं, तो कसूर कामवासना का नहीं है। क्षमता तो उतनी ही है उस वासना में, जिससे बुद्ध पैदा हो सके। आप भी बुद्ध हो सकते हैं। लेकिन शायद मूल का ठीक उपयोग नहीं हो पा रहा है। मूल ने जो ऊर्जा दी है, उसको ठीक गति और दिशा नहीं मिल पा रही है।

लेकिन सभी लोग अपने मूल को छिपाते हैं। क्योंकि धारणा है कि मूल कुछ नीची चीज है।

यह सूत्र कहता है, मूल है ऊपर। हे अर्जुन, जिसका मूल ऊपर की ओर.।

अगर अंत में आता है श्रेष्ठ, तो मृत्यु श्रेष्ठ होगी। अगर प्रथम आता है श्रेष्ठ, तो जन्म श्रेष्ठ होगा। पश्चिम मृत्यु का विश्वासी है, पूरब जन्म का।

ऊपर की ओर है मूल। और सारी धाराएं नीचे की तरफ बहती हैं। यह बात उचित भी मालूम पड़ती है। क्योंकि बहाव सिर्फ नीचे की तरफ ही हो सकता है। बहाव ऊपर की तरफ हो भी कैसे सकता है! हमें दिखाई पड़ता है, हम बीज बोते हैं, वृक्ष ऊपर की तरफ उठता है। पर हमारी दृष्टि तो बहुत सीमित है। सच में वृक्ष ऊपर की तरफ उठता है? कहना जरा मुश्किल है। क्योंकि इस विराट ब्रह्मांड की दृष्टि से ऊपर और नीचे कुछ भी नहीं है। और फिर बहुत बातें समझने जैसी हैं।

वैज्ञानिकों ने एक नियम खोजा है, उसे वे कहते हैं, ग्रेविटेशन, गुरुत्वाकर्षण। पत्थर को हम फेंकते हैं; पत्थर नीचे गिर जाता है। अगर पृथ्वी सभी चीजों को नीचे की तरफ खींचती है, तो वृक्ष ऊपर की तरफ उठता कैसे है! गुरुत्वाकर्षण के विपरीत कोई नियम होना चाहिए, जो ऊपर की तरफ खींचता हो। एक। या फिर वृक्ष का ऊपर की तरफ उठना हमारी भ्रांति है; वृक्ष भी नीचे की तरफ ही जा रहा है। लेकिन हमारी सीमित दृष्टि में हमें ऊपर की तरफ दिखाई पड़ता है।

मैंने सुना है कि न्यूयार्क के एक सौ मंजिल भवन के ऊपर, आखिरी मंजिल की सीलिंग पर कुछ चींटियां भ्रमण कर रही थीं। और उनमें से एक दार्शनिक चींटी ने अन्य चींटियों को कहा कि आदमी भी बड़ा अजीब जानवर है। इतने—इतने बड़े मकान बनाता है, फिर भी चलता हमेशा नीचे है। जब ऊपर चलना ही नहीं है, सीलिंग पर जब चलना ही नहीं है, हमेशा फ्लोर पर ही चलना है, तो इतना ऊंचा मकान बनाने की जरूरत भी क्या! ऊंचाई पर चलते हम हैं।

चींटियां निश्चित ही सोचती होंगी। उनका अपना एक सापेक्ष जगत है।

वृक्ष वस्तुत: ऊपर की ओर उठ रहे हैं? ऐसा हमें दिखाई पड़ता है। अगर हम दूर चांद पर खड़े होकर देखें, तो सभी वृक्ष नीचे की तरफ लटके हुए दिखाई पड़ेंगे।

गीता यह कह रही है कि सारा विकास—जिसे हम विकास कहते हैं, एवोल्यूशन कहते है—वह सभी कुछ नीचे की ओर है। इस अर्थ में सभी धर्मों की पुराण कथाएं बड़ी मूल्यवान हैं, क्योंकि वे सभी कहती हैं, जगत पतन है। चाहे ईसाइयों की मूल कथाएं, चाहे हिंदुओं कीं? चाहे इस्लाम की, सभी धर्मों की मूल कथाएं यह कहती हैं कि जगत एक पतन है। पतन का इतना ही अर्थ होता है, पतन में कोई पाप नहीं है। पतन का इतना ही अर्थ होता है कि बहाव नीचे की तरफ है। इसलिए अगर ऊंचाई पानी है, तो उदगम की ओर वापस लौट चलना पड़ेगा।

झेन फकीर जापान में कहते हैं कि अगर तुम्हें जानना है परमात्मा क्या है, तो तुम खुद को जान लो उस क्षण में, जब तुम्हारा जन्म नहीं हुआ था। लौट जाओ पीछे।

अभी अमेरिका में एक नई चिकित्सा, मनोचिकित्सा का बड़ा प्रभाव है, प्राइमल थेरेपी का। इस सदी में खोजी गई कीमती से कीमती चिकित्साओं में एक है। और उसका प्रभाव रोज बढ़ता जाएगा, क्योंकि उसमें एक मौलिक सत्य है।

प्राइमल थेरेपी का ऐसा दृष्टिकोण है कि अगर व्यक्ति को पूर्ण स्वस्थ होना हो, तो उसकी चेतना में पीछे की तरफ लौटने की गति शुरू होनी चाहिए। और जिस दिन व्यक्ति अपने बचपन की अवस्थाओं को उपलब्ध करना शुरू कर देता है पुन:, उसी दिन स्वस्थ होना शुरू हो जाता है। और जिस दिन कोई व्यक्ति ठीक अपनी गर्भ की चेतना—दशा को उपलब्ध हो जाता है, उस दिन वह परम शात और परम स्वस्थ हो जाता है। और अनेक बीमारियां अचानक, मानसिक बीमारियां अचानक विलीन हो जाती हैं।

इसमें सत्य है और सैकड़ों लोगों पर इसके परिणाम प्रभावकारी हुए हैं। प्राइमल थेरेपी जिस व्यक्ति ने खोजी है, जेनोव ने, वह अपने मरीजों को एक ही काम करवाता था। उन्हें लिटा देता, आंख बंद करवा देता, कमरे में अंधेरा कर देता। और उनसे कहता है कि तुम पीछे लौटने की कोशिश करो, सिर्फ स्मृति में नहीं, पीछे लौटो और पीछे को जीयो। आखिरी पकडो स्मृति में खयाल, जो तुम्हें आता है; पांच वर्ष के थे तुम, तो उस घड़ी को जीने की कोशिश करो फिर से।

तो बहुत अनूठा अनुभव हुआ। जेनोव एक की महिला की चिकित्सा कर रहा था। उसकी उम्र थी अस्सी वर्ष। उसकी आंखें खराब हुए बीस साल हो गए थे। उसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था। और जब जेनोव ने उसे याद दिलाया और वह वापस लौटने लगी और उसने याद किया कि जब मैं छ: वर्ष की थी, तब की मुझे एक घटना याद आती है। जैसे ही उस घटना को उसने स्मरण करना शुरू किया, उसकी आंख की शक्ति वापस लौट आई। वह खुद हैरान हो गई, क्योंकि उसे दिखाई पड़ने लगा। उसका चित्त ही छ: वर्ष का नहीं हुआ, उस क्षण में उसका पूरा शरीर भूल गया कि वह अस्सी साल की बुढ़ी स्त्री है। लेकिन चिकित्सा के बाद उसकी आंख फिर अस्सी साल की हो गई। सिर्फ धारणा.....।

जेनोव कहता है कि जैसे—जैसे व्यक्ति पीछे लौटते हैं, उनका चेहरा बदलने लगता है। शांत हो जाता है, निर्दोष हो जाता है, जैसे बीच की सारी धूल हट गई, बीच का सारा कचरा कट गया। और जब कोई व्यक्ति उस क्षण में पहुंचता है, जिसको वह प्राइमल स्कीम कहता है, पहली जो रुदन की आवाज बच्चे को जन्म के समय हुई थी, जब बच्चा पैदा होता है, वह जो चीख की पहली आवाज थी, जो पहली स्कीम थी, उसको जब कोई व्यक्ति फिर से याद कर लेता है, और याद ही नहीं कर लेता, उसको पुन: जीता है, और ठीक उसी तरह की चीख फिर से निकलती है।

इस चीख को लाने में महीनों लग जाते हैं। कोई तीन महीने, छ: महीने निरंतर प्रयोग करने पर वह चीख निकलती है। पर जिस दिन वह चीख निकलती है, उस चीख के साथ ही व्यक्ति के सारे दोष विलीन हो जाते हैं। उस चीख के बाद वह व्यक्ति दूसरा ही हो जाता है—सरल, भोला, निर्दोष, जैसा वह पैदा हुआ था। जैसे उस चीख के साथ सारा जीवन विलीन हो गया, सारा पतन खो गया, मूल फिर उपलब्ध हो गया।

इधर मैं ध्यान में निरंतर अनुभव कर रहा हूं कि जो लोग भी उस गहरी चीख को ध्यान की अवस्था में उपलब्ध हो जाते हैं, उनके जीवन में पहली किरण समाधि की उतर जाती है।

मुझसे लोग पूछते हैं कि इतना चीखना—चिल्लाना ध्यान में क्यों है? क्योंकि उन्हें खयाल है एक ही ध्यान का कि लोग चुप बैठे हैं। आप चुप भी बैठ जाएं, कुछ भी न होगा। क्योंकि आपका पागल आदमी भीतर दौड़ रहा है; आपके चुप बैठने से कुछ होने वाला नहीं। आप जीवनभर चुप बैठे रहें, आप बिलकुल पत्थर की मूर्ति हो जाएं, तो भी बुद्धत्व फलित नहीं होगा। श्रेष्ठ उपलब्ध होगा प्रथम को उपलब्ध होने से।

मेरी यह पूरी चेष्टा है कि ध्यान में पहली, प्राइमल स्कीम पैदा हो जाए और आपका रोआं—रोआं चीख उठे। और उस चीख में सारा उपद्रव विलीन हो जाए, जैसे तूफान के बाद सब शात हो जाता है, ऐसे पीछे सब शात हो जाए। तो आपको मूल का पहली दफा दर्शन होगा। और वह मूल परमात्मा है।

आगे दौड़ते जाने में नहीं, पीछे, प्रथम जो आप थे, उसे फिर से पा लेने में उपलब्धि है। यह विरोधाभासी लगेगा। जो आप सदा से रहे हैं, उसी को पा लेना गंतव्य है। और कुछ भी पाने की दौड़ व्यर्थ है। और कुछ भी पाने की दौड़ सिवाय संताप और चिंता के कुछ भी न लाएगी। व्यक्ति जो पैदा हुआ है, उसी को पा ले। जो सदा से था, उसको पुन: अनुभव कर ले। जो उसके होने के भीतर छिपा ही है, जिसे पाने को रत्तीभर भी कुछ करने की जरूरत नहीं है, जो वह है ही, उसके पुन: दर्शन, उसकी पुन: उपलब्धि करनी है।

हे अर्जुन, जिसका मूल ऊपर की ओर तथा शाखाएं नीचे की ओर हैं, ऐसे संसाररूप पीपल के वृक्ष को अविनाशी कहते हैं। और यह संसार कभी नष्ट नहीं होता, यह कभी विनष्ट नहीं होता। लेकिन एक बड़े मजे की बात है कि यह प्रतिपल विनष्ट भी होता है। यह विनष्ट होता है और बनता है, मिटता है और बनता है।

परमात्मा सदा है, वह भी अविनाशी है। लेकिन उसका अविनाशी होना और ही अर्थ रखता है। वह कभी बनता नहीं, वह सदा है, वह कभी मिटता नहीं। संसार भी अविनाशी है, लेकिन बिलकुल दूसरे अर्थों में। यह सदा बनता और मिटता रहता है। यह बनने और मिटने की प्रक्रिया का कभी अंत नहीं होता। यह संसार वर्तुलाकार घूमता ही रहता है।

गंगोत्री से गंगा बहती है, सागर में गिरती है। लंबी यात्रा है, हजारों मील का फासला है। सागर में गिरकर फिर सूरज की 'किरणें उसे आकाश में उठा लेती हैं। फिर भाप बनती है। फिर बादल उमड़—घुमड़कर हिमालय की तरफ जाना शुरू हो जाते हैं। फिर हिमालय पर वर्षा हो जाती है। फिर गंगोत्री में पानी आ जाता है। फिर गंगा बहने लगती है। फिर सागर; फिर बादल, फिर गंगोत्री, फिर गंगा; फिर सागर।

वर्तुलाकार संसार घूमता ही रहता है। इसलिए हमने इसे गाड़ी के चाक की भांति कहा है। संसार शब्द का ही अर्थ होता है, चाक, दि व्हील, जो घूमता ही रहता है। यह भी अविनाशी है। यह भी कभी मिटेगा नहीं। यह मिटेगा और बनेगा, बनेगा और मिटेगा, लेकिन प्रक्रिया जारी रहेगी।

संसार की प्रक्रिया अविनाशी है और परमात्मा का सत्व अविनाशी है। परमात्मा का होना अविनाशी है और संसार की गति अविनाशी है। परमात्मा की स्थिति अविनाशी है और संसार की गति अविनाशी है।

संसार घूमता ही रहता है। इस घूमते संसार को बदलने की कोशिश व्यर्थ है। इस घूमते संसार को ठहराने की कोशिश व्यर्थ है। वह उसका स्वभाव नहीं है। इसे थोड़ा समझ लें।

क्योंकि आधुनिक सारा चिंतन इस बात पर जोर देता है कि यह संसार रोका जा सकता है, बदला जा सकता है। मार्क्स, एंजिल्स, लेनिन, उन सबका खयाल है कि आज नहीं कल समाज में समता आ जाएगी। मार्क्स से लोगों ने पूछा कि समता के बाद फिर क्या होगा? मार्क्स ने कहा, फिर कुछ भी नहीं होगा; समता ठहरेगी। फिर समता के बाद कोई परिवर्तन नहीं होगा।

यहां मार्क्स बिलकुल भ्रांत है। यहां कृष्ण की बात बहुत गहरी है। यहां कुछ भी चीज ठहरती नहीं। यहां समता भी नहीं ठहरेगी। यहां कोई भी स्थिति स्थिर नहीं हो सकती, कभी नहीं हुई, कभी होगी भी नहीं। यहां हर चीज बनेगी और मिटेगी। घूमना इसका स्वभाव है।

मार्क्स जैसा प्रगाढ़ चिंतक भी कमजोर हो जाता है अपने सिद्धात के मामले में। मार्क्स कहता है, हर चीज बदलेगी। पूंजीवाद टिक नहीं सकता; जाएगा; क्रांति होगी। सामंतवाद टिका नहीं; क्रांति हुई; गया। संसार बदलता रहा है।

मार्क्स खुद कहता है, डायनैमिक, डायलेक्टिकल संसार है। गत्यात्मक है और द्वंद्वात्मक है। यहां हर चीज बदल रही है। पूंजीवाद भी बदलेगा। लेकिन तब अपने ही सिद्धात से उसको बड़ा मोह है। फिर जब साम्यवाद आ जाएगा, तब कोई गति नहीं होगी!

गति संसार का स्वभाव है। यहां कोई भी चीज ठहरेगी नहीं। यहां जो आज ऊपर आएगा, कल नीचे जाएगा। जाना ही पड़ेगा। अन्यथा औरों के ऊपर आने का कोई उपाय नहीं होगा। और यह ऊपर आ सका इसीलिए, क्योंकि कोई नीचे चला गया। जो सत्ता में आएगा, वह सत्ता से नीचे जाएगा। जो अमीर होगा, वह गरीब होगा। जो आज सफल है, कल असफल होगा। जो आज जिंदा है, कल मरेगा। लेकिन यह प्रक्रिया जारी रहेगी।

और अगर कोई इस प्रक्रिया को ठहराने की कोशिश में लग जाए तो उसको हम अज्ञानी कहते हैं। जो इस प्रक्रिया की फिक्र ही छोड़ देता है, जो समझ लेता है कि यह चलती ही रहेगी; मेरे ठहराने से ठहरने वाली नहीं; जो अपने को ठहरा लेता है और इस प्रक्रिया की चिंता छोड़ देता है, उसे हम ज्ञानी कहते हैं।

हम सब की कोशिश यही है कि प्रक्रिया ठहर जाए। आप सुख में हैं, तो आप सोचते हैं, सुख ठहर जाए, रुक जाए। आप बिलकुल छाती से लगाकर बैठ जाते हैं कि सुख कहीं छूट न जाए; जो मिला है कहीं खो न जाए।

लेकिन यहां कोई चीज टिकती नहीं। इसमें कोई आपकी कमजोरी नहीं है, यहां वस्तुओं का स्वभाव ऐसा है कि यहां कोई चीज टिकती नहीं। जैसे आग गरम है, इसमें आग का कोई कसूर नहीं है। आग को पकड़ेंगे, तो जलेंगे। इसमें आग का कोई कसूर नहीं है, पकड़ने के मोह में भूल है। संसार का स्वभाव है कि वह बदलेगा। इसलिए यहां जो भी आप पा लेते हैं, उसको ठहराना चाहते हैं।

मेरे पास निरंतर लोग आते हैं। थोड़ा ध्यान करते हैं; मन थोड़ा शात होता है, वे कहते हैं कि यह शांति ठहर जाए।

इस संसार में कुछ भी ठहरेगा नहीं। यह शांति भी नहीं ठहरेगी। यह भी संसार का ही हिस्सा है, यह भी कुछ करने से मिली है। यह खो जाएगी। एक और शांति है, जो ठहरेगी, लेकिन वह संसार का हिस्सा नहीं है। वह शांति इस समझ से पैदा होती है कि जहां सब बदलता है, वहा ठहराने का पागलपन मैं न करूंगा। बदलता जाए। सुख आए दुख आए; शांति हो, अशांति हो, मैं दूर खड़ा देखता ही रहूंगा। मैं इनमें से किसी को भी पकडूगा नहीं और किसी को धकाऊंगा नहीं। मैं सिर्फ द्रष्टा रह जाऊंगा।

ऐसा जो सुख—दुख को देखने में लग जाता है, वह इस संसार के चक्र से बाहर छलांग ले लेता है। संसार तो चलता ही रहता है। वह इसके बाहर हो जाता है।

तो दो बातें हैं। या तो आप संसार को बदलने में लगें, इसको हम मूढ़ता कहे। और या आप अपने को बदल डालें, इसे हम ज्ञान कहे। आधुनिक चिंतन पूरी तरह संसार को बदलने पर जोर देता है और चीजों को ठहरा लेने पर जोर देता है। इसलिए इतना दुख है और दुख रोज बढ़ता जाता है। आज का मन सुखी हो ही नहीं सकता, क्योंकि उसकी सारी दृष्टि संसार पर है।

जैसे कोई आदमी नदी के किनारे खड़ा है और सोचता है कि नदी ठहर जाए। और नहीं ठहरती, इसलिए परेशान है। और जब तक न ठहरेगी, तब तक वह दुखी होगा। क्योंकि उसकी धारणा है कि नदी ठहरे, तो ही मैं सुखी हो सकता हूं।

कृष्ण कहते हैं, नदी का स्वभाव बहना है; नदी को तुम बहने दो। रोकने में न शक्ति व्यय करो और न समय खोओ। तुम नदी नहीं हो, इतना जान लेना काफी है। और नदी बहती रहे, न बहती रहे, इससे तुम्हें कुछ लेना—देना नहीं है। तुम नदी को भूल जा सकते हो, नदी विस्मृत की जा सकती है। तुम अपना स्मरण कर सकते हो।

और आदमी पर दोनों का मिलन है, वह जो अविनाशी है परमात्मा, वह; और वह जो अविनाशी संसार है, वह; दोनों आदमी की रेखा पर मिलते हैं। वहां सीमा दोनों की मिलती है। आपके भीतर दोनों अविनाशी हैं। वह जिसकी स्थिति कभी नाश नहीं होती है, वह; और जिसकी प्रक्रिया कभी नाश नहीं होती है, वह; दोनों की बाउंड्री आप हैं। दोनों की सीमा, दोनों का मिलन आप हैं।

सीमा से संसार शुरू होता है, नीचे की तरफ; ऊपर की तरफ परमात्मा शुरू होता है। आगे की तरफ संसार शुरू होता है, पीछे की तरफ परमात्मा शुरू होता है। मूल की तरफ परमात्मा है, शाखाओं की तरफ संसार है।

मूल ऊपर की ओर शाखाएं नीचे की ओर हैं, ऐसे संसाररूप पीपल के वृक्ष को अविनाशी कहते हैं, तथा जिसके वेद पत्ते कहे गए हैं, उस संसाररूप वृक्ष को जो पुरुष मूल सहित तत्व से जानता है, वह वेद के तात्पर्य को जानने वाला है।

यह बहुत ही अदभुत वचन है। इस संसार के पत्तों को कृष्ण कह रहे हैं वेद। परमात्मा है मूल, ये शाखाएं हैं संसार, और इन शाखाओं पर लगे हुए पत्ते हैं शान। ज्ञान बहुत दूर है परमात्मा से। यह जरा जटिल लगेगा।

वासना भी परमात्मा के ज्यादा निकट है, ज्ञान उससे भी ज्यादा दूर है। क्योंकि वासना शाखाएं है, ज्ञान तो बहुत ही दूर है; पत्ता तो आखिरी बात है। पत्ते के बाद फिर कुछ भी नहीं है। पत्ता अंत है। जिसको हम वेद कहते हैं, शान कहते हैं, जिसको हम बड़ी उपलब्धि मानते हैं, उसको कृष्ण कह रहे हैं, वह पत्तों की भांति है।

जैसे कोई आदमी पत्तों को गिनता रहे और सोचे कि मूल को उपलब्ध हो गया। ऐसे कोई वेद को कंठस्थ कर ले, उसने पत्ते इकट्ठे कर लिए; मूल से उसका कोई संबंध नहीं। और अगर वासनाओं का दुश्मन हो, तो पत्ते काट ले, तो मुर्दा पत्ते इकट्ठे हुए। वे पत्ते जिंदा भी नहीं हैं।

पुराने शास्त्र वृक्षों के पत्तों पर लिखे गए थे, बड़ी अच्छी बात थी। मुर्दा पत्ते, सूखे पत्ते, उन पर शास्त्र लिखे गए थे। सभी शास्त्र मरे और सूखे पत्ते हैं। उनसे तो वासना भी कहीं ज्यादा जीवंत है।

इसलिए अक्सर यह होता है कि वासनाओं में डूबा हुआ साधारण मनुष्य भी परमात्मा के ज्यादा निकट होता है, बजाय उन लोगों के, जो केवल वेद के पत्तों में ही डूबे रहते हैं। उनका मूल से संबंध बिलकुल ही टूट जाता है।

वासना के पार जाना है, लेकिन वासना के पार जाने के दो उपाय हैं। अगर आप वृक्ष की शाखा पर बैठे हों, तो शाखा से पार जाना है, लेकिन पार जाने के दो उपाय हैं। या तो शाखा के पीछे जाएं, जहां मूल है; और या शाखा की तरफ आगे जाएं, जहां पत्ते हैं। दोनों हालत में आप शाखा से हट जाएंगे।

इसलिए शान को पकड़ लेने वाले लोग भी संसार से एक अर्थ में दूर हो जाते हैं। लेकिन परमात्मा के निकट नहीं हो पाते। परमात्मा के निकट होने के लिए शाखा का छूटना जरूरी है, लेकिन पत्तों की दिशा में नहीं, मूल की दिशा में।

और इस संसाररूप वृक्ष को जो पुरुष मूल सहित तत्व से जानता है, वही वेद के तात्पर्य को जानने वाला है।

तो वेद का तात्पर्य वेद में नहीं छिपा है, इस संसार की पूरी अभिव्यक्ति में छिपा है। और जो व्यक्ति इस वृक्ष को मूल सहित तत्व से जानता है, जो इस वृक्ष के मूल को, शाखा को, पत्तों को, फूलों को, बीजों को, सबको पूरी तरह जान लेता है तत्व से, वही व्यक्ति वेद के तात्पर्य को जानने वाला है।

आप ऋग्वेद कंठस्थ कर सकते हैं। और कंठस्थ करने में यह हो सकता है कि आपको संसार जानने का न समय मिले, न उपाय रहे। मैंने सुना है एक यहूदी फकीर बालशेम के संबंध में। उसका बड़ा आश्रम था और दूर—दूर से खोजी उसके आश्रम में वर्षों आकर रुकते थे। एक युवक वर्षों पहले आया था और अब तो बूढ़ा हो गया था। उसने सारे यहूदी शास्त्र कंठस्थ कर लिए थे। तालमुद उसकी जबान पर बैठा था। उसकी ख्याति काफी फैल गई थी। यहां

तक कि लोग आश्रम में आते, तो बालशेम से न मिलकर, उस युवक, उस बूढ़े—जो कभी युवक था, और शास्त्रों को कंठस्थ करते—करते का हो गया था—उससे जाकर मिलते।

एक दिन एक आदमी ने आकर बालशेम को कहा कि यह व्यक्ति इतना जानता है शास्त्रों को, यह व्यक्ति अनूठा है, आप इसके संबंध में कभी कुछ भी नहीं कहते! बालशेम ने कहा, किसी को कहना मत; वह शास्त्रों के संबंध में इतना जानता है कि मैं सदा चिंतित रहता हूं कि वह संसार को कब जानेगा? और जो संसार को ही नहीं जान सकेगा, वह परमात्मा से कैसे उसका कोई संबंध होगा।

मूल सहित इस पूरे संसार को जो जान लेता है, वह वेद के तात्पर्य को जानता।

यह हो भी सकता है, उसे वेद पता ही न हों, लेकिन तात्पर्य पता होगा। यह हो सकता है, उसे वेदों से कोई परिचय न हो। वह संस्कृत का ज्ञाता न हो, वह व्याकरण का अधिकारी न हो, लेकिन तात्पर्य उसके पास होगा।

तात्पर्य बड़ी अलग बात है। तात्पर्य वैसे है, जैसे फूल में सुगंध होती है। फूल से चाहे मिलना न भी हुआ हो, हवा में तैरती हुई सुगंध से मिलना हो जाता है। और वही सार है। वेद फूल की तरह होंगे। उनकी सुगंध सब तरफ विस्तीर्ण है। संसार के कण—कण से वेद का जन्म हो रहा है, प्रतिपल।

वेद शब्द हिंदुओं का बड़ा अनूठा है। उसका मतलब होता है, ज्ञान, जानना। यहां प्रतिपल शान की संभावना है, लेकिन खुली आंखें चाहिए। अक्सर शास्त्र आंखों को बंद कर देते हैं।

इस संसार को जो मूल सहित तत्व से जानता है, वह वेद के तात्पर्य को जानने वाला है।

उस संसार—वृक्ष की तीनों गुणरूप जल के द्वारा बढ़ी हुई एवं विषय— भोगरूप कोंपलों वाली देव, मनुष्य और तिर्यक आदि योनिरूप शाखाएं नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं। तथा मनुष्य—योनि में कर्मों के अनुसार बांधने वाली अहंता, ममता और वासनारूप जड़ें भी नीचे और ऊपर सभी लोकों में व्याप्त हो रही हैं। कुछ और बातें, फिर यह सूत्र का दूसरा हिस्सा खयाल में आ सकेगा।

यह जो वृक्ष है, यह जो संसार है, इसमें वासनाएं नीचे की तरफ ले जाती हैं। लेकिन इससे आप इस भ्रांति में मत पड़ जाना कि अगर आप ऊपर की तरफ जाना शुरू कर दें, तो वासनाओं से छुटकारा हो जाएगा। क्योंकि यह भी हो सकता है, एक शाखा पहले नीचे की तरफ यात्रा करे—अक्सर हो जाता है, और अगर माली कुशल हो, तो हर शाखा के साथ हो सकता है—शाखा पहले नीचे की तरफ यात्रा करे, फिर मोड़ दी जाए, और शाखा ऊपर की तरफ उठने लगे। शाखा वही रहे, उसका प्राण वही रहे, उसकी दिशा बदल जाए, लेकिन उसका सत्य न बदले।

तो यह हो सकता है, एक आदमी धन के साथ अपने अहंकार को जोड़ रहा हो, फिर धन छोड़ दे और त्याग के साथ अहंकार को बांध ले। कल उसका अहंकार बड़ा होता था धन के साथ, अब बड़ा होने लगे त्याग के साथ। दिशा बदल गई, आयाम बदल गया ढंग—ढांचा बदल गया, लेकिन माली कुशल है और शाखा की मूल धारा नहीं बदली; शाखा अब भी वही है।

आसान है दिशा बदल लेना। स्वयं को बदल देना कठिन है। और यह भी हो सकता है कि अगर आप स्वयं को बदल लें, तो दिशा को बदलने की चिंता करनी भी आवश्यक नहीं है। स्मरण आ जाए मूल का, तो शाखा नीचे की तरफ बढ़ती रहे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन अब आप मूल की तरफ सरकने शुरू हो गए। तो त्याग अपरिहार्य नहीं है। भोग में भी कोई रह सकता है। लेकिन मूल का स्मरण आना शुरू हो जाए।

कृष्ण खुद भी वैसे ही व्यक्ति हैं, जिन्होंने शाखाओं की दिशा नहीं बदली है। शाखाएं जिस तरफ बढ़ रही हैं, बढ़ रही हैं। लेकिन शाखाओं के भीतर जो प्राण की धारा बह रही है, उसका रुख बदल गया है। वह अब मूल की तरफ बह

रही है। उसको स्मरण अब उदगम का है, स्रोत का है, प्रथम का है। अंतिम की तरफ यात्रा नहीं हो रही है। शाखाएं बढ़ती रहें, संसार चलता रहे, लेकिन चेतना अब प्रथम की ओर जा रही है।

इससे उलटा अक्सर हो जाता है। लोग शाखाएं भी काट डालते हैं इस डर से कि कहीं नीचे पतन न हो जाए। इंद्रियां काट डालते हैं, आंखें फोड़ लेते हैं, कान फोड़ डालते हैं, इस डर से कि कहीं कोई इंद्रिय भटका न दें। लेकिन चेतना की धारा आंखें फोड़ने से नहीं बदलती। नहीं तो सभी अंधे परम शान को उपलब्ध हो जाते। सारी दुनिया में इस तरह के वर्ग रहे हैं, जिन्होंने शाखाओं को काटने की कोशिश की, इस आशा में कि न होंगी शाखाएं, न होगी शाखाओं की तरफ गति। यह आशा भ्रांत है, यह तर्क भूल भरा है। शाखा न हो, तो भी गति हो सकती है। क्योंकि गति भीतर की धारणा है। शाखा हो, तो भी गति न हो, यह भी हो सकता है।

आप बिलकुल घर में रहकर संन्यस्त हो सकते हैं। और पूरी तरह संन्यासी होकर गृहस्थ हो सकते हैं। इसमें दूसरी बात के प्रतीक आपको जगह—जगह मिल जाएंगे। संन्यासियों को जाकर गौर से देखें, तो आप पाएंगे कि वे नए ढंग के गृहस्थ हैं। दूसरी बात जरा कठिन है। उस गृहस्थ को खोजना जरा कठिन है, जो संन्यस्त हो। लेकिन वह भी मिल जाएगा। अगर आंखें आपके पास खुली हों और आप तीक्ष्णता से जांच—परख कर रहे हों, धारणा पहले से न बना रखी हो, निर्णय पहले से न ले लिया हो, तो आपको ऐसे गृहस्थ भी मिल जाएंगे जो बिलकुल संन्यस्त हैं। चेतना के प्रवाह की बात है।

उस संसार—वृक्ष की तीनों गुणरूप जल के द्वारा बढ़ी हुई एवं विषय— भोगरूप कोंपलों वाली देव, मनुष्य और तिर्यक आदि योनिरूप शाखाएं नीचे की ओर हैं। ऊपर सर्वत्र भी फैली हुई हैं। नीचे—ऊपर दोनों तरफ फैली हुई हैं। तथा मनुष्य—योनि में कर्मों के अनुसार बांधने वाली अहंता, ममता और वासनारूप जड़ें भी नीचे और ऊपर सभी लोकों में व्याप्त हो रही हैं।

वासना नीचे की तरफ भी बह रही है, ऊपर की तरफ भी बह रही है, सभी दिशाओं में बह रही है। इसलिए ज्यादा इस बात का विचार करना जरूरी नहीं है कि वासना कहां बह रही है, ज्यादा विचार करना इस बात का कि वासना उदगम से संबंधित है!

आप अपने संबंध में सोचें, शायद ही आपको कभी खयाल आता हो उदगम का। शायद ही आप कभी बैठकर सोचते हों कि गर्भ की अवस्था में मैं कैसा था! सोचें आप, तो जो भी सुनेगा वह आपको पागल कहेगा। आप खुद भी सोचेंगे, क्या व्यर्थ की बात सोच रहे हैं! शायद कभी—कभार आपको मृत्यु का खयाल आ भी जाता हो, लेकिन जन्म का कभी नहीं आता।

मृत्यु आगे है; वह शाखाओं का अंतिम हिस्सा है। जन्म पीछे है, वह आपके गहन में छिपा है। इस तरफ थोड़ा प्रयोग करें। बड़े प्राचीन समय में एक विशेष ध्यान की पद्धति सिर्फ इसके लिए ही खोजी गई थी, वह मैं आपको कहूं। उसे प्रयोग करें, आप बहुत चकित होंगे।

ऐसी जगह बैठ जाएं जहां बहुत प्रकाश न हो, धुंधलका हो या अंधेरा हो। जगह शात हो, कोई शोरगुल न हो। क्योंकि गर्भ बिलकुल शांत जगह है। वहा कोई शोरगुल प्रवेश नहीं कर सकता, कोई आवाज वहां प्रवेश नहीं कर सकती। सुख से बैठ जाएं। और बैठें इस भांति कि धीरे— धीरे आपका सिर झुकता जाए, और जमीन छूने लगे। दोनों पैर मोड़कर बैठ जाएं, जैसा सूफी फकीर बैठते हैं, या मुसलमान नमाज पढ़ते वक्त बैठते हैं; उनके बैठने का आसन गर्भासन है। दोनों घुटने मोड़ लें और जैसा मुसलमान नमाज पढ़ते हैं, वैसे बैठ जाएं। फिर आंख बंद कर लें और सिर को आहिस्ता—आहिस्ता झुकाते जाएं।

इतने धीमे—धीमे झुकाएं कि आप झुकाव को अनुभव कर सकें। क्योंकि झुकना बड़ी कीमती बात है। एकदम से झुक जाएंगे, तो आपको पता भी नहीं चलेगा कि आप झुके। बहुत धीमे, जितने धीमे कर सकें, उतने धीमे— धीमे सिर को झुकाते जाएं, और झुकने को अनुभव करें कि आप झुक रहे हैं। फिर आपका सिर जमीन को छूने लगे।

तो आप ठीक उस अवस्था में आ गए जिस अवस्था में बच्चा गर्भ में होता है। ऐसा ही बच्चा सिकुड़ा हुआ गर्भ में होता है। घुटने उसके छाती से लगे होते हैं, सिर नीचे झुका होता है, पैर उसके पीछे मुड़े होते हैं।

इसलिए मुसलमानों का नमाज पढ़ने का ढंग बड़ा वैज्ञानिक है। वह पद्मासन और सिद्धासन से भी ज्यादा कीमती है। क्योंकि कोई बच्चा गर्भ में पद्मासन और सिद्धासन लगाकर नहीं बैठता। इसलिए पद्मासन और सिद्धासन में वह सरलता नहीं है, वह स्वाभाविकता नहीं है, वह सहजता नहीं है, जो नमाज की क्रिया में है।

फिर नमाज पढ़ने वाला नमाजी बार—बार झुकता है, और झुकने का अभ्यास करता है। फिर—फिर नीचे झुकता है। फिर उठता है, फिर झुकता है। वह झुकने की कला है। इसलिए मस्जिद से निकलते हुए मुसलमान में जैसी विनम्रता दिखाई पड़ेगी, किसी हिंदू में किसी मंदिर से निकलते वक्त दिखाई नहीं पड़ती। उसकी सारी नमाज ही झुकने की कला है।

कठिन था मोहम्मद को अरब के रेगिस्तान के खूंखार लोगों को धार्मिक बनाना। नमाज की प्रक्रिया ने साथ दिया। हिंदुओं को सहिष्णु बनाना, उदार बनाना बहुत कठिन नहीं है। प्रकृति बड़ी उदार है यहां। सब चीजें उपलब्ध हैं। आज नहीं हैं, तो कल थीं। जिंदगी बहुत बड़ा संघर्ष नहीं है।

लेकिन जहां मोहम्मद ने लोगों को झुकना सिखाया, वहा जीवन बड़ा संघर्ष था, बडा भयंकर संघर्ष था। जीने का मतलब ही दूसरे को मारना, दूसरे को मिटाना था। और विस्तार रेगिस्तान का जलता हुआ, जहां हरियाली दिखाई भी न पड़े, वहा आदमी अगर अकड़ जाए, अहंकारी हो जाए, क्रूर और कठोर हो जाए, तो स्वाभाविक है। वहां नमाज की प्रक्रिया ने और झुकने ने उन खूंखार लोगों को भी बहुत विनम्र बना दिया।

आप देखें प्रयोग करके। कमरा अंधेरा हो, और ठीक इस हालत में हो जाएं, जैसे आप फिर से छोटे बच्चे हो गए हैं और गर्भ में प्रवेश कर गए हैं। श्वास धीरे— धीरे कम हो जाएगी। आसन ही ऐसा है कि श्वास तेज नहीं हो सकती। पेट दबा होगा, छाती दबी होगी, सिर झुका होगा, श्वास तेज नहीं हो सकती, श्वास धीमी होती जाएगी। उसको साथ दें, और धीमा हो जाने दें। ऐसी घडी आएगी जब श्वास बिलकुल लगेगी कि चलती है या नहीं 'चलती। क्योंकि बच्चा कोई श्वास नहीं लेता पेट में।

और जब ऐसी घड़ी आ जाएगी, जब आपको लगेगा कि श्वास चलती है या नहीं चलती, पता नहीं चलता, तब आप समझना कि अब ठीक गर्भासन की अवस्था आ गई। कभी—कभी ऐसा भी होगा क्षणभर को, श्वास बिलकुल रुक जाएगी। उसी क्षण आपको झलक मिलेगी प्रथम मूल की। यह झलक आपको मिलनी शुरू जाए, आप दूसरे ही व्यक्ति होने लगेंगे।

खोजना है उदगम को; खोजना है उस बिंदु को जहां से हम आते हैं। क्योंकि जहां से हम आते हैं, वही हमारी अंतिम मंजिल होने वाली है, और कोई उपाय नहीं। मंजिल को तो हम नहीं खोज सकते, क्योंकि मंजिल बहुत दूर है। लेकिन प्रथम को हम खोज सकते हैं, क्योंकि प्रथम हममें छिपा है। वह मौजूद है अभी भी, उसको आप अपने साथ लेकर चल रहे हैं। आपने जो भी गर्भ में जाना था, वह ज्ञान आपके भीतर पड़ा है। उसे आप अभी भी लिए चल रहे हैं।

जानकर आप चकित होंगे कि गहरे सम्मोहन में, हिम्मोसिस में, लोग अपने गर्भ की घटनाएं भी याद करते हैं। अगर आपकी मां गिर पड़ी हो, और उसको चोट लग गई हो, और उसका धक्का आपको लगा हो जब आप गर्भ में थे, तो सम्मोहन की अवस्था में, बेहोश अवस्था में, आप उसको याद कर सकते हैं। याद लोग करते हैं, कि जब मैं पांच महीने का गर्भ में था, तब मेरी मां गिर पड़ी थी, और मुझे चोट लगी, धक्का लगा। उस धक्के की स्मृति आपको अभी भी है। उन नौ महीने में आपने जो जाना है, वह आपके भीतर पड़ा है। और उस नौ महीने के पहले भी आप थे। उदगम और भी गहराई में है। तब आप बिलकुल आत्मरूप थे, चाहे थोड़े ही क्षणों को। पिछला शरीर छूट गया था, नया शरीर मिलने में देर है, थोड़ा समय लगा। उस बीच आप बिलकुल आत्मरूप थे, कोई देह न थी। उसकी भी स्मृति आ सकती है।

फिर अनेक जन्मों की स्मृति। और फिर सारे जन्मों की स्मृति के साथ ही इस बात का स्मरण, अतिक्रमण का, कि मेरा न तो कोई जन्म है और न कोई मृत्यु। इतने जन्म, इतनी मृत्युएं मेरे पड़ाव थे, मेरी यात्रा के ठहराव थे, और मैं यात्री हूं। जैसे ही यह स्मरण आता है, आप अपने मूल उदगम को उपलब्ध हो गए। और यही अंतिम लक्ष्य है। इसको बुद्ध निर्वाण कहते हैं, पतंजलि समाधि कहते हैं। लेकिन फ्रायड ने बड़ी ही कीमत की बात कही है। किया है उसने कठोर व्यंग्य और आलोचना। उसने कहा है कि यह बुद्ध का निर्वाण और पतंजलि की समाधि, ये गर्भ की आकांक्षाए हैं। गर्भ को पुन: पाने की आकांक्षा है। उसने तो विरोध के हिसाब से कहा है। उसका तो कहना है कि यह मार्बिड स्टेट, रुग्ण अवस्था है कि कोई आदमी अपने गर्भ को फिर से पाना चाहे। लेकिन उसने बात तो, चोट तो ठीक जगह की है। बात तो सच है।

हम सभी किस बात की खोज रहे हैं? एक सोचने जैसी बात है। हम उसी को खोज सकते हैं, जिसे हमने कभी जाना हो। नहीं तो खोजेंगे भी कैसे? खोजेंगे क्यों?

आप कहेंगे, आनंद की खोज करना है। लेकिन आनंद आपने कभी जाना हो तभी। जिसका स्वाद ही न हो, उसकी खोज कैसे होगी? उसकी वासना भी कैसे जगेगी? आपको याद हो या न हो, आनंद आपने कभी जाना है। नहीं तो यह स्वाद कैसा? यह चेष्टा कैसी? यह दौड़ किसलिए? बिलकुल अपरिचित को कोई भी नहीं खोज सकता है।

सूफी फकीर कहते हैं, हम ईश्वर को खोज रहे हैं, क्योंकि हम ईश्वर को जानते हैं।

ठीक कहते हैं। जानना कहीं भीतर होना ही चाहिए, नहीं तो खोज नहीं हो सकती। आपने कभी ऐसे आदमी को सुना है, जो कोई ऐसी चीज को खोजने निकल जाए, जिसे वह जानता ही न हो? तो निकलेगा भी कैसे? शुरुआत कैसे होगी?

आनंद को हम खोजते हैं, क्योंकि आनंद हमने जाना है। वह हमारा प्रथम अनुभव था। और वह इतना गहन था कि उसके बाद हमने उससे श्रेष्ठतर कुछ भी नहीं जाना। उसके बाद वृक्ष नीचे ही जाता रहा है। इस आनंद को फिर पाना है। वह मूल की ही खोज है।

इस बात को बहुत गहराई से स्मरण में रख लें कि आपकी समाधि आपके पुन: गर्भ में होने का अनुभव होगी। अगर आप पुन: गर्भ में होने का अनुभव कर लें, तो इस अवस्था को जापान के फकीरों ने सतोरी कहा है। यह पहली समाधि का अनुभव है, पहली झलक।

और अगर आप बढ़ते ही जाएं पीछे—पीछे—पीछे, और उस जगह पहुंच जाएं, जहां यह पूरा ब्रह्मांड आपका गर्भ हो जाए और आप इस गर्भ के हिस्से हो जाएं, तो उसे पतंजलि ने परम समाधि कहा है। वह ब्रह्म समाधि, वह अंतिम समाधि है। पहली झलक और वह अंतिम उपलब्धि है। जिस दिन सारा जगत गर्भ हो जाता है और आप उस गर्भ के भीतर लीन हो जाते हैं।

पर यह सूत्र बहुमूल्य है। गीता में भी इतने बहुमूल्य सूत्र कम हैं। और यह सूत्र साधक के लिए है। आगे को भूलें और पीछे को खयाल करें। जो पाना है, उसकी फिक्र छोड़े, जो पाया ही हुआ था और जिसको हमने किसी तरह खोया है, जो विस्मृत हो गया है, उसकी पुन: स्मृति करें।

जितने आप पीछे जाएंगे, उतने ही आप आगे जाएंगे, क्योंकि गति वर्तुलाकार है। और जिस दिन आप पीछे बिंदु पर पहुंच जाएंगे, उस दिन आप अंतिम मंजिल पर भी पहुंच गए।

जहां जडें हैं, वहीं वृक्ष के अंतिम फूल हैं। वृक्ष में जब फूल लगते हैं, तो अंतिम क्या होता है? अंत में वृक्ष के फूल गिरने लगते हैं। वर्तुल पूरा हो गया। बीज हमने बोया था। बीज से वृक्ष बडा हुआ; फिर फूल लगे, फल लगे, बीज फिर आ गए। वर्तुल पूरा हुआ। और जैसे ही बीज फिर आ गए, फल टूटने लगते हैं, फूल टूटने लगते हैं, बीज वापस जमीन में गिरने लगते हैं।

जहां से यात्रा शुरू हुई थी, यात्रा वहीं पूरी हो गई। बीज से प्रारंभ, बीज पर अंत। परमात्मा से प्रारंभ, परमात्मा पर अंत। प्रथम ही अंतिम है।

हमारा मन लेकिन आगे की तरफ दौड़ता है। पीछे की तरफ रास्ता ही नहीं मालूम पड़ता। शायद हम भयभीत हैं। क्योंकि पीछे की तरफ लौटने में जो हमने बहुत—से दुख छिपा रखे हैं, वे उभरेंगे। यही भय है। जो दुख छिपा रखे हैं, वे उभरेंगे। उनसे हमें फिर गुजरना होगा। उनसे गुजरने में पीड़ा है।

मैंने सुना है, एक सांझ मुल्ला नसरुद्दीन अपने मकान के सामने बहुत उदास बैठा है। उसकी पत्नी पूछती है कि नसरुद्दीन, इतने उदास! क्या बात है? नसरुद्दीन ने कहा कि सुबह जब मैं बाजार गया, तो मेरे खीसे में सौ का नोट था। फिर मैंने एक खीसे को छोड्कर सब खीसे देख लिए, नोट का कहीं कोई पता नहीं चल रहा है। तो उसकी पत्नी ने कहा, उस एक को क्यों छोड़ रखा है? नसरुद्दीन ने कहा कि डर लगता है, अगर उसको देखा और वहां भी न पाया तो! एक ही आशा बची है। और हिम्मत नहीं पड़ती उस खीसे में हाथ डालने की।

आप भयभीत हैं खुद के भीतर जाने में। भविष्य में आशाएं बांध रखी हैं। वहां आशाओं की सुविधा है, क्योंकि कल्पना फैलाने का कोई अंत नहीं है; सपने देखने में कोई कठिनाई नहीं है। सपनों को सुंदर बनाना आपके हाथ में है; उनको रंगते जाना, रंगीन करते जाना भी आपकी सुविधा है। अतीत—आप कुछ कर नहीं सकते। अतीत ठोस है, सत्य है, वह हो चुका। और आप उससे गुजर चुके और आप जानते हैं कि पीड़ा थी, बडा दुख था। वह सब दुख वहां भरा है। उसी रास्ते से गुजरने में डर लगता है, फिर से उन्हीं बिंदुओं को छूने में।

और ध्यान रखें, आप पूरी पीड़ा से गुजरेंगे, गुजरना ही पड़ेगा। आपके सारे दुख फिर से पुनजावित होंगे, सब घाव फिर हरे होंगे। क्योंकि कोई घाव मिटता नहीं; वह बना है।

अगर आप दस वर्ष के थे और आपके पिता ने आपको पीटा था, तो वह चोट अब भी वहा बनी है। जब आप पीछे लौटना शुरू करेंगे, गर्भ का प्रयोग करेंगे, आप पुन: दस वर्ष के होंगे, वह चोट फिर हरी होगी। पिता फिर आपको पीटेंगे। फिर वही पीड़ा, फिर वही अहंकार को लगी चोट, असमर्थता, असहाय अवस्था, फिर सब भीतर प्रकट होगा। फिर वही आंसू फिर वही रोना, वह सब फिर पैदा होगा।

लेकिन यह पैदा कर लेना बड़ा कीमती है। क्योंकि अब आप सचेतन रूप से इससे गुजर रहे हैं। और एक बार जिस अनुभव से आप सचेतन गुजर जाएं, वह आपकी स्मृति से मुक्त हो जाता है। संस्कार इसी तरह क्षीण होते हैं, कर्म इसी तरह लय होते हैं। जिस पीड़ा को भी आप छिपाए हैं, उसको फिर से भोग लें, और आप हलके हो जाएंगे।

तो डरें मत। पीछे उतरने का डर छोड़े। थोड़े दुख पीछे के भोगें। और आप पाएंगे, आप हलके होते हैं। एक बार यह खयाल आ गया, तो फिर आप सारे दुख भोगकर वापस गर्भ तक पहुंच सकते हैं।

मूल ऊपर की ओर, पीछे की ओर, प्रथम में छिपा है। लंबी यात्रा की है आपने। और इस यात्रा से बचने का एक सुगम उपाय है कि आप भविष्य में सपने देखते रहें। तो आपका अतीत बड़ा होता जाता है। लौटना उतना ही मुश्किल होगा। जितनी देर करेंगे, उतनी ही कठिनाई होगी

लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, अभी हमारी उम्र नहीं, अभी तो जवान हैं। अभी क्या ध्यान, अभी क्या समाधि, अभी क्या सोचना परमात्मा को! आएगा समय, रिटायर होंगे, काम— धंधे से छुटकारा होगा, फुर्सत होगी, तब!

उन्हें पता नहीं; जितनी देर होगी, उतना कठिन होता जाता है। क्योंकि अतीत रोज बड़ा होता जा रहा है। उतना ही बोझ, उतने ही दुख, उतनी ही पीड़ाएं, उतनी ही जलन, ईर्ष्याएं, इकट्ठी होती जाती हैं। पीछे लौटना उतना ही मुश्किल हो जाएगा। दरवाजे उतने ही बंद हो जाएंगे; भय और ज्यादा लगेगा।

जितनी जल्दी हो सके, उतना उचित है। और किसी दिन—अब तक ऐसा हो नहीं पाया पृथ्वी पर, कभी हो पाएगा, इसकी भी संभावना कम है—किसी दिन अगर मां—बाप ज्यादा विचारशील होंगे, वस्तुत: धार्मिक होंगे, ऐसे धार्मिक नहीं जैसे कि सभी मां—बाप अभी हैं, वस्तुत: धार्मिक होंगे, तो वे बच्चे को आगे भी ले जाएंगे और निरंतर पीछे भी ले जाएंगे। वे बच्चे को कभी भी अतीत के बोझ से दबने न देंगे। वे उसके बचपन में लौटने की प्रक्रिया को, बचपन में बार—बार डूबने की प्रक्रिया को जिंदा रखेंगे।

अगर आप अपने छोटे बच्चों को रोज कह सकें कि वे रोज का दिन पुन: जी लें रात सोने के पहले। जब वे रात सोने जाएं, तो पीछे लौटें। सुबह से शुरू न करें, पीछे लौटें। बिस्तर पर लेटना आखिरी काम है, इससे पीछे लौटें। और एक—एक काम जो इसके पहले किया है, उससे शुरू कर सुबह तक वापस जाएं! जब सुबह वे जगे थे बिस्तर से, वहा तक पीछे लौटें।

अगर हर बच्चे को बचपन से सिखाया जा सके रोज पीछे लौटना, तो धूल इकट्ठी न होगी, वह रोज ही अपने कर्म को झाडू रहा है। तो जब जवान होगा, तब सच में ही जवान होगा, ताजा होगा। वह जब बूढ़ा होगा, तब भी ताजा होगा। उसके वार्धक्य में एक गरिमा होगी। उसका वार्धक्य ताजगी से भरा होगा। उसके पीछे कोई अतीत नहीं, कोई धूल नहीं है। वह रोज उसे झाड़ता रहा है। वह रोज साफ करता रहा है।

घर तो हम साफ करते हैं, रोज करते हैं; स्वयं को हम कभी साफ नहीं करते। और धर्म स्वयं को साफ करने से ज्यादा कुछ भी नहीं है। उसका न कुछ परमात्मा से लेना—देना है, न मोक्ष से। स्वयं को साफ करने से उसका संबंध है। क्योंकि स्वयं अगर आप साफ हैं, तो आप परमात्मा हैं, आप मोक्ष हैं।

आपकी गंदगी, आप संसार हैं। आपका बोझ, आप संसार हैं। आप निबोंझ, आप परमात्मा हैं।

पीछे लौटना सीखें। आगे की दौड़ में ज्यादा शक्ति न गंवाएं। लेकिन सपनों में रस है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने मनोचिकित्सक के पास एक बार गया। और उसने कहा कि मैं बडा व्यथित हूं और जब बहुत थक गया और परेशान हो गया, तब आपके पास आया हूं। उस मनोचिकित्सक ने पूछा कि क्या तकलीफ है? नसरुद्दीन ने कहा, एक ही स्वप्न बार—बार आता है, रोज आता है। और अब मैं थक गया हूं वर्षों से। अब मैं सो भी नहीं पाता। दिनभर भी लगता है, वह स्वप्न रात आएगा, और रात उस सपने में बीतती है।

चिकित्सक, मनोचिकित्सक भी उत्सुक और आतुर हो गया। उसने पूछा, कौन—सा स्वप्न है? उसने कहा, रोज एक स्वप्न देखता हूं। बैठा हूं अपने मकान के सामने, एक अति सुंदर युवती निकलती है और मैं उसके पीछे भागता हूं। और वह जाती है और अपने मकान में चली जाती है, और दरवाजा बंद कर लेती है। मैं दरवाजे पर खड़ा ठोंक रहा हूं दरवाजा, ठोंक रहा हूं। कई साल हो गए, रोज यही स्वप्न!

तो मनोचिकित्सक ने कहा, इस स्वप्न से आप मुक्त होना चाहते हैं न: नसरुद्दीन ने कहा, आप गलती समझे। मैं चाहता हूं वह दरवाजा बंद न कर पाए।

मन दौड रहा है सपनों में। सपनों में भी महत्वाकांक्षाएं हैं, उनकी पूर्ति की इच्छा है, दरवाजा बंद न हो पाए। सपने से छूटने को कोई तैयार नहीं है। सपने को सुंदर बनाने की चेष्टा है। इसे थोड़ा खयाल रखें।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि छुडाएं इस संसार से। कोई छूटना नहीं चाहता। वे यह कह रहे हैं, बनाएं इस संसार को जरा सुंदर, दरवाजा बंद न हो पाए। उनका मोक्ष, उनका स्वर्ग, सब इसी संसार के सुंदर रूप हैं, जहां दरवाजा सदा खुला है। साधारण आदमी का नहीं, जिनको हम बहुत समझदार, बुद्धिमान कहते हैं, उनका भी। सपने कैसे सफल हो जाएं! कैसे और सुंदर हो जाएं! पर जितने ही सुंदर होंगे सपने और जितने ही सफल होंगे, उतने ही आप खो जाएंगे, उतना ही स्मरण कम रह जाएगा। स्वप्न का अर्थ ही है स्वयं को खोना, विस्मरण कर देना।

सारी प्रक्रियाएं स्वयं को स्मरण करने की प्रक्रियाएं हैं। स्वप्न शुरू नहीं हुए थे गर्भ में। वहीं लौट जाना है, जहां स्वप्न की पहली चोट भी नहीं पड़ी थी।

इसलिए पतंजलि ने योग—सूत्र में कहा है कि समाधि सुषुप्ति की ही अवस्था है, गहरी निद्रा की अवस्था है। जहां एक भी स्वप्न नहीं, एक भी विचार नहीं। पर सुषुप्ति और समाधि में इतना ही फर्क है कि सुषुप्ति में आप बेहोश हैं और समाधि में आप होश से भरे हैं। होशपूर्वक पीछे लौट जाना है और उस बिंदु को पा लेना है, जहां से प्रारंभ है।

इस बात की चिंता मत करें कि संसार कैसे प्रारंभ हुआ! इस बात की फिक्र मत करें कि संसार को किसने बनाया! क्यों बनाया! किसलिए बनाया! इस बात की फिक्र करें कि आप कब प्रारंभ हुए! कैसे प्रारंभ हुए! उस क्षण को पकड़े, जब आप प्रारंभ हुए थे।

सृष्टि के प्रारंभ को पकड़ने की बात व्यर्थ है। वह पकड़ा नहीं जा सकता, क्योंकि सृष्टि सदा है। यह चक्र घूमता ही रहा है। आप इस चके पर कब सवार हो गए; आपने कब इससे जोर से गठबंधन कर लिया, उस बिंदु को पकड़े।

उस बिंदु के पहले आप परमात्मा थे, उस बिंदु के बाद आप शाखाओं में भटक गए और शाखाएं लंबी हैं और वृक्ष नीचे की तरफ बढ़ता जाता है। और जिस दिन आप यह समझ लेंगे कि एक क्षण ऐसा भी था, जब आप इस चके को नहीं पकड़े थे, बाहर थे, उसी क्षण यह चका छूट भी जाएगा। क्योंकि तब इसे पकड़ने का कोई सार नहीं है।

जिस क्षण उस आनंद की झलक मिल जाएगी, जो इस संसार में उतरने के पहले थी, उसी क्षण संसार की दौड़ बंद हो जाएगी। क्योंकि हम उसी आनंद को इस संसार में खोजने का प्रयास कर रहे हैं। यह जो मैंने ध्यान का छोटा—सा प्रयोग कहा, इसे आप करें, तो कृष्ण का जो तात्पर्य है, वह समझ में आएगा।

कृष्ण के शब्दों के तात्पर्य पर तो बहुत टीकाएं लिखी गई हैं। हजारों टीकाएं हैं। पर उन टीकाओं में से एक भी टीका नहीं है, जिसमें यह सुझाव दिया हो कि आप अपने मूल में लौट जाएं। इसलिए मैं मानता हूं कि वे टीकाएं शाब्दिक हैं। और उनसे सत्य नहीं पकड़ा जा सकता। उनसे जो आप पकड़ेंगे, वह भी शाब्दिक ही होगा।

मुल्ला नसरुद्दीन के घर में बड़े चूहे थे। और वह परेशान था। और कंजूसी की वजह से चूहादान भी नहीं खरीद सकता था। लेकिन फिर हिम्मत की और खरीद लाया। चूहादान तो खरीद लिया, लेकिन अब मुसीबत यह थी कि उसमें एक रोटी का टुकड़ा भी रखना है। वह भी कंजूसी की वजह से मुश्किल है। तो उसने तरकीब निकाली। होशियार आदमी था, मौलवी था, मुल्ला था, जानता था शास्त्रों को। उसने एक अखबार में से रोटी की फोटो काटकर अंदर रख दी। और रात निश्चिंत सोया।

सुबह उसने अपना सिर पीट लिया। हुआ कुछ ऐसा कि जब उसने चूहादान खोला, तो रोटी की तस्वीर के पास एक कुतरा हुआ अखबार का टुकड़ा और पड़ा था, जिसमें एक चूहे की तस्वीर थी। अखबार में छपी रोटी ज्यादा से ज्यादा अखबार में छपे हुए चूहे को पकड़ सकती है, और तो कुछ उपाय नहीं। इन शब्दों की शब्दों से व्याख्या हो सकती है, लेकिन तब आप असली चूहे को नहीं पकड़ पाएंगे। इसलिए मैंने इस पहले ही सूत्र में ध्यान की प्रक्रिया की बात कही, क्योंकि उससे ही आपको दिखाई पड़ेगा कि आप एक उलटे वृक्ष हैं।

संसार हो या न हो, आप हैं। और जब आप हैं, तब सारा रहस्य खुल गया। तब आपको लगेगा, आपका मूल ऊपर है, शाखाएं नीचे की तरफ हैं। और जिसको आप विकास कह रहे हैं, वह पतन है। और जिसको आप पीछे कह रहे हैं, वही अंत है, वहीं पहुंच जाना है।

गीता दर्शन–(भाग–7)
अध्याय—15 (प्रवचन—दूसरा) — दृढ़ वैराग्य और शरणागति

सूत्र—
न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा।
अश्वथमेनं सुविरूद्धमूलम् असङ्गशस्त्रेण दृढ़ेन छित्वा।।3।।
ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यीस्मनगाता न निवतर्न्ति भूयः।
तमेव ब्राह्य पुरुषं पुपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रमृता पुराणी।।4।।
निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृक्कामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुखसंज्ञैः गव्छज्यमूढाः पदमव्ययं तत्।।5।।
इस संसार— वृक्ष का रूप जैसा कहा है, वैसा यहां नहीं पाया जाता है; क्योंकि न तो इसका आदि है और न अंत है तथा न अच्छी प्रकार से स्थिति ही है। इसलिए हम अहंता? ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलों वाले संसाररूप पीपल के वृक्ष को दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्र द्वारा काटकर, उसके उपरांत उस परम पद रूप परमेश्वर को अच्छी प्रकार खोजना चाहिए कि जिसमें गए हुए पुरुष फिर पीछे संसार में नहीं आते हैं।

और जिस परमेश्वर से यह पुरातन संसार— वृक्ष की प्रवृत्ति विस्तार को प्राप्त हुई है उस ही आदि पुरुष के मैं शरण है हम प्रकार दृढ़ निश्चय करके नष्ट हो गया है मान और मोह जिसका तथा जीत लिया है आसक्तिरूप दोष जिन्होंने और परमात्मा के स्वरूप में है निरंतर स्थिति जिनकी तथा अच्छी प्रकार से नष्ट हो गई है कामना जिनकी? ऐसे वे सुख— दुख नामक द्वंद्वों से विमुक्त हुए ज्ञानीजन उस अविनाशी परम पद को प्राप्त होते हैं।

सूत्र के पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्न :
आपने कल माता और पिता के बारे में जो भी कहा, वह बहुत प्रिय था। माता—पिता बच्चों को प्रेम देते हैं, लेकिन बच्चे माता—पिता को प्रेम क्यों नहीं दे पाते हैं?
—तीन बातें समझनी जरूरी हैं।

एक तो आपसे मैंने कहा कि अपने माता—पिता को प्रेम दें। प्रश्न जिन्होंने पूछा है, वे बच्चों से अपने लिए प्रेम मांग रहे हैं। वहीं भूल हो गई है।

सभी मां—बाप बच्चों से प्रेम मांगते हैं। आपके मां—बाप ने भी आपसे मांगा होगा और आप नहीं दे पाए। आप भी अपने बच्चों से मांग रहे हैं और प्रेम पाने की संभावना बहुत कम है। आपके बच्चे भी अपने बच्चों से मांगेंगे।

जो मैंने कहा था, वह कहा था बच्चों के लिए मां —बाप को प्रेम देने के लिए। मां—बाप बच्चों से प्रेम मांगें, इसके लिए नहीं। और प्रेम कभी मांगकर मिलता नहीं, और मांगकर मिल भी जाए, तो उसका कोई मूल्य नहीं है। जहां मांग पैदा होती है, वहीं प्रेम मर जाता है।

दूसरी बात, मां —बाप का प्रेम बच्चे के प्रति स्वाभाविक, सहज, प्राकृतिक है। जैसे नदी नीचे की तरफ बहती है, ऐसा प्रेम भी नीचे की तरफ बहता है। बच्चे का प्रेम मां—बाप के प्रति बडी अस्वाभाविक, बड़ी साधनागत घटना है। वह जैसे पानी को ऊपर चढाना हो।

तो गुरजिएफ का जो सूत्र था, वह यह था कि जो लोग अपने मां—बाप को प्रेम दे पाते हैं, उन्हें ही मैं मनुष्य कहता हूं; क्योंकि अति कठिन बात है।

सभी मां—बाप अपने बच्चों को प्रेम देते हैं, वह सहज बात है। उसके लिए मनुष्य होना भी जरूरी नहीं है, पशु भी उतना करते हैं। मां —बाप से बच्चे की तरफ प्रेम का बहना नदी का नीचे उतरना है। बच्चे मां—बाप को प्रेम दें, तो ऊर्ध्वगमन शुरू हुआ। अति कठिन बात है।

मां—बाप सोचते हैं, हम इतना प्रेम बच्चों को देते हैं, बच्चों से हमें प्रेम क्यों नहीं मिलता? सीधी—सी बात उनकी स्मृति में नहीं है। उनका अपने मां—बाप के प्रति कैसा संबंध रहा? और अगर आप अपने मां—बाप को प्रेम नहीं दे पाए, तो आपके बच्चे भी कैसे दे पाएंगे? और जैसा आप अपने बच्चों को दे रहे हैं, आपके बच्चे भी उनके बच्चों को देंगे, आपको क्यों देंगे?

यह प्राकृतिक पशु .में भी हो जाता है। इसलिए मां—बाप इसमें बहुत गौरव अनुभव भ करें कि वे बच्चों को प्रेम करते हैं। यह सीधी स्वाभाविक, प्राकृतिक घटना है। मां—बाप बच्चों को प्रेम न करें, तो अप्राकृतिक घटना होगी। बच्चे मां—बाप को प्रेम करें, तो अस्वाभाविक घटना घटती है, बहुत बहुमूल्य। क्योंकि वहां प्रेम प्रकृति के चक्र से मुक्त हो जाता है, वहां प्रेम सचेतन हो जाता है।

इसलिए सभी प्राचीन संस्कृतियां माता—पिता के लिए परम आदर का स्थापन करती हैं। और इसे सिखाना होता है। इसके संस्कार डालने होते हैं। इसके लिए पूरी संस्कृति का वातावरण चाहिए, पूरी हवा चाहिए, जहां कि यह ऊपर की तरफ उड़ना आसान हो सके।

नीचे की तरफ उतरने में कुछ भी गौरव—गरिमा नहीं है। कठिन और भी है। जब एक बच्चा पैदा होता है, तो बच्चा तो निर्दोष होता है, सरल होता है। और बड़ी बात है—वही उसका गुण है, जिसकी वजह से आपका प्रेम उसकी तरफ बहता है—असहाय होता है, हेल्पलेस होता है। असहाय को प्रेम देने में आपके अहंकार को बड़ी तृप्ति मिलती है। असहाय को बड़ा करने में आपको बड़ा रस आता है। फिर बच्चा निर्दोष होता है। उसको घृणा करने का तो कोई उपाय भी नहीं। उस पर कठोर होने में आपको मूढ़ता मालूम पड़ेगी।

पर जैसे—जैसे बच्चा बडा होता है, वैसे—वैसे आपका प्रेम सूखने लगता है; वैसे—वैसे आप कठोर होने लगते हैं! जैसे—जैसे बच्चा अपने पैरों पर खडा होने लगता है, वैसे—वैसे आप और बच्चे के बीच खाई बढ़ने लगती है। क्योंकि अब बच्चा असहाय नहीं है। और अब बच्चे का भी अहंकार पैदा हो रहा है। अब बच्चा भी संघर्ष करेगा, प्रतिरोध करेगा, बगावत करेगा, लड़ेगा। अब उसकी जिद्द और उसका हठ पैदा हो रहा है। उससे आपके अहंकार को चोट पहुंचनी शुरू होगी।

नवजात बच्चे को प्रेम करना बड़ा सरल है। लेकिन जैसे ही बच्चा बड़ा होना शुरू होता है, प्रेम करना मुश्किल, कठिन होने लगता है।

ठीक इससे उलटी बात खयाल में रखें कि बच्चे के लिए आपको प्रेम करना बहुत कठिन है, घृणा करना सरल है। क्योंकि आप शक्तिशाली हैं। और निर्बल हमेशा शक्तिशाली को घृणा करेगा। शक्तिशाली दया बता सकता है निर्बल के प्रति, लेकिन निर्बल को दया बताने का तो कोई उपाय नहीं है। निर्बल शक्तिशाली को घृणा करेगा।

बच्चा अनुभव करता है, असहाय है और आप शक्तिशाली हैं। बच्चा अनुभव करता है, वह परतंत्र है और सारी शक्ति, सारी परतंत्रता का जाल आपके हाथ में है। जैसे ही बच्चे का अहंकार बड़ा होगा—बड़ा होगा ही, क्योंकि वही गति है जीवन की—जैसे ही बच्चा सजग होगा और समझेगा मैं हूं, वैसे ही आपके साथ संघर्ष शुरू होगा।

आप चाहेंगे आज्ञा माने, और बच्चा चाहेगा कि आशा तोड़े। क्योंकि आज्ञा मनवाने में आपके अहंकार की तृप्ति है और आशा तोड्ने में उसके अहंकार की तृप्ति है। और बच्चे के मन में आपके लिए घृणा होगी, और आपका प्रेम सिर्फ जालसाजी मालूम होगी। क्योंकि प्रेम के नाम पर आप बच्चे का शोषण कर रहे हैं, ऐसा बच्चे को प्रतीत होगा। और सौ में नब्बे मौके पर बच्चा गलती में भी नहीं है। प्रेम के नाम पर यही हो रहा है।

यह सारी घृणा बच्चे में इकट्ठी होगी। अगर बच्चा लड़का है, तो पिता के प्रति घृणा इकट्ठी होगी, अगर लड़की है, तो मां के प्रति घृणा इकट्ठी होगी। कोई बेटा अपने बाप को आदर नहीं कर पाता। आदर करना पड़ता है, मजबूरी है, लेकिन भीतर से बगावत करना चाहता है। कोई लड़की अपनी मां को प्रेम नहीं कर पाती। दिखलाती है, वह शिष्टाचार है। लेकिन भीतर ईर्ष्या, जलन और संघर्ष है। इसलिए गुरजिएफ की बात मूल्यवान है कि जो व्यक्ति अपने मां—बाप को प्रेम कर पाए, उसे ही मैं मनुष्य कहता हूं। क्योंकि यह बड़ी कठिन यात्रा है।

इसलिए आप अगर अपने बच्चों को प्रेम करते हैं, तो बहुत गौरव मत मान लेना। सभी अपने बच्चों को प्रेम करते हैं, आपके बच्चे भी करेंगे। इसमें कोई विशेषता नहीं है। लेकिन अगर आप अपने मां—बाप के प्रति आदर करते हैं, प्रेम करते हैं, सम्मान रखते हैं, तो जरूर गौरव की बात है, जरूर महत्वपूर्ण बात है। क्योंकि यह एक चेतनागत उपलब्धि है। और यह तब ही हो सकती है, जब आप मूल के प्रति श्रद्धा से भर जाएं।

अन्यथा हर बेटे को ऐसा लगता है कि बाप मूढ़ है। और जैसे—जैसे आधुनिक विकास हुआ है शिक्षा का, वैसे—वैसे यह प्रतीति और गहरी होने लगी है।

शायद बाप उतना पढ़ा—लिखा न हो, जितना बेटा पढ़ा—लिखा है। बाप बहुत—सी बातें नहीं भी जानता है, जो बेटा जान सकता है। रोज शान विकसित हो रहा है। इसलिए बाप का ज्ञान तो पिछड़ा हो जाता है; आउट आफ डेट हो जाता है।

तो बेटे के मन में स्वभाविक हो सकता है कि बाप कुछ भी नहीं जानता। श्रद्धा कैसे पैदा हो? श्रद्धा किन्हीं तथ्यों पर आधारित नहीं हो सकती। श्रद्धा तो सिर्फ इस बात पर आधारित हो सकती है कि पिता उदगम है, स्रोत है; और जहां से मैं आया हूं, उससे पार जाने का कोई उपाय नहीं। मैं कितना ही जान लूं, मैं कितना ही बड़ा हो जाऊं अपनी आंखों में, मेरा अहंकार कितना ही प्रतिष्ठित हो जाए, लेकिन फिर भी मूल और उदगम के सामने मुझे नत होना है। क्योंकि कोई भी अपने उदगम से ऊपर नहीं जा सकता।

कोई वृक्ष अपने बीज से ज्यादा नहीं होता। हो भी नहीं सकता। बीज में पूरा वृक्ष छिपा है। कितना ही विराट वृक्ष हो जाए वह छोटे—से बीज में छिपा है। और उससे अन्यथा होने की कोई नियति नहीं है। और अंतिम फल जो होगा वृक्ष का, वह यह होगा कि उन्हीं बीजों को वह फिर पुन: पैदा कर जाए।

उदगम से आप कभी बड़े नहीं हो सकते। मूल से कभी विकास बड़ा नहीं हो सकता। वृक्ष कभी बीज से बड़ा नहीं है, कितना ही बडा दिखाई पड़े। इस अस्तित्वगत घटना की गहरी प्रतीति माता—पिता के प्रति आदर से भर सकती है।

लेकिन आप माता—पिता की तरह इसको मत सुनना, इसको बेटे और बेटी की तरह सुनना। यह आपके माता—पिता के प्रति आपकी श्रद्धा के लिए कह रहा हूं। अब जाकर अपने घर में आप अपने बच्चों से श्रद्धा मत मांगने लगना। क्योंकि तब आप बात समझे ही नहीं, चूक ही गए।

और जिस समाज में भी माता—पिता के प्रति श्रद्धा कम हो जाएगी, उस समाज में ईश्वर का भाव खो जाता है। क्योंकि ईश्वर आदि उदगम है। वह परम स्रोत है।

अगर आप अपने बाप से आगे चले गए हैं तीस साल में, आपके और बाप के बीच अगर तीस साल की उम्र का फासला है, आप इतने आगे चले गए हैं बाप से, तो परम पिता से, परमेश्वर से तो आप बहुत आगे चले गए होंगे। अरबों—खरबों वर्ष का फासला है। अगर परमात्मा मिल जाए, तो वह बिलकुल महाजड़, महामूढ़ मालूम पड़ेगा। जब पिता ही मूड मालूम पड़ता है, अगर परमात्मा से आपका मिलन हो, तो वह तो आपको मनुष्य भी मालूम नहीं पड़ेगा।

पीछे की ओर, मूल की ओर, उदगम की ओर सम्मान का बोध अत्यंत विचार और विवेक की निष्पत्ति है। वह प्रकृति से नहीं मिलती। विमर्श, चिंतन, ध्यान से उपलब्ध होती है।

पर ध्यान रखना, जो भी मैं कह रहा हूं वह आपसे बेटे और बेटियों की तरह कह रहा हूं पिता और माता की तरह नहीं।

दूसरा प्रश्न :
आपने पहले कहा है, क्षण— क्षण जीयो, वर्तमान में जीयो। अब आप कह रहे हैं, अतीत में लौटो। हम क्या करें?

वर्तमान में जीना तभी संभव है, जब अतीत से छुटकारा हो जाए। उसके पहले कोई वर्तमान में जी नहीं सकता। इन दोनों बातों में कोई विरोध नहीं है। वर्तमान में वही जी सकता है, जिसके मन पर अतीत का कोई बोझ नहीं। अतीत का बोझ हो, तो वर्तमान में जीने का उपाय नहीं।

और अतीत का बोझ आपके ऊपर है। यह अतीत में लौटने की प्रक्रिया उस बोझ को काटने का उपाय है। उससे छुटकारा चाहिए, वह गिर जाए। जैसे वस्त्रों को छोड़कर कोई नग्न खड़ा हो जाए, ऐसा अतीत छूट जाए और आप नग्न वर्तमान में खड़े हो जाएं, तो ही वर्तमान में जी सकेंगे, तो ही क्षण— क्षण होने का अनुभव होगा। ये दो बातें विरोधी मालूम पड़ सकती हैं। लेकिन अतीत में लौटना वर्तमान में जीने की कला है।

अतीत में जीने को नहीं कह रहा हूं आपसे कि आप अतीत में जीएं। अतीत में जीने का कोई उपाय नहीं है। जो जा चुका वह जा चुका, वह अब है नहीं। उसमें जीएंगे कैसे? कल तो बीत गया। और कल को लाने का अब कोई मार्ग नहीं है।

लेकिन कल की स्मृति भीतर टंगी रह गई है। वह अभी भी मौजूद है। कल बीत चुका, सांप जा चुका, उसकी केंचुली आपके मन में अटकी रह गई है।

वह जो कल की स्मृति आपके मन में आज भी मौजूद है, उस स्मृति से छुटकारा चाहिए। उस स्मृति से आपका रस समाप्त हो जाए। उस स्मृति के न तो आप पक्ष में रहें, न विपक्ष में। न तो उस स्मृति से लगाव रहे और न घृणा। उस स्मृति से आपका सारा संबंध छूट जाए, जैसे वह हुई या नहीं हुई बराबर हो जाए। तो आप अतीत से मुक्त हो गए; तो आपने अतीत की स्लेट को पोंछकर साफ कर दिया। तब ही आप वर्तमान में जी पाएंगे। तब आपकी आंखें उज्ज्वल होंगी, ताजी होंगी, नई होंगी। और आप जो भी देखेंगे, उसमें आपकी आंखों पर पड़ी हुई अतीत की धूल बाधा नहीं देगी। वह धूल नहीं है वहा; दर्पण स्वच्छ है।

तो अतीत में लौटने की प्रक्रियाएं वर्तमान में जीने की विधियां हैं। और जो व्यक्ति अतीत में लौटने से डरता है, वह डरता ही इसलिए है कि अतीत बहुत भारी है। अतीत का स्मरण ही उसको बेचैन और विचलित कर देता है। उसका अर्थ है कि मन में भीतर अतीत के घाव अभी हरे हैं। कैसे वर्तमान में जीएंगे?

कल किसी ने आपको गाली दी थी, वह आदमी आपको आज फिर सड़क पर दिखाई पड़ गया है। आपकी आंखें खाली नहीं हैं; गाली से भरी हैं। आपका मन खाली नहीं है, कल की गाली अभी भी अनुगूंज कर रही है, अभी भी गंज रही है। और उस आदमी को देखते ही गाली फिर से सजग हो जाएगी। और इस आदमी को आप वैसा नहीं देखेंगे, जैसा वह अभी है। वैसा देखेंगे, जैसा वह कल गाली देते समय था।

और हो सकता है, वह आदमी क्षमा मांगने आ रहा हो। और हो सकता है, वह भूल ही चुका हो गाली। हो सकता है, उसने पश्चात्ताप कर लिया हो, अपने को दंड दे लिया हो। लेकिन यह नया आदमी आपको दिखाई नहीं पड़ेगा। आपके पास आंखें पुरानी हैं। आप आज देख ही नहीं रहे हैं; कल से देख रहे हैं।

और हमारा सारा देखना ऐसा है, हमारा सारा सुनना ऐसा है। हम होते ही यहां हैं न के बराबर, निन्यानबे प्रतिशत अतीत बीच में खड़ा होता है। उसके कारण वर्तमान से वंचित हो जाते हैं।

तो जो कल मैंने आपको कहा अतीत में लौटने के प्रयोग, वे अतीत से छूटने के प्रयोग हैं। लौटकर वहां टिक नहीं जाना है। लौटकर वहा रुक नहीं जाना है। लौटना है सिर्फ इसलिए, ताकि अतीत को आप सचेतन रूप से जी लें। इस बात को थोड़ा खयाल से समझ लें।

अतीत में आप रहे हैं, लेकिन तब आप अचेतन थे। कल इस आदमी ने गाली दी थी, तब आपके पास होश नहीं था। तब गाली इतने जोर से चोट की थी, आप इतने धुएं से भर गए थे, क्रोध इतना उबल आया था कि आप देख नहीं सके क्या हुआ। उस क्रोध की मूर्च्छा में आप सचेतन रूप से अनुभव से गुजर नहीं सके।

लेकिन अब तो कल बीत गया। कल की गाली भी गई, आदमी भी गया, कल भी गया। अब आप बैठकर चुपचाप कल की घटना में फिर से उतर सकते हैं। और अब आप सचेतन रूप से, काशसली उतर सकते हैं। जो कल संभव नहीं हुआ, वह आज संभव हो सकता है।

और आप चकित हो जाएंगे। अगर आप होशपूर्वक कल की घटना में गए, तो आप अचानक पाएंगे, उस घटना का दंश समाप्त हो गया। उस घटना में कोई चोट न रही, उस गाली में अब कोई काटे न रहे। और अगर यह स्मृति में हो सकता है, तो इससे एक अनुभव मिलेगा कि अगर आप यह वस्तुत भी कर सकें, तो आपकी जिंदगी में कोई कांटे नहीं रह जाएंगे।

तब कल फिर कोई गाली आपको देगा—जिंदगी के रास्ते पर बहुत काटे हैं—और जब कल आपको दुबारा कोई गाली दे, तो आपका यह सचेतन गाली में लौटने का अनुभव सहयोगी होगा। तब आप अतीत बनने ही मत देना, तब आप वहीं देख लेना। तब आप वहीं खड़े हो जाना शात और इस घटना को ऐसे ही देखना, जैसे यह कोई स्मृति का एक खेल हो। वस्तुत: न घटती हो, सिर्फ मन में एक कल्पना हो रही हो। तो फिर आपका अतीत निर्मित ही न होगा।

अतीत के साथ दो काम करने हैं। जो बंधा हुआ अतीत है, जिसको हम इस मुल्क में कर्म और संस्कार कहते रहे हैं, उसकी निर्जरा करनी है, उसको झाड़ू देना है। और दूसरा काम यह करना है कि अब आगे अतीत निर्मित न हो पाए। तो रोज—रोज झाड़ू देना है। जैसे ही धूल पड़े, उसी समय झाड़ू देना है। इकट्ठा करने का प्रयोजन भी क्या है? जिससे कल छूट ही जाना है, उसे आज बांध लेने की जरूरत क्या है? और जो कल बोझ बन जाएगा, उसे हम आज संग्रह क्यों करें?

तो जो संगृहीत है, उससे छूटना है। और जो संगृहीत हो सकता है, उसको संगृहीत नहीं करना है। पिछले संस्कार को पोंछना है, नए संस्कार को निर्मित नहीं होने देना है। तब आप दर्पण की तरह स्वच्छ हो जाएंगे। तब जगत आपको वैसा ही दिखाई पड़ेगा जैसा है। तब आप उसको बिगाड़ेंगे नहीं, तब आप उसमें जोडेंगे और घटाएंगे नहीं। और अगर ऐसी दर्पण जैसी स्थिति मिल जाए, तब जो हम जानते हैं, वह संसार नहीं है, वह परमात्मा है। तब जो हम जानते हैं, वह मूल है, उत्स है, उदगम है। उसे जानते ही जीवन के सारे दुख तिरोहित हो जाते हैं।

इन दोनों बातों में विरोध नहीं है। एक है लक्ष्य, वर्तमान में जीना। और दूसरी है विधि, अतीत में उतरना, जिससे यह लक्ष्य पूरा हो सकता है। लेकिन कठिन हमें मालूम पड़ता है।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन को गाली देने की सहज आदत थी, अकारण भी, निर्जीव वस्तुओं को भी। अपनी बैलगाड़ी को हाककर ले जाता खेत तक, तो बैलों को भी गाली देता।

गांव में एक फकीर आया हुआ था और नसरुद्दीन को उसने रास्ते पर बैलों को गाली देते देखा। उसने नसरुद्दीन को समझाया। और बात तो सीधी थी; समझने का कोई खास कारण भी न था। बैलों को माली देने का कोई अर्थ नहीं है। और उनसे दूर के कामुक रिश्ते जोड़ना—मां—बहन, उनकी मां और बहन से संबंध जोड़ना निपट पागलपन की बात है। नसरुद्दीन को समझ में भी आ गया। तो उसने प्रतिशा कर ली, कसम खा ली कि अब, अब दुबारा ऐसी भूल नहीं करूंगा।

लेकिन कसमों से आदतें कभी टूटती नहीं। और कसमों से आदतें टूटती होतीं, तो सारी दुनिया कभी की बदल गई होती। और सिर्फ बुद्धि को बात ठीक लगती है, उतना ही काफी नहीं है जीवन रूपांतरण के लिए। क्योंकि जीवन बुद्धि से ज्यादा गहरा है। वहा अचेतन परतें हैं। और बुद्धि की खबर वहा तक नहीं पहुंचती।

पंद्रह दिन ही नहीं बीते होंगे कि फिर फकीर रास्ते पर मिल गया। फकीर दिखाई पड़ा, तो नसरुद्दीन उस वक्त बैलों को गाली दे रहा था और कोड़े मार रहा था। जैसे ही फकीर को देखा, तो उसने फकीर को अनदेखा कर दिया, और जोर से बैलों से कहा कि सुनो, अगर पंद्रह दिन पहले की बात होती, तो जो बातें मैंने कहीं, वह मैं तुमसे कहता। लेकिन चूंकि अब मैं कसम खा चुका हूं, इसलिए प्यारे बच्चो, जरा जल्दी—जल्दी चलो।

वह गालियां दे रहा था, लेकिन बैलों से कहा कि अगर पंद्रह दिन पहले की बात होती, तो ये बातें मैंने तुमसे कही होतीं। अब चूंकि कसम खा चुका..।

जो भी हमने पीछे किया है, सोचा है, उस सबके गहरे खांचे हमारे मन पर होते हैं। और उन्हीं खांचों को हम रोज—रोज उपयोग करते हैं, तो खांचे और गहरे हो जाते हैं। आप निर्णय भी कर लें कि अब ऐसा नहीं करूंगा, तो इस निर्णय का खांचा तो इतना गहरा नहीं होता, यह तो निर्णय अभी पतली लकीर है। यह निर्णय कभी भी हार जाएगा, क्योंकि पुराने खांचे हैं, उनकी लीकें बन गई हैं।

जैसे गांव के कच्चे रास्तों पर गाड़ी की लीक बन जाती है। फिर आप बैलगाड़ी चलाएं, उसी लीक में चके फिर पहुंच जाएंगे, फिर पहुंच जाएंगे। वे गड्ढे खाली हैं, चकों को उनमें जाना आसान है। ठीक मन पर लीकें हैं। अतीत का अर्थ है, अनंत लीकें। तो आप कितनी ही बातें समझ लेते हैं; बुद्धि सहमत हो जाती है, निर्णय ले लेते हैं; संकल्प कर लेते हैं। और जब संकल्प करते हैं, तब सोचते हैं कि कुछ होने—जाने वाला है। घड़ी भी नहीं बीत पाती कि जो आपने निर्णय लिया था, वह टूट जाता है। और तब सिर्फ आत्मग्लानि पैदा होती है, और कुछ भी नहीं।

आपके संत, आपके फकीर, आपके पंडित—पुरोहित, आप में सिर्फ आत्मग्लानि पैदा करवा पाते हैं और कुछ भी नहीं। क्योंकि उनकी बातें तो तर्कयुक्त हैं। आप भी कह नहीं सकते कि वे गलत

कह रहे हैं। स्वीकार करना पड़ता है कि ठीक कह रहे हैं। उस स्वीकृति में आप निर्णय लेते हैं।

लेकिन निर्णय किसके खिलाफ ले रहे हैं! न मालूम कितनी लंबी लकीरें भीतर हैं, गहरे खांचे हैं। उनमें चलने की आदत हो गई है। उनमें चलना सुगम है। वे खांचे बार—बार आपको खींचेंगे।

अतीत में वापस उतरने का अर्थ यह है, इन खांचों को मिटाना जरूरी है। इसके पहले कि आप कसम खाएं, बदलाहट का कोई निर्णय लें, जिससे आप छूटना चाहते हैं, उससे सचेतन रूप से गुजर जाना जरूरी है। आप प्रयोग करके देखें, कि चीज से भी आप सचेतन रूप से गुजर जाएंगे, उससे छुटकारा हो जाएगा।

एक महिला मेरे पास लाई गई। उसके पति चल बसे हैं। तीन महीने हो गए, लेकिन वह रोई भी नहीं। बुद्धिमान है; एक युनिवर्सिटी में प्रोफेसर है। पढ़ी—लिखी है। किताबें लिखी हैं। कविताएं लिखती है। प्रवचन करती है। और जब नहीं रोई, और उसकी आंख से आंसू न गिरे, तो आस—पास के लोगों ने भी बड़ी प्रशंसा की। उस प्रशंसा ने अहंकार को और बल दिया। उससे वह और भी अकड़ गई। लेकिन तीन महीने के बाद उसे हिस्टीरिया के फिट आने शुरू हो गए; मूर्च्छा आने लगी। तो मूर्च्छा की चिकित्सा शुरू हो गई।

लेकिन किसी ने भी यह फिक्र न की कि उसने दुख की एक गहरी वेदना को बिना जीए दबा लिया। यह बिलकुल स्वाभाविक था कि वह रो लेती। और समझदार लोग आस—पास होते, तो उसे रोने में सहायता पहुंचाते। यह उचित था कि घाव जी लिया जाता। वह नहीं हो पाया। भीतर रोना भरा रहा। आंसू निकलना चाहते थे, रोक लिए गए। उन सबका बोझ भारी हो गया। मन हलका न हो पाया। उस मन के बोझ का परिणाम होने ही वाला था कि कोई भी भयानक बीमारी पैदा हो जाए।

उस स्त्री की पूरी बात सुनकर मैंने उसे कहा कि कुछ और इलाज की जरूरत नहीं है, तू जी भरकर रो ले। उसने कहा, लेकिन क्या फायदा रोने से? रोने से क्या मरा हुआ व्यक्ति मिलेगा?

मैं भी नहीं कह रहा हूं कि रोने से मरा हुआ व्यक्ति मिलेगा। रोने से तू ठीक से जीवित हो सकेगी। मरा हुआ व्यक्ति तो नहीं मिलने वाला है। लेकिन अगर नहीं रोई, तो तू भी मरी हुई हो जाएगी। मरी हुई हो ही गई है। तेरा हृदय भी पत्थर जैसा हो जाएगा।

उसने कहा, अब बड़ा मुश्किल है। जिस क्षण पति मरे थे, उस समय तो आसान था; अब तो समय भी काफी बीत चुका।

उससे कहा, तुझे लौटाना पड़ेगा; अतीत में वापस जाना पड़ेगा।

तुझे उस दिन से फिर कहानी शुरू करनी पड़ेगी, जिस दिन पति मरे थे। तो तू आंख बंद कर ले और जिस क्षण पहला तुझे समाचार मिला पति के मरने का, वहाँ से फिर से तू यात्रा शुरू कर। ये पीछे के जो दिन बीते, इनको भूल जा और फिर से जी।

वह मेरे सामने बैठी—बैठी ही विकल हो गई। उसके हाथ—पैर में कंपन आ गया। उसकी आंखें बद हो गई। उसके जबडे भिंच गए। चीख और रोना शुरू हो गया। कोई पंद्रह दिन गहन पीड़ा रही। लेकिन तब हल्कापन आ गया। अब वह हंस सकती है।

इस फर्क को आप समझ लें।

रोने से सचेतन रूप से गुजरी, तो अब हंस सकती है। रोने को दबा लिया था, तो हंसना तो दूर, हिस्टीरिया परिणाम था।

अतीत को सचेतन रूप से एकबार आप देख लें, तो आप हंस सकते हैं। तब बोझ तिरोहित हो जाता है। और उसके बाद ही वर्तमान में जीना संभव है।

आखिरी प्रश्न :
गीता की धारणा है कि संसार श्रेष्ठ से अश्रेष्ठ की ओर पतन है। उसके अनुसार हिंदुओं की सतयुग से लेकर कलियुग के अवरोहण की धारणा भी सही लगती है। लेकिन ज्ञात इतिहास बताता है कि मनुष्य—जाति नरमेध, दासता और दरिद्रता से निकलकर क्रमश: समृद्धि और स्वतंत्रता की ओर गतिमान रही है। इसमें तथ्य क्या है?
पहली बात, बच्चा पैदा होता है, तब वह निर्दोष है, तब उसकी स्लेट कोरी है। न उस पर बुरा है कुछ, और न अच्छा है। बच्चा साधु नहीं है, निर्दोष है। असाधु भी नहीं है। असाधु तो है ही नहीं, साधु होने का दोष भी अभी उसके ऊपर नहीं है। अभी उसने हा और न कुछ भी नहीं कहा है। अभी उसने बुरा और अच्छा कुछ भी चुना नहीं है। अभी निर्विकल्प है। अभी उसका कोई चुनाव नहीं है। अभी च्वाइसलेस है। अभी उसे पता भी नहीं कि क्या अच्छा है और क्या बुरा है। अभी भेद पैदा नहीं हुआ। अभी बच्चा अभेद में जी रहा है।

यह जो बच्चे की दशा है, यही दशा पूरे समाज की भी कभी रही है, उसी को हिंदू सतयुग कहते हैं। और ठीक मालूम होता है, वैज्ञानिक मालूम होता है। क्योंकि एक व्यक्ति की जीवन—कथा जो है, वही जीवन—कथा सभी व्यक्तियों की जीवन—कथा है।

बच्चा निर्दोष पैदा होता है और का सब दोषों से भरकर मरता है। सतयुग बचपन है समाज का। और कलियुग बुढ़ापा है समाज का; वह अंतिम घड़ी है। जब सब तरह के रोग इकट्ठे कर लिए गए। जब सब तरह की बीमारियां संगृहीत हो गईं। जब सब तरह के अनुभवों ने आदमी को चालाक और बेईमान बना दिया, भोलापन खो गया।

हालांकि उस बेईमानी और चालाकी से कुछ मिलता नहीं है। क्योंकि मिलता होता, तो के प्रसन्न होते और बच्चे दुखी होते। खोता ही है, मिलता कुछ नहीं है। लेकिन मन समझाता है कि होशियारी.।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक फैक्टरी में काम करता था, तो उसका हाथ कट गया। मशीन के भीतर आ गया बायां हाथ और कट गया। महीनों के इलाज के बाद जब वह अस्पताल से वापस लौटा, उसके मित्र उसे देखने आए। और उन्होंने कहा कि नसरुद्दीन, परमात्मा को धन्यवाद दो कि अच्छा हुआ कि दायां हाथ न कटा, नहीं तो जिंदगी

बेकार हो जाती। नसरुद्दीन ने कहा कि धन्यवाद देने की कोई जरूरत नहीं। हाथ तो मेरा भी मशीन में दायां ही गया था, वह तो मैंने वक्त पर चालाकी की, दायां तत्काल खींचकर बायां अंदर कर दिया।

तो जिसे हम आदमी की समझदारी कहते हैं, वह इससे ज्यादा नहीं है। क्योंकि फल क्या है? सारी बुद्धिमत्ता कहा ले जाती है? हाथ में बचता क्या है? बच्चे को हानि क्या है? उसकी निर्दोषता से उसका क्या खो रहा है? निर्दोष चित्त का कुछ खो ही नहीं सकता। क्योंकि उसकी कोई पकड़ नहीं है।

मनुष्य की जो, एक—एक व्यक्ति की जो कथा है, हिंदू विचार पूरे जीवन की कथा को भी वैसा ही स्वीकार करता है। मनुष्य—जाति का जो आदिम युग था, वह सतयुग है। जब लोग सरल थे और बच्चों की भांति थे। और यह बात सच मालूम पड़ती है। आज भी आदिम जातियां हैं, वे सरल हैं और बच्चों की भांति हैं।

फिर सभ्यता, समझ, गणित का विकास होता है। हृदय खोता है और बुद्धि प्रबल होती है। भाव क्षीण होते हैं और हिसाब मजबूत होता है। कविता खो जाती है और गणित ही गणित रह जाता है। आज जैसा अमेरिका है। सब चीज गणित हो जाती है। आंकडे सब कुछ हो जाते हैं। सबसे ऊपर कैलकुलेशन, हिसाब हो जाता है। चालाकी है। लेकिन हिंदू हिसाब से कलियुग है। आखिरी वक्त है; सबसे बुरा वक्त है।

इसे विकास कहें या इसे पतन कहें? के को बच्चे का विकास कहें? या बूढ़े को बचपन का खो जाना कहें, पतन कहें? अगर आप से कोई पूछे, तो दोनों में क्या होना चाहेंगे? उससे निर्णय हो जाएगा। क्योंकि जो आप होना चाहेंगे, वही पाने योग्य है, वही श्रेष्ठ है। जो आप न होना चाहेंगे, वहीं कुछ भांति, भूल, कहीं कुछ अंधकार है।

कोई भी बूढा नहीं होना चाहता और कोई भी सिर्फ गणित में नहीं जीना चाहता। क्योंकि जीवन के आनंद की कोई भी झलक मस्तिष्क में कभी नहीं उतरती। जीवन का आनंद, जीवन का नृत्य, जीवन की सुगंध तो हृदय ही अनुभव करता है। मस्तिष्क सब कुछ दे सकता है, सिवाय आनंद को छोड्कर। और हृदय के साथ शायद सब कुछ खो जाएगा, सिर्फ आनंद बचेगा। लेकिन सब कुछ खोकर भी आनंद बचाने जैसा है।

जिसको हम वैज्ञानिक विकास कहते हैं, वह विज्ञान का विकास होगा। ज्यादा बड़ी मशीनें हमारे पास हैं, ज्यादा बडे मकान हमारे पास हैं। लेकिन वे आनंद का विकास तो नहीं हैं। क्योंकि उन बड़े मकानों में भी दुखी लोग रह रहे हैं। झोपड़ों में भी इतने दुखी लोग नहीं थे, जितने बड़े मकानों में दुखी लोग रह रहे हैं। और जिनके पास कुछ भी न था, कोई औजार न थे, कोई शस्त्र—साधन न थे, वे भी इससे ज्यादा आनंदित थे। हमारे पास एटामिक मिसाइल्स हैं, चांद पर पहुंचने के उपाय हैं, लेकिन सुख का कोई कण भी नहीं है।

कैसे हम नापते हैं, यह सवाल है। अगर आप सिर्फ रुपयों के ढेर से नापते हैं कि आदमी का विकास हुआ कि पतन, तो विकास हुआ है। अगर आप आदमी में देखते हैं और नापते हैं, तो पतन हुआ है। तो आपकी दृष्टि पर निर्भर करेगा। क्या दृष्टिकोण है? मापदंड क्या है? क्राइटेरियन क्या है? नापते कैसे हैं?

हिंदू चिंतन, उपनिषद के ऋषि या गीता के कृष्ण, मनुष्यता से नापते हैं। क्या आपके पास है, यह मूल्यवान नहीं है, आप क्या हैं, यही मूल्यवान है। कितना आपके पास है, यह व्यर्थ हिसाब है। कितनी आत्मा है! कितना सत्व है! कितना चैतन्य है! आप क्या हैं! बीइंग से नापते हैं, हैविंग से नहीं। आपके बैंक बैलेंस से आपके होने का कोई नाता नहीं है। आप नग्न खड़े हों, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता, तो भी आपके भीतर सत्व हो सकता है।

महावीर जैसे नग्न खड़े व्यक्ति के पास भी आत्मा है, सब कुछ है। बाहर से कुछ भी नहीं है। कैसे नापते हैं!

इस युग से ज्यादा दुखी कोई युग नहीं था। इस युग से ज्यादा विक्षिप्तता किसी युग में नहीं थी। फिर भी हम कहे चले जाते हैं, संपन्न हैं! फिर भी हम कहे चले जाते हैं, वैभवशाली हैं!

सच है, बात तो सच है। इतनी संपन्नता भी कभी नहीं थी। इतनी विपन्नता भी कभी नहीं थी। पर दो अलग कोण हैं नापने के। एक कोण है, जो धन से नापता है, पदार्थ से नापता है। और एक कोण है, जो चेतना से नापता है।

चेतना की दृष्टि से मनुष्य का पतन हुआ है परमात्मा से। इसलिए हम चेतना को फिर वापस उसी स्थिति में ले जाएं, जहां से परमात्मा से हमारा संबंध छूटता है। फिर हमारी धारा वहीं गिरे, तो वही परम निष्पत्ति होगी।

लेकिन पदार्थ की दृष्टि से, साधन—सामग्री की दृष्टि से हम रोज विकास कर रहे हैं। हम विकास कर रहे हैं, यह कहना भी शायद ठीक नहीं है, क्योंकि मशीनें खुद ही विकास कर रही हैं। अब तो आदमी को उसमें हाथ बंटाने की भी जरूरत नहीं है। कंप्यूटर हैं, वे विकास करते चले जाएंगे।

और वैज्ञानिक कहते हैं, इस सदी के पूरे होते—होते हम ऐसी मशीनें पैदा कर लेंगे, जो मशीनों को जन्म दे सकें, अपने से बेहतर मशीनों को जन्म दे सकें। वह बिल्ट—इन हो जाएगा, कि मशीन जब टूटने के करीब आए, मिटने के करीब आए, तो अपने से बेहतर मशीन को जन्म दे जाए। जैसे आप एक बच्चे को जन्म दे जाते हैं। तब तो फिर आपकी बिलकुल भी जरूरत नहीं होगी। तब मशीनें विकसित होती रहेंगी। आप अपने घर भी बैठे रहे, जैसे थे वैसे रहे, तो भी मशीनें विकसित होती रहेंगी।

मशीन ही विकसित हो रही है। आदमी खों रहा है। इस हिसाब से पतन है।

इसमें पूरा पूरब सहमत है। बुद्ध, लाओत्से, कृष्ण, सब सहमत हैं, जीसस, मोहम्मद, सब सहमत हैं, जरथुस्त्र, कनफ्यूसियस, सब सहमत हैं कि बचपन श्रेष्ठतम है, शुद्धता की दृष्टि से। और इसलिए जब कोई व्यक्ति, लाओत्से कहता है, पुन: बचपन को उपलब्ध हो जाता है, तब वह संत हो गया। वर्तुल पूरा हुआ। उदगम से फिर मिलना हो गया। कृष्ण भी यही गीता में कह रहे हैं।

अब हम सूत्र को लें।
इस संसार—वृक्ष का रूप जैसा कहा है, वैसा यहां नहीं पाया जाता है, क्योंकि न तो इसका आदि है और न अंत है तथा न अच्छी प्रकार से स्थिति ही है। इसलिए इस अहंता, ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलों वाले संसाररूप पीपल के वृक्ष को दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्र द्वारा काटकर.।

यह जो उलटे वृक्ष की कल्पना कृष्ण ने दी, ऐसा हम खोजने जाएंगे, तो हमें मिलेगा नहीं। उसके कई कारण हैं।

पहला तो कारण यह है कि हम उस वृक्ष की एक छोटी शाखा हैं। हम खोजने जा नहीं सकते। हम उस वृक्ष से दूर खड़े होकर देख नहीं सकते। हम उस वृक्ष के अंग हैं। इसलिए हम कैसे देख पाएंगे कि वृक्ष उलटा खड़ा है; जड़ ऊपर है और पत्ते नीचे हैं। हम पत्ते ही हैं या हम शाखाएं हैं। हम वृक्ष के अंग हैं, उससे हम दूर नहीं हो सकते हैं।

इसलिए संसार के वृक्ष की यह उलटी जो अवस्था है, ध्यान की परम गुह्य स्थिति में ही दिखाई पड़ती है। उसके पहले नहीं। क्यों? क्योंकि ध्यान की उस गुह्य स्थिति में आप वृक्ष के हिस्से नहीं रह जाते, आप संसार के हिस्से नहीं रह जाते। इसलिए सिर्फ समाधि में ही इस उलटे वृक्ष का पूरा रूप दिखाई पड़ता है। यह समाधिस्थ चित्त की अनुभूति है।

आप इसे समझ लें बुद्धि से, उतना ही काफी है। आप इसे देख न पाएंगे। वृक्ष विराट है। वैज्ञानिक कहते हैं, इसका हम कोई ओर—छोर नहीं उपलब्ध कर पाते हैं। जितनी खोज बढ़ती है, उतना ही यह वृक्ष विराट मालूम होता है। रोज नए तारे खोजे जाते हैं; नए सूरज खोजे जाते हैं।

अब तक कोई चार अरब सूरज खोजे जा चुके हैं। और कभी ऐसा लगता था कि एक सीमा आ जाएगी, जब खोज समाप्त हो जाएगी; हम पहुंच जाएंगे अंतिम सीमा पर। पर अब कोई सीमा नहीं मालूम होती है। जितना आगे बढ़ते हैं, नई खोज होती चली जाती है।

वृक्ष बहुत बड़ा मालूम होता है, विराट मालूम होता है। और हम उसके अंग हैं, इसलिए दूर खड़े होकर हम देख नहीं पाते हैं। देखने की कोई संभावना भी नहीं है।

फिर न तो इसका कोई आदि है और न अंत है। अगर इसका कोई प्रारंभ होता, तो भी देखना आसान था। अगर कभी यह अंत होता होता, तो भी देखना आसान था। यह एक अनंत श्रृंखला है। एक तरफ एक ग्रह उजड्ता है, तो दूसरा ग्रह निर्मित हो जाता है। एक तरफ एक सूरज बुझता है, तो दूसरे सूरज में प्राण आ जाते हैं।

वैज्ञानिक सोचते हैं कि शायद पांच हजार वर्ष बाद हमारा सूरज ठंडा हो जाएगा, क्योंकि उसकी गरमी रोज चुकती जाती है। लेकिन कुछ दूसरे सूरज, जो ठंडे पडे हैं, गरम होते जा रहे हैं। जैसे ही हमारा सूरज ठंडा होगा, कोई सूरज दूसरा गरम हो जाएगा। इस सूरज के ठंडे होते ही इस पृथ्वी से जीवन तिरोहित हो जाएगा। लेकिन किसी और पृथ्वी पर जीवन के अंकुरण शुरू हो जाएंगे। वैज्ञानिक हिसाब से कोई पचास हजार पृथ्वियों पर जीवन अभी है। होना चाहिए। वृक्ष की एक शाखा सूखती है, तो दूसरी शाखा निकल जाती है। वृक्ष मुरझाए, कि नए अंकुर आ जाते हैं। पुराने पत्ते गिर भी नहीं पाते कि नए पत्ते प्रकट होने लगते हैं।

श्रृंखला अनंत है। इसलिए न पीछे खड़े होने का उपाय है, न आगे खड़े होने का उपाय है। न किनारे खड़े होने का उपाय है, क्योंकि हम उसके हिस्से हैं, हम श्रृंखला हैं।

और इसलिए भी अच्छी प्रकार से नहीं समझा जा सकता, क्योंकि इसकी कोई ठीक स्थिति नहीं है। यह शब्द समझ लेने जैसा है। स्थिति केवल परमात्मा की है, संसार की केवल गति है, स्थिति नहीं है।

यहां सब चीजें हो रही हैं; कोई भी चीज है की अवस्था में नहीं है। इसलिए बुद्ध ने तो कहा कि है शब्द का प्रयोग ही मत करना। जैसे हम कहते हैं, वृक्ष है। तो बुद्ध कहते हैं, ऐसा कहना ही मत, क्योंकि है की कोई स्थिति नहीं है। वृक्ष हो रहा है। जब तुम कहते हो, वृक्ष है, तब भी वह हो रहा है। हम कहते हैं, यह जवान है, तब भी हम गलत कहते हैं। क्योंकि जब हम कहते हैं, जवान है, तब वह जवान हो रहा है या का हो रहा है। लेकिन है की कोई स्थिति नहीं है। हमेशा होने की स्थिति है, भवति। सभी कुछ बिकमिंग है। कहीं कुछ ठहरा नहीं है।

स्थिति का अर्थ है, ठहराव। परमात्मा के सिवाय और किसी की कोई स्थिति नहीं है। बाकी सब बहाव है। जैसे नदी बह रही है, ऐसे आप भी बह रहे हैं। ऐसी हर चीज बह रही है।

यह वृक्ष एक बहाव है, इसलिए भी देखना बहुत मुश्किल है। क्योंकि हर चीज बदल रही है। आप देख भी नहीं पाते कि बदल जाती है। आप इसके पहले कि समझ पाएं, स्थिति बदल जाती है। इसके पहले कि आप पकड़ पाएं, जिसको आप पकड़ रहे थे, वह वहा मौजूद न रहा। कुछ और हो गया। यहां सब धुआं— धुआं है, बादलों की तरह है। जैसे बादलों में हम आकृति नहीं पकड़ पाते हैं। आप देख रहे हैं कि एक हाथी बन रहा है बादलों में; और आप देख भी नहीं पाए कि हाथी बिखर गया, कुछ और बन गया।

पूरा जगत धुआं— धुआं है। स्थिति केवल परमात्मा की है। और जब तक स्थिति उपलब्ध न हो, तब तक कोई भी ठहराव समझ का, बुद्धि का नहीं हो सकता। तब तक ज्ञान की कोई अवस्था नहीं है। इसलिए हिंदुओं की सारी चेष्टा इस बात में रही है कि कैसे आप गति से मुक्त हों और स्थिति को प्राप्त हों। कैसे दौड़ना बंद हो और ठहरना आए। कैसे प्रवाह रुके, थम जाए। नदी बहते—बहते कैसे एकदम जम जाए, बर्फ हो जाए। सब चीजें ठहर जाएं।

इस भीतर के चित्त की दौड के रुक जाने का नाम ही ध्यान है। भीतर कुछ भी न दौड़े, कोई गति न रहे, कोई प्रवाह न रहे, सब चीजें फ्रोजन हो जाएं, जड़ हो जाएं, ठहर जाएं, सब कंपन समाप्त हो जाएं; उसी क्षण आप परमात्मा हो गए। जब तक आप बहते हैं, तब तक संसार है। जब आप ठहरते हैं, तब आप परमात्मा हैं।

परमात्मा ही समझा जा सकता है। यह बड़ा विरोधाभासी लगेगा। क्योंकि विज्ञान कहता है, संसार समझा जा सकता है, परमात्मा को समझने का कोई उपाय नहीं। परमात्मा का पता ही नहीं चलता है कि वह कहां है! समझना दूर, यह भी तय करना मुश्किल है कि है भी या नहीं। और गीता कहती है कि सिर्फ परमात्मा ही समझा जा सकता है, क्योंकि वह

थिर है। वह जाना जा सकता है, उस पर भरोसा किया जा सकता है, वह रिलाएबल है। ऐसा नहीं कि आप एक आंख उठाकर देखेंगे और जब दुबारा आंख खोलेंगे, तो वह बदल गया। वह वही होगा—इस जन्म में, अगले जन्म में, कल्पों—कल्पों बाद, युगों—युगों बाद—आप जब भी लौटकर आएंगे, वह वही होगा।

वह कूटस्थ है, वह ठहरा हुआ है, वहां कुछ भी बदलता नहीं। आप कितना ही परिभ्रमण करें, कितना ही समय व्यतीत करें, जब भी आप लौटेंगे, आप पाएंगे, घर वैसा का वैसा है, सब वही है। वहां रत्तीभर कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

यह अपरिवर्तित ही समझा जा सकता है। क्योंकि यह भरोसे योग्य है। इस पर श्रद्धा की जा सकती है। संसार तो भरोसे योग्य नहीं है। वह तो छाया की भांति है।

खलील जिब्रान की एक बड़ी प्रसिद्ध कहानी है। एक लोमडी सुबह—सुबह उठी। भोजन की तलाश पर निकली। सूरज उगता था उसके पीछे। बड़ी लंबी छाया लोमड़ी की बनी। लोमड़ी ने अपनी छाया देखी और सोचा, आज तो एक हाथी मिले, तभी पेट भर पाएगा! इतनी लंबी छाया कि एक हाथी के बिना भोजन का कोई उपाय नहीं। और छाया से ही लोमडी जान सकती है कि मैं कितनी बडी हूं। और जानने का उपाय भी नहीं। आप भी दर्पण से ही जानते हैं कि आप कौन हैं। और तो कोई उपाय नहीं। दर्पण यानी छाया!

लोमड़ी बड़ी चिंतित भी हुई, क्योंकि कहां पाएगी हाथी? और भूख बढ़ने लगी और खोजती रही, खोजती रही। दोपहर हो गई, सूरज ऊपर आ गया; अभी तक भोजन भी नहीं मिला। और हाथी को पाने का खयाल, तो भूख भी हाथी जैसी, हाथी को पचाने जैसी भीतर हो गई। क्योंकि सारा मन का खेल है।

लेकिन हाथी मिला नहीं, भोजन मिला नहीं। नीचे झुककर उसने फिर छाया देखी। सूरज अब ऊपर आ गया, तो छाया करीब—करीब खो गई। तो लोमड़ी ने कहा, अब तो एक चींटी भी मिल जाए तो भी काम चलेगा।

संसार छाया की तरह है। और बचपन में हर आदमी सोचता है कि हाथी नहीं मिला, तो काम नहीं चलेगा। और बुढ़ापे में हर आदमी जानता है कि चींटी भी मिल जाए, तो भी काम चलेगा। छाया छोटी होती जाती है।

सभी बच्चे सिकंदर होना चाहते हैं। सभी के कहने लगते हैं, अंगूर खट्टे हैं। सभी बच्चे संसार को जीतने निकलते हैं। सभी बूढ़े वैराग्य की बातें करने लगते हैं। इसलिए नहीं कि वैराग्य आ गया। इसलिए कि छाया सिकुड़ गई। और अब इतने से भी काम चल जाएगा। और कुछ न भी मिला, तो भी काम चल जाएगा।

वैराग्य का मतलब है, छाया सिकुड़ गई। यह वैराग्य कोई वास्तविक नहीं है। अगर यह वैराग्य वास्तविक हो, तो जवानी में भी आ सकता था। इसके लिए बुढ़ापे तक रुकने की कोई जरूरत न थी।

यह जो लोमड़ी का कहना है कि चींटी से भी काम चल जाएगा, यह कोई बुद्धिमत्ता नहीं है। अगर यह बुद्धिमत्ता होती, तो सुबह भी छाया की भ्रांति में आने का कोई प्रयोजन न था। सिर्फ छाया सिकुड़ गई है।

इस संसार को समझने का ठीक—ठीक उपाय नहीं है, क्योंकि प्रतिपल बदल रहा है। इसकी कोई स्थिति नहीं है। इसलिए इस अहंता, ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलों वाले संसाररूप पीपल के वृक्ष को दृढ़ वैराग्य शस्त्र द्वारा काटकर।

इसको जानने में उलझने की भी कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि इसको जान—जानकर भी कोई कभी जान नहीं पाता।

विज्ञान सोचता था, इसी सौ वर्ष पहले, कि जल्दी ऐसा दिन आ जाएगा, जब हम सब जान लेंगे। अब वैज्ञानिक कहते हैं कि वह दिन कभी भी नहीं आएगा। क्योंकि जितना हम जानते हैं, उतना पता चलता है कि और भी जानने को शेष है। जितना हम जानते हैं, उतने ही अनजान तथ्य सामने आ जाते हैं जिनको जानने की चुनौती मिल जाती है। एक समस्या

हल नहीं होती, पचास खड़ी हो जाती हैं। उसको हल करने के कारण ही पचास समस्याएं उठ आती हैं, पचास प्रश्न उठ आते हैं।

अब विज्ञान का भरोसा डगमगा गया है। अब विज्ञान भी मानता है कि कोई अंतिम शान उपलब्ध हो सकेगा, इसकी आशा नहीं है। सब कामचलाऊ शान है। रिलेटिविटी का यही मतलब है कि सब शान कामचलाऊ है। हम जितना जानते हैं, उतने तक ठीक है। बाकी जितना हम और ज्यादा जानेंगे? सब गड़बड़ हो जाएगा।

परमात्मा ही जाना जा सकता है। उसकी स्थिति है। इसलिए धर्म के अतिरिक्त ज्ञान का कोई भी द्वार नहीं है।

विज्ञान कामचलाऊ उपयोगिता का द्वार है, शान का नहीं। उससे जो भी हम जानते हैं, वह करीब—करीब सत्य है, एप्राक्सिमेटली। लेकिन करीब—करीब सत्य का कोई मतलब नहीं होता। करीब—करीब सत्य का असत्य ही मतलब होता है। या तो कोई चीज सत्य होती है या नहीं होती। करीब—करीब सत्य का कोई अर्थ नहीं होता। पर उपयोगिता विज्ञान की है।

शान धर्म के माध्यम से उपलब्ध होगा। और ज्ञान तभी उपलब्ध होगा, जब हम स्थिति को उपलब्ध हो जाएं। अगर परमात्मा की स्थिति है और हमारी गति है, तो मिलन नहीं हो सकता। समान समान का ही मिलन संभव है। जब हम भी स्थित होंगे, तो उससे मिलन हो जाएगा। उस जैसे जब होंगे, तब हमारा उससे मिलन हो जाएगा।

ठहरते ही उस ठहरे हुए का अनुभव शुरू हो जाता है। और ठहरने का एक ही उपाय है। इस संसार के वृक्ष को समझने से कुछ न होगा, वरन अहंता, ममता और वासना, इन तीनों को वैराग्यरूपी शस्त्र द्वारा काटकर, उसके उपरात उस परम पद परमेश्वर को अच्छी प्रकार खोजना चाहिए।

वृक्ष को खोजने में न पड़े। वृक्ष को तो काट ही दें। और उसको खोजने में चलें, जिसका पतन वृक्ष है। जिससे गिरकर वृक्ष पैदा हो रहा है, उस मूल उदगम को खोजने चलें। उस बीज को पकड़े, उस मूल स्रोत को पकडे।

कभी आपने बीज को तोड़कर देखा? बीज आप बोते हैं, एक वृक्ष उससे निकल आता है। लेकिन जो बीज आप बोते हैं, उससे यह वृक्ष निकलता है? क्योंकि वह बीज तो सड़ जाता है, गल जाता है, मिट्टी में मिल जाता है। उस बीज से यह वृक्ष निकलता नहीं। उस बीज को कभी तोड़कर आपने देखा है? कहीं आप इस वृक्ष को खोज पाएंगे? उस बीज में कहीं यह वृक्ष मिलता भी नहीं है खोजने से। वैज्ञानिक, वनस्पतिशास्त्री भी कहते हैं कि बीज में कोई शून्य से ही वृक्ष निकलता है। बीज तो केवल उस शून्य को अपने भीतर छिपाए हुए है। बीज तो सिर्फ खोल है, भीतर कोई शून्य छिपा है। बीज की खोल टूटकर मिट्टी में मिल जाती है, उस शून्य से ही वृक्ष निकलता है।

तो बीज के भीतर जो छिपा शून्य है, वही उदगम है। और जब तक हम उस शून्य में प्रवेश न कर जाएं, तब तक मूल का, सत्य का कोई अनुभव संभव नहीं है।

इसलिए बुद्ध ने तो अपने सारे धर्म को शून्यता की छाया दे दी, शून्यता का रंग दे दिया। और कहा कि शून्य में प्रवेश कर जाओ, तो ब्रह्म की उपलब्धि है। और कोई ब्रह्म नहीं है।

जो भी दिखाई पड़ता है, वह खोल है। उस खोल के भीतर न दिखाई पड़ने वाला छिपा है। उस अदृश्य को जानने की दो बातें कृष्ण कह रहे हैं। पहले तो वैराग्य से अहंकार, ममता और वासना को काट डालें।

वैराग्य का क्या मतलब है? वैराग्य का मतलब है, यह बोध कि जहां —जहां मुझे सुख का खयाल होता है, वहा सुख नहीं है। यह शास्त्र से पढ़कर नहीं आ जाएगा। संसार को ही उसके पूरे तत्व में समझने से आएगा।

आपने बहुत प्रयोग किए हैं। जहां—जहां सुख की छाया दिखी है, वहा—वहा दौड़े हैं। फिर वहा सुख पाया या नहीं? अगर नहीं पाया, कभी भी नहीं पाया। जहं। भी प्रतिबिंब दिखा, वहीं गए और मृग—मरीचिका मिली। जहां भी ध्वनि

मिली, वहीं गए, लेकिन पाया कि सिर्फ खाली घाटियों में गूंजती आवाज थी। इंद्रधनुषों की खोज की। बड़े रंगीन थे दूर से; पास गए, खो गए। हाथ में कुछ भी न आया। इन सारे जीवन के अनुभवों का जो निचोड़ है, वह वैराग्य है। तो किसी शास्त्र को पढ़ने से वैराग्य नहीं आ जाएगा; कि आप भर्तृहरि का वैराग्य—शतक पढ़ लें और सोचें कि वैराग्य आ जाएगा। भर्तृहरि को वैराग्य—शतक का अनुभव आया गहन भोग से।

भर्तृहरि ने दो किताबें लिखी हैं। एक का नाम है, श्रृंगार—शतक। वह उसका पहला अनुभव है, संसार का अनुभव। तब उसने भोगा।

उसने सब भूलें कीं, जो कोई भी समझदार आदमी करेगा। जो कोई भी हिम्मती आदमी करेगा, उसने वे सब भूलें कीं। उसने अपने को भूलों से बचाया नहीं। क्योंकि भूलों से जो बचता है, वह अनुभव से भी बच जाता है। वह संसार के सब गली—कूचों में भटका। उसने संसार की सब पगडंडियां छान डालीं। उसने बुरे और भले का भेद भी नहीं किया। जहां उसकी वासना ले गई, गया। लेकिन होश सजग रखा और इस बात को जांचता रहा कि जहां—जहां वासना ले जाती है, वहां कुछ मिलता है या नहीं!

हर बार असफलता मिली। सुख कभी भी न पाया। सदा ही भ्रांति सिद्ध हुई। वासना ने जहां —जहां मार्ग दिखाया, वहीं—वहीं व्यर्थता हाथ आई, वहीं—वहीं विषाद मिला।

हजारों वासनाओं के मार्गों पर चलकर जब एक ही अनुभव होता है निरपवाद रूप से, तो वैराग्य का जन्म होता है। वैराग्य वासना की असफलता का सतत अनुभव, उसका सार—निचोड़ है। और तब यह बात कठिन नहीं रह जाती, अहंकार को, ममता को, वासना को काट देना जरा भी कठिन नहीं रह जाता।

वैराग्य की प्रतीति का अर्थ है, जहां —जहां वासना कहती है सुख है, वहां—वहा सुख नहीं है। जहां—जहां वासना कहती है सुख है, वहा—वहा दुख है, और जहां—जहां वासना कहती है दुख है, वहां—वहां सुख है। वासना धोखा देती है, प्रवंचक है, दि ग्रेट डिसीवर। इस प्रतीति का नाम वैराग्य है। और तब सुख में खोजना बंद, और दुख में खोज शुरू होती है।

दुख की खोज को हम तप कहते हैं। तपश्चर्या का अर्थ है, अब मैं सुख में नहीं खोजता; सुख में खोजा और नहीं पाया, अब मैं दुख में खोजूंगा। क्योंकि अगर सुख में खोजने से दुख मिला, तो संभावना है कि शायद दुख में खोजने से सुख मिल सके। विपरीत यात्रा करूंगा।

वैराग्य अनुभव है वासना की विफलता का। और जैसे ही यह अनुभव गहरा हो जाता है, यह अनुभव शस्त्र बन जाता है। तब साधक अपने भीतर वैराग्य के शस्त्र को लिए रहता है। जैसे ही वासना उससे कहती है वहां सुख, वहीं वह शस्त्र से गिराकर काट डालता है। वह कहता है, मैं जानता हूं; यह बहुत बार हो चुका। बुद्ध को जब पहली समाधि उपलब्ध हुई, तो उन्होंने जो पहले शब्द अपने भीतर कहे—किसी और से नहीं, खुद से कहे—वे ये थे कि बस, हे काम के देवता, अब तुझे मेरे लिए कष्ट न करना पड़ेगा। मैं भी दौड़ा और मेरे कारण तू भी काफी दौड़ा। अब तुझे मेरे लिए नए घर न बनाने पड़ेंगे। क्योंकि मैंने आधार ही गिरा दिया, अब कोई बुनियाद ही न रही।

वैराग्य के शस्त्र का अर्थ है, भीतर एक सजगता। वासना जहां—जहां धोखा देने लगे, वहां —वहां सजगता रुकावट बन जाए। वहा—वहां हम पुन: स्मरण कर सकें कि इस तरह की वासना में हम बार—बार उतर चुके हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मरने के करीब थी। तो उसने मुल्ला से कहा कि मुल्ला, शादी तो तुम करोगे ही मेरे मरने के बाद। शादी तो तुम करोगे ही, यह निश्चित है। नसरुद्दीन ने कहा, जल्दी नहीं करूंगा। पहले कुछ दिन आराम करूंगा।

यह विवाह काफी थका दिया है। इस विवाह ने काफी दुख दे दिया है। लेकिन इससे कोई वैराग्य उत्पन्न नहीं हुआ है। थोड़े दिन आराम करके वासना फिर सजग हो जाएगी। वासना फिर ताजी हो। जाएगी। विश्राम के बाद वासना की माग फिर खडी हो जाएगी।

आप भी बहुत बार वैराग्य की हलकी झलक से भरते हैं। हर वासना के बाद वैराग्य की झलक हर आदमी को आती है। हर संभोग के बाद क्षणभर को प्रत्येक स्त्री—पुरुष को यह प्रतीति होती है कि बस, बहुत हुआ, व्यर्थ है। लेकिन थोड़ी देर आराम के बाद फिर वासना सजग हो जाती है। तो वह जो क्षणभर का अनुभव था, वह शस्त्र नहीं बन पाता। वह जो अनुभव था, संगृहीत नहीं होता। वह बूंद—बूंद की तरह खो जाता है, कभी गागर भर नहीं पाती। साधक बूंद—बूंद अनुभव को इकट्ठा करता है और गागर को भरता है। वह बूंद—बूंद को खो जाने नहीं देता।

आपके अनुभव में और बुद्ध के अनुभव में बहुत फर्क नहीं है। बस, इतना ही फर्क है कि आपके पास कोई गागर नहीं है, जिसमें आप अपनी बूंदें भर लेते। आपको उतने ही अनुभव हुए हैं, ज्यादा हो गए होंगे, क्योंकि बुद्ध को मरे पच्चीस सौ साल हो गए। बुद्ध से ज्यादा अनुभव आपको हो चुके हैं। लेकिन बूंद—बूंद होते हैं, खो जाते हैं। इकट्ठे नहीं हो पाते हैं; उनकी चोट नहीं बन पाती। शस्त्र निर्मित नहीं हो पाता।

अपने अनुभवों को इकट्ठा करें। अनुभवों को खो जाने मत दें। क्योंकि उनके अतिरिक्त ज्ञान का और कोई मार्ग नहीं है। बूंद—बूंद। इकट्ठा करके आपके पास इतनी अनुभव की क्षमता हो जाएगी कि वासना कमजोर पड़ जाएगी। काटना भी नहीं पड़ता, अनुभव ही काफी होता है। अनुभव ही काफी होता है, वासना से लड़ना भी नहीं पड़ता। वासना धीरे— धीरे निर्वीर्य हो जाती है।

इस वृक्ष को वैराग्यरूप शस्त्र द्वारा काटकर, उसके उपरात उस परम पद परमेश्वर को अच्छी प्रकार खोजना चाहिए कि जिसमें गए हुए पुरुष फिर पीछे संसार में नहीं आते। और जिस परमेश्वर से यह पुरातन संसार—वृक्ष की प्रवृत्ति विस्तार को प्राप्त हुई है, उस ही आदि पुरुष के मैं शरण हूं इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके..।

इस प्रक्रिया को थोड़ा सजगता से समझ लें।

हम सब बार—बार जन्मते हैं, बार—बार मरते हैं। लेकिन हर मरण मूर्च्छा में है, और हर जन्म भी मूर्च्छा में है। इसलिए आपको कुछ याद नहीं कि पहले भी आप थे। यह जन्म आपको पहला मालूम पड़ता है, और यह मौत जो आती है, आखिरी मालूम पड़ती है। क्योंकि दोनों तरफ अंधकार है। स्मृति खो गई है। होशपूर्वक मर सकें, तो होशपूर्वक जन्म होगा।

लेकिन मरना अभी दूर है, भविष्य में है। पीछे लौटा जा सकता है। और जो जन्म हो चुका है आपका चालीस, पचास, साठ साल पहले, उस जन्म को होशपूर्वक फिर से देखा जा सकता है। उसकी पूरी फिल्म आपके भीतर संगृहीत है। जैसे मैं बोल रहा हूं और टेप रिकार्ड कर रहा है। मैं बोल चुकूंगा, फिर आप टेप को लौटा लें, तो फिर से सुन सकेंगे।

आपका मस्तिष्क बिलकुल टेप का यंत्र है। वह सब रिकार्ड कर रहा है। वहा कुछ भी नहीं खोया है। जो भी आपने कभी जाना है, वह वहा अंकित है। आप पीछे इस रिकार्ड का उपयोग करना सीख जाएं, इसे लौटाकर बजाना सीख जाएं, तो आप उन अनुभवों से फिर गुजर सकते हैं, जिनसे आप बेहोशी में गुजर गए हैं। आप पिछले जन्म में वापस जा सकते हैं, और पिछले जन्म के पीछे मृत्यु में जा सकते हैं। और तब यात्रा का द्वार खुल जाता है।

इस भांति जो व्यक्ति पीछे लौटता है होशपूर्वक, उसकी आगे के लिए भी होश की क्षमता निर्मित हो जाती है। वह मरेगा, लेकिन होशपूर्वक मरेगा। वह जन्मेगा, लेकिन होशपूर्वक जन्मेगा। वह जीएगा, लेकिन होशपूर्वक जीएगा। और जो व्यक्ति होशपूर्वक जीने लगा, संसार उसे नहीं बांध पाता। बांधती है हमारी मूर्च्छा। वैराग्य के द्वारा ममता, अहंता और वासना को काटकर जो व्यक्ति परमेश्वर को खोजता है, मूल उदगम को खोजता है, वह व्यक्ति फिर संसार में वापस नहीं आता।

फिर संसार में वापस आने का कोई कारण नहीं रह जाता। संसार में हम वापस होते हैं बार—बार मूर्च्छा के कारण, सोए हुए होने के कारण।

और जिस परमेश्वर से यह पुरातन संसार—वृक्ष की प्रवृत्ति विस्तार को प्राप्त हुई है, उस ही आदि पुरुष के मैं शरण हूं, इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके नष्ट हो गया है मान और मोह जिनका तथा जीत लिया है आसक्तिरूप दोष जिन्होंने और

परमात्मा के स्वरूप में है निरंतर स्थिति जिनकी तथा अच्छी प्रकार से नष्ट हो गई है कामना जिनकी, ऐसे वे सुख—दुख नामक द्वंद्वों से विमुक्त हुए ज्ञानीजन उस अविनाशी परम पद को प्राप्त होते हैं।

यह सूत्र, कि मैं उस आदि पुरुष, उस आदि उदगम के शरण हूं बहुमूल्य है। शरण का भाव बहुमूल्य है। क्योंकि वासना भी काटी जा सकती है वैराग्य से, फिर भी अहंकार शेष रह जाता है। वासना तोड़ी जा सकती है वैराग्य से, लेकिन तब वैराग्य का अहंकार सघन हो जाता है कि मैं विरागी हूं, कि मैं त्यागी हूं कि मैंने इतना छोड़ा, कि मैंने वासना नष्ट कर दी। एक गहन अग्नि जलने लगती है। अहंकार नए रूप ले लेता है, सूक्ष्म, पर और भी प्रगाढ़।

इसलिए कृष्ण एक शर्त जोड़ते हैं, वैराग्य के शस्त्र से काटकर मैं उस आदि पुरुष के शरण हूं, ऐसा दृढ़ भाव करें।

यह वैराग्य कहीं मेरे अहंकार को भरने का कारण न बने। क्योंकि जब तक मैं हूं तब तक मूल उदगम में खोना आसान नहीं, तब तक बूंद अपने को पकड़े है, सागर में खोने को राजी नहीं है।

मूल उदगम में मैं मैं नहीं रह जाऊंगा, मेरी अस्मिता खो जाएगी। मेरा सत्व बचेगा, मेरी चेतना बचेगी, लेकिन मैं का रूप खो जाएगा, मैं का नाम खो जाएगा। सभी नाम—रूप विलीन हो जाएंगे। यदि साधक वैराग्य को साधते—साधते साथ में शरणागति के भाव को न साधे, तो भटक जाता है। तब वैसा साधक हो सकता है शुद्ध हो जाए, लेकिन उसकी शुद्धि में भी जहर होगा। पवित्र हो जाए, लेकिन उसकी पवित्रता निर्दोष न होगी। उसकी पवित्रता में भी दोष होगा। शुभ हो जाए, सच्चा हो जाए नैतिक हो जाए; लेकिन उसकी नीति, उसकी सचाई, उसकी शुभता, भीतर एक मूल गलत भित्ति पर खड़े होंगे। वे अस्मिता की भित्ति पर खड़े होंगे। मैं शुद्ध हूं मैं शुभ हूं, मैं नैतिक हूं, यह भाव बना ही रहेगा। और यह आखिरी दीवार हो जाएगी। मैं हूं यह बना ही रहेगा। और जब तक मैं हूं तब तक परमात्मा नहीं है।

लोग मुझसे पूछते हैं कि परमात्मा को हम खोजते हैं, मिलता नहीं है। मैं उनसे कहता हूं, तुम जब तक खोजोगे, तब तक मिलने का कोई उपाय भी नहीं है! क्योंकि तुम ही बाधा हो। यह खोजने वाला ही उपद्रव है। और जब तक यह खोजने वाला न खो जाए, तब तक मिलने की कोई आशा नहीं है।

बुद्ध ने परमात्मा को अस्वीकार किया है। और कहा कि कोई परमात्मा नहीं है।

लेकिन तब एक मुसीबत शुरू हुई। दार्शनिक रूप से कोई अड़चन नहीं है परमात्मा को अस्वीकार करने में, लेकिन तब साधक में शरणागति का भाव कैसे पैदा करोगे? परमात्मा हो या न हो, यह मूल्यवान भी नहीं है। है, इसको सिद्ध करने की कोई जरूरत भी नहीं है।

बुद्ध ने कह दिया कि नहीं कोई परमात्मा है। लेकिन तब एक अड़ूचन शुरू हुई। और वह अड़चन यह थी कि शरणागति कैसे हो? व्यक्ति अपने अहंकार को कैसे खोएगा? तो उसके लिए नए सूत्र खोजने पड़े। वे नए सूत्र फिर वही के वही हो गए; उससे कोई फर्क न पड़ा।

तो बुद्ध—भिक्षु कहता है, बुद्धं शरणं गच्छामि। संघ शरणं गच्छामि। धम्म शरणं गच्छामि। पर शरणं गच्छामि, उससे बचने का कोई उपाय नहीं है!

बुद्ध कहते हैं, कोई भगवान नहीं है। लेकिन बुद्ध के साधक को बुद्ध को ही भगवान कहना पड़ता है। और बुद्ध भी इनकार नहीं करते कि मुझे भगवान मत कहो। क्योंकि बुद्ध को एक अड़चन साफ दिखाई पड़ती है। बुद्ध कह सकते हैं, मुझे भगवान मत कहो। क्योंकि बुद्ध को कोई रस आता होगा किसी के भगवान कहने से, यह धारणा ही मूढ़तापूर्ण है।

फिर बुद्ध इनकार क्यों नहीं कर देते? और जब कोई बुद्ध के सामने आकर कहता है, बुद्धं शरणं गच्छामि—हे बुद्ध, तुम्हारी शरण जाता हूं तब वे क्यों नहीं कहते कि मैं कोई भगवान नहीं हूं। मेरी शरण क्यों जाते हो!

कारण है। बुद्ध को कोई रस नहीं है कि कोई उन्हें भगवान कहे, न कहे। लेकिन यह जो जा रहा है शरण, इसके शरण जाने का कोई मार्ग खोजना पड़े। और परमात्मा को इनकार कर दिया है, तो परमात्मा को जिस झंझट से छुटकारा दिला दिया, उसी झंझट में खुद को बैठ जाना पड़ा। वह परमात्मा की जगह खाली कर दी। और कोई चाहिए, जिसकी शरण जा सकें।

लेकिन बुद्ध तो कल मर जाएंगे। परमात्मा तो कभी नहीं मरता, बुद्ध कल मर जाएंगे। फिर क्या होगा? फिर किसकी शरण जाएंगे? क्योंकि लोग पूछेंगे, बुद्ध अब कहां हैं? अगर कहते हो, आकाश में हैं, तो फिर परमात्मा बन गया। अगर कहते हो, कहीं भी बुद्ध हैं और वहा से सहायता करेंगे, तो परमात्मा बन गया।

तो संघ शरणं गच्छामि। इसलिए दूसरा सूत्र जोड़ना पड़ा कि यह जो भिक्षुओं का संघ है, साधकों का, सिद्धों का, इसकी शरण जाओ। यह रहेगा।

लेकिन यह भी जरूरी नहीं कि सदा हो। हिंदुस्तान से खो गया, बुद्धों का कोई संघ न रहा। तो किसकी शरण जाओ? तो बुद्ध को तीसरा सूत्र खोजना पड़ा, धम्म शरणं गच्छामि—धर्म की शरण जाओ। धर्म सदा रहेगा।

लेकिन क्या फर्क पड़ता है! शरण जाना ही पड़ेगा। क्योंकि शरण जाए बिना साधक का अहंकार नहीं खोता। इसलिए पतंजलि ने अनूठी बात कही है, और वह यह कि परमात्मा स्वयं को खोने की एक विधि है। परमात्मा है या नहीं, यह सवाल ही नहीं है। यह परमात्मा तो सिर्फ एक तरकीब है खुद को खोने की। इस दार्शनिक विवेचन का कोई भी मूल्य नहीं है हिंदुओं के लिए कि ईश्वर है या नहीं।

ईसाइयों ने बड़ी मेहनत की ईश्वर को सिद्ध करने की कि वह है। मगर उनकी मेहनत से कुछ सिद्ध नहीं होता। क्योंकि जिन दलीलों से सिद्ध करो, वे दलीलें काटी जा सकती हैं। कट जाती हैं। उनमें कोई बड़ी दलील ऐसी नहीं है, जो न काटी जा सके।

हिंदुओं ने कभी कोशिश नहीं की ईश्वर को सिद्ध करने की। क्योंकि वे कहते हैं, यह तो सिर्फ एक ट्रिक है, यह तो सिर्फ एक युक्ति है; यह तो सिर्फ एक उपाय है। उपाय है कि तुम शरण जा सको।

इसलिए जब पहली दफा ईसाई भारत आए या इस्लाम भारत आया, तो उनको बड़ी हैरानी हुई कि हिंदू भी कैसे मूढ़ हैं! कोई पत्थर को रखकर पूज रहा है, कोई झाड़ को पूज रहा है, कोई नदी को पूज रहा है। पत्थर! कोई मूर्ति भी नहीं है। ऐसे ही अनगढ़ पत्थर पर सिंदूर पोत दिया है, उसको पूज रहे हैं। हनुमान जी हैं! बहुत अजीब लगा उनको कि यह सब क्या हो रहा है!

लेकिन उन्हें पता नहीं कि हिंदुओं ने बड़े गहन तत्व को खोज लिया है। वे यह कहते हैं कि इससे फर्क ही नहीं पड़ता कि तुम किसको पूज रहे हो। तुम पूज रहे हो, यह सवाल है। तुम कहां झुक रहे हो, यह बेमानी है। तुम झुक रहे हो, बस इतना काफी है।

तो तुम पीपल के वृक्ष के सामने झुक जाओ। यह तो बहाना है। यह पीपल का वृक्ष बहाना है। परमात्मा भी बहाना है। है या नहीं, इससे हमें कोई प्रयोजन भी नहीं है। हमें झुकने में सहयोगी है, तो झुक जाओ। क्योंकि झुकने से तुम उसे जान लोगे, जिसे बिना झुके तुम कभी नहीं जान सकते हो। और वह तुम्हारे भीतर छिपा है। इसलिए दुनिया में हिंदू धर्म को समझने में बड़ी अड़चन हुई है। हिंदू धर्म सबसे कम समझा गया धर्म है। क्योंकि उसके रूप ऐसे अनगढ़ दिखाई पड़ते हैं। पर उनके अनगढ़ होने का कारण है। कारण है कि बड़ी गहरी बात हिंदुओं की पकड़ में आ गई। ईश्वर महत्वपूर्ण नहीं है, झुकता हुआ साधक, झुका हुआ साधक, शरण में गया हुआ साधक।

तो जहां शरण मिल जाए, जिसके माध्यम से मिल जाए। वह है या नहीं, यह भी गौण है। शरण मिल जाए, तो सब हो जाता है। कृष्ण कह रहे हैं, उस आदि पुरुष के मैं शरण हूं, इस प्रकार दृढ़ निश्चय करके नष्ट हो गया है मान और मोह जिसका......।

स्वाभाविक है, जो भी शरण जाएगा, उसका मान और मोह नष्ट हो जाएगा। और जो शरण नहीं गया, उसका मान और मोह कभी नष्ट नहीं होता।

इसलिए मैं कई दफा चकित होता हूं। जैन या बौद्ध भिक्षु गहन मान से भर जाते हैं। जैनों को तो शरण जाने का और भी उपाय नहीं। बौद्धों ने तो बुद्ध को ही शरण जाने का उपाय बना लिया। महावीर ने कहा, अशरण रहो, किसी की शरण मत जाओ।

बात में कुछ गलती नहीं है। अगर अशरण रहकर भी निरअहंकारी हो सको, तो इससे बडी और कोई बात नहीं है। फिर जरूरत भी नहीं है शरण जाने की। लेकिन कौन रह सकेगा बिना शरण जाए निरअहंकारी? कभी करोड़ में एकाध कोई व्यक्ति, जो शरण न गया हो और निरअहंकारी हो जाए। शरण जा—जाकर भी अहंकार नहीं मिटता। झुक—झुककर भी नहीं झुकता, तो बिना झुके बहुत कठिन है। महावीर का झुक गया होगा, महावीर के पीछे चलने वालों को मुश्किल खड़ी है। वह झुक नहीं पाता।

इसलिए जैन साधु बड़ी साधना करता है। वैसी साधना संभवत: दुनिया में कोई भी धर्म का साधु नहीं करता है। उसकी साधना प्रगाढ़ है। लेकिन उसका अहंकार भी उतना ही प्रगाढ़ है। इसलिए जैन साधु जिस अकड़ से चलता है, वैसी अकड़ की हम सूफी फकीर में कल्पना भी नहीं कर सकते। सूफी फकीर तो सोचकर चकित ही हो जाएगा कि क्या कर रहे हो तुम! इतनी अकड़! जैन साधु किसी को नमस्कार नहीं कर सकता। क्योंकि कोई है ही नहीं जिसकी शरण जाना है।

मैं एक बड़े जैन साधु आचार्य तुलसी के साथ मौजूद था; कई वर्ष पहले। मोरारजी देसाई उनको मिलने आए। तब वे सत्ता में थे। नेहरू जिंदा थे और मोरारजी सत्ता में थे। मोरारजी ने नमस्कार किया आचार्य तुलसी को। आचार्य तुलसी तो नमस्कार किसी को कर नहीं सकते, सिर्फ आशीर्वाद दे सकते हैं।

मोरारजी किसी साधु से कम साधु नहीं हैं। कोई जैन साधु उतना अहंकारी नहीं हो सकता। वे भी पक्के नैतिक पुरुष हैं; बिलकुल पत्थर की तरह। चोट तत्काल लग गई। और जो पहला सवाल उन्होंने पूछा वह यह कि मैंने हाथ जोडकर नमस्कार किया; आपने हाथ जोड़कर जवाब क्यों नहीं दिया? और आप ऊपर क्यों बैठे हैं, और मुझे नीचे क्यों बिठाया है?

दोनों साधु पुरुष हैं! और बड़ी अड़चन खड़ी हो गई। और दस—बीस विद्वान सारे मुल्क से बुलाए गए थे गोष्ठी के लिए; उसी में मुझे भी निमंत्रित किया था उन्होंने। मैं समझा कि गोष्ठी तो समाप्त हो गई। क्योंकि अब वह कैसे चलेगी! यह पहला ही प्रश्न है। और मोरारजी ने कहा, जब तक इसका जवाब न मिले, आगे कुछ बात करने का प्रयोजन नहीं है।

तुलसीजी चुप रहे। अब क्या कहें! क्योंकि जैन साधु को आज्ञा नहीं है कि नमस्कार करे किसी को। कोई नमस्कार योग्य है भी नहीं। शरण किसी की जाना नहीं है।

मैंने कहा कि अगर यह नियम है, तो दूसरे को भी नमस्कार करने से रोकना चाहिए। जैसे ही कोई दूसरा नमस्कार करे, कहना चाहिए, रुको! उसका नमस्कार ले लेना और फिर अपनी तरफ से नमस्कार न देने का नियम जरा बेईमानी है। या उसको कहना चाहिए कि सावधान! आप करो, आपकी मरजी। हम लौटाएंगे नहीं।

और मोरारजी को मैंने कहा कि आपको उनका ऊपर बैठना अखर रहा है कि अपना नीचे बैठना अखर रहा है, यह साफ हो जाना चाहिए, फिर कुछ बात आगे चले। क्योंकि ऊपर तो एक छिपकली भी चल रही है, उससे आपको कोई एतराज नहीं है। आप नीचे बिठाए गए हैं, इससे अड़चन है। अगर आपको भी ऊपर बिठाया गया होता, तो कोई अड़चन न थी।

नैतिक पुरुष कितना ही नैतिक हो जाए, धार्मिक नहीं हो पाता। मोरारजी की नैतिकता में संदेह नहीं है। आचार्य तुलसी की नैतिकता में कोई संदेह नहीं है। दोनों साधु पुरुष हैं। पर अहंकार सघन है। और जब साधु का अहंकार सघन हो, तो असाधु से भी खतरनाक होता है। उसको झुकाया नहीं जा सकता। असाधु तो थोड़ा डरता भी है कि मैं असाधु हूं

साधु डरता ही नहीं। उसको झुकाएंगे कैसे? असाधु तो खुद अपने डर के कारण झुका रहता है। साधु की अकड़ तो सख्त है। वह टूट जाएगा, झुक नहीं सकता।

लेकिन हिंदुओं ने मौलिक तत्व को पकड़ लिया है, कि कहीं से भी झुकना आ सके, और किसी भी तरह शरण जाने का भाव पैदा हो सके, तो वही परम साधना है।

स्वभावत:, मान और मोह नष्ट हो जाएगा। और जैसे—जैसे मान—मोह—आसक्ति नष्ट होते हैं, वैसे—वैसे परमात्मा के स्वरूप में स्थिति बनने लगेगी। क्योंकि ये ही हिलाते हैं। इनकी वजह से कंपन होता है। इनकी वजह से बेचैनी और अशांति होती है। इनकी वजह से गति होती है।

परमात्मा में जिसकी स्थिति बनने लगती है, सुख—दुख नामक द्वंद्वों से विमुक्त हुए ज्ञानीजन उस अविनाशी पद को, परम पद को प्राप्त होते हैं।

वह परम पद छिपा है भीतर। जैसे ही हमारा हिलन—डुलन बंद हो जाता है, कंपन शात हो जाता है, ज्योति थिर हो जाती है, वह परम पद हमें उपलब्ध हो जाता है। जो सदा से हमारा है, जो सदा से हमारा रहा है, हम उसके प्रति प्रत्यभिज्ञा से भर जाते हैं। हम पहचान जाते हैं कि हम कौन हैं!

मैं के मिटते ही मैं कौन हूं इसकी पहचान आ जाती है।

गीता दर्शन–(भाग–7)
अध्याय—15 (प्रवचन—तीसरा) — संकल्प—संसार का या मोक्ष का

सूत्र—

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पाक्कः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।6।।
ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।।7।।
शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ।।8।।
श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रमनं घ्राणमेव च।
आधिष्ठाय मनश्चायं विश्यानुपसेवते।।9।।
उस स्वयं प्रकाशमय परम पद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चंद्रमा और न अग्नि ही प्रकाशित कर सकता है तथा जिम परम पद को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे संसार में गौं आते है वही मेरा परम धाम है।

और हे अर्जुन, हम देह में यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है और की इन त्रिगुणमयी माया में स्थित हुई मन सहित पांचों इंद्रियों को आकर्षण करता है।

जैसे कि वायु गंध के स्थान से गंध को ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही देहादिकों का स्वामी जीवात्मा भी जिस पहले शरीर को त्यागता है, उससे इन मन सहित इंद्रियों की ग्रहण करके फिर जिस शरीर को प्राप्त होता है, उसमें जाता है।

और उस शरीर में स्थित हुआ यह जीवात्मा श्रोत्र, चक्षु और त्वचा को तथा रसना, घ्राण और मन को आश्रय करके अर्थात इन सबके सहारे से ही विषयों की सेवन करता है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्न :
शरणागत— भाव को कैसे उपलब्ध हुआ जा सकता है?
जीवन में सर्वाधिक कठिन, सब से ज्यादा दुरूह अगर कोई भाव—दशा है, तो शरणागति की है।

मन अहंकार के आस—पास निर्मित है। मन को मानना आसान है कि मैं ही केंद्र हूं सारे जगत का। जैसे पृथ्वी और सूर्य, तारे, सब मेरे आस—पास घूमते हों, मेरे लिए घूमते हों, पूरा जीवन साधन है और साध्य मैं हूं।

अहंकार की भाव—दशा का अर्थ है कि मैं साध्य हूं और सभी कुछ साधन है। सब कुछ मेरे लिए है और मैं किसी के लिए नहीं हूं। मैं ही लक्ष्य हूं; मेरे लिए ही सब घटित हो रहा है। सभी कुछ मेरी सेवा का आयोजन है। यह अहंकार भाव है।

शरणागति का भाव ठीक इससे विपरीत है; कि मैं कुछ भी नहीं हूं। मेरा होना शून्यवत है और केंद्र मुझसे बाहर है। वह केंद्र आप कहां रखते हैं, यह बड़ा महत्वपूर्ण नहीं है। कोई उसे बुद्ध में रखे, कोई उसे क्राइस्ट में रखे, कोई उसे राम में, कृष्ण में, यह बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। मेरे होने का केंद्र मैं नहीं हूं मुझसे बाहर है, और मैं उसके लिए जी रहा हूं। मैं साधन हूं वह साध्य है।

अति कठिन बात है। क्योंकि अहंकार बिलकुल स्वाभाविक मालूम होता है। लेकिन इस क्रांति के बिना घटे कोई भी व्यक्ति सत्य को उपलब्ध नहीं होता। क्योंकि सत्य यही है कि आपका केंद्र आपके भीतर नहीं है।

इस सारे जगत का केंद्र एक ही है। सभी का केंद्र एक है। इसलिए प्रत्येक के भीतर अलग— अलग केंद्र होने का कोई उपाय नहीं है। हम संयुक्त जीते हैं, वियुक्त नहीं। व्यक्ति होना भ्रांति है। सारा अस्तित्व जुड़ा हुआ इकट्ठा है। यह विश्व एक इकाई है, एक यूनिट है। यहां खंड—खंड अलग—अलग नहीं हैं। यहां कोई एक पत्ता भी अलग नहीं है।

हमने सुन रखा है कि राम की मरजी के बिना पत्ता भी नहीं हिलता। और हमने जो उसको अर्थ दिए हैं, वे नासमझी से भरे हैं। राम की बिना मरजी के पत्ता भी नहीं हिलता, इसका केवल इतना ही अर्थ है कि इस संसार में दो मरजिया काम नहीं कर रही हैं। पत्ते की मरजी और इस अस्तित्व की मरजी, दो नहीं हैं। यह पूरा अस्तित्व इकट्ठा है। और जब पत्ता हिलता है, तो पूरे अस्तित्व के हिलने के कारण ही हिलता है।

अकेला पत्ता हिल नहीं सकता है। हवाएं न हों, फिर पत्ता न हिल सकेगा। सूरज न हो, तो हवाएं न हिल सकेंगी। सब संयुक्त है। और एक छोटा—सा पत्ता भी हिलता है, तो उसका अर्थ यह हुआ कि सारा अस्तित्व उसके हिलने का आयोजन कर रहा है। उस क्षण में सारे अस्तित्व ने उसे हिलने की सुविधा दी है। उस सुविधा में रत्तीभर भी कमी हो और पत्ता नहीं हिल पाएगा।

राम की बिना मरजी के पत्ता नहीं हिलता है, इसका केवल इतना ही अर्थ है। ऐसा कुछ अर्थ नहीं कि कोई राम जैसा व्यक्ति ऊपर बैठा है और एक—एक पत्ते को आज्ञा दे रहा है कि तुम अब हिलो, तुम अब मत हिलो। वैसी धारणा मूढ़तापूर्ण है।

लेकिन अस्तित्व एक है। दूर, अरबों प्रकाश वर्ष दूर जो तारे हैं, उनका भी हाथ आपके बगीचे में हिलने वाले पत्ते में है। उनके बिना ये पत्ते नहीं हिल सकते।

समुद्र में लहर उठती है, चांद का हाथ उसमें है। चांद के बिना वह लहर नहीं उठ सकती। चांद में रोशनी है, क्योंकि सूरज का हाथ उसमें है। चांद के पास अपनी कोई रोशनी नहीं है। सूरज से उधार प्रतिबिंब है, प्रतिफलन है। चांद से सागर हिलता है। और जब सागर हिलता है, तो आपके भीतर भी कुछ हिलता है। क्योंकि सारा जीवन सागर से पैदा हुआ है।

आपके भीतर पचहत्तर प्रतिशत सागर का पानी है। आप पचहत्तर प्रतिशत सागर हैं। और आपके भीतर जो जल है, उसका स्वाद ठीक सागर के जैसा स्वाद है। उतनी ही नमक की मात्रा है, उतना ही खारा है, उतने ही रासायनिक द्रव्य हैं उसमें। मछली ही सागर में नहीं जीती, आप भी सागर में जीते हैं। फर्क इतना है कि मछली के चारों तरफ सागर है; आपके भीतर सागर है। आपके भीतर नमक कम हो जाए, आपकी मृत्यु हो जाएगी। ज्यादा हो जाए, आप अड़चन में पड़ जाएंगे। ठीक सागर की जितनी मात्रा है, उतनी ही आपके भीतर होनी चाहिए।

वह जो बच्चा पहली दफा मां के गर्भ में पैदा होता है, तो मां के गर्भ में ठीक सागर की स्थिति हो जाती है। ठीक सागर जैसे पानी में ही बच्चे का पहला जन्म होता है। बच्चा पहले मछली की तरह बड़ा होता है।

जब सागर हिलता है, तो आपके भीतर भी कुछ हिलता है। अगर सागर के पास बैठकर आपको सुख मालूम होता है, तो आपने कभी सोचा नहीं होगा, क्यों? वह जो सागर का कंपन है, जीवन है, वह आपके छोटे—से सागर को भी कंपाता है, जीवंत करता है।

अगर रात चांद को देखकर आपको अच्छा लगता है, सुखद मालूम होता है, एक शांति मिलती है, तो वे चांद की किरणें हैं, जो आपके भीतर के सागर को कंपित कर रही हैं, जीवंत कर रही हैं।

पूर्णिमा की रात दुनियाभर में सबसे ज्यादा लोग पागल होते हैं; अमावस की रात सबसे कम। पागलपन में भी एक ज्वार— भाटा है। पूर्णिमा की रात दुनिया में सबसे ज्यादा अपराध होते हैं; अमावस की रात सबसे कम। आप शायद उलटा सोचते होंगे कि अमावस की अंधेरी रात सबसे ज्यादा अपराध होने चाहिए। अपराध नहीं होते हैं। क्योंकि अमावस की रात लोग उत्तेजित नहीं होते हैं। पूर्णिमा की रात उत्तेजित हो जाते हैं।

पागलों के लिए पुराना शब्द है, चांदमारा। अंग्रेजी में शब्द है, काटिक। लूनाटिक कार से बना है। कार का मतलब चांद है। पागलपन में चांद का हाथ है।

और अगर पागलपन में चांद का हाथ है, तो बुद्धिमत्ता में भी चांद का हाथ होगा। और अगर बुद्ध को पूर्णिमा की रात बुद्धत्व प्राप्त हुआ, तो चांद के हाथ को इनकार नहीं किया जा सकता। सब जुड़ा है, सब संयुक्त है। हम अलग—अलग नहीं हैं।

शरणागति का अर्थ है, इस तथ्य को समझ लेना कि मेरे जीवन का केंद्र मेरे भीतर नहीं है, अस्तित्व में है। फिर उस केंद्र को भक्त भगवान कहता है; ज्ञानी ब्रह्म कहते हैं। जो बहुत तार्किक ज्ञानी हैं, वे सत्य कहते हैं। यह सब शब्दों का फासला है। क्या आप कहते हैं, यह सवाल नहीं है। अपने से बाहर केंद्र को समझ लेना शरणागत हो जाना है।

और जब केंद्र मेरे भीतर नहीं, तो अकड़ किस बात की है? जब मैं सिर्फ एक लहर हूं और खुद सागर नहीं हूं, तो अकड़ किस बात की है? इतना अहंकार किस बात का है? अपने आपको इतना समझ लेना पागलपन है। ठीक से जो अपने को समझेगा, वह शून्य समझेगा। गलत जो अपने को समझेगा, वह अपने को बहुत कुछ समझेगा।

तो जितना ज्यादा आप अपने को समझते हों, उतने ही कम धार्मिक होने की संभावना है। जितना कम आप समझते हों अपने आपको, उतने धार्मिक होने की संभावना ज्यादा है। और जिस दिन आप समझ लें कि आप शून्य हैं, उस दिन आप स्वयं भगवान हैं। शून्य होते ही शरणागति घटित हो जाती है।

इसलिए शरणागति के दो उपाय हैं। और दुनिया में दो ही तरह के धर्म हैं। क्योंकि शरणागति के दो ही उपाय हैं।

एक तो उपाय यह है कि आप शून्य हो जाएं। बुद्ध, महावीर जो कहते हैं, अशरण हो जाओ, वह आपको शून्य होने के लिए कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, बिलकुल शांत हो जाएं, शून्य हो जाएं। शून्य होते से वही घटना घट जाती है, केंद्र आपके भीतर नहीं रह जाता। दूसरा मार्ग है कि आप अपने को विचार ही मत करें, राम के चरणों में रख दें सिर, कि कृष्ण के चरणों में रख दें। कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज—स्ब छोड़, सब धर्म; मेरी

शरण आ जा। आप किसी के चरण में सिर रखते हैं। या तो आप शून्य हो जाएं, तो केंद्र मिट गया भीतर से। और या आप किसी को पूर्ण मान लें, तो भीतर से केंद्र मिट गया। दोनों ही अवस्था में आप मिट जाते हैं।

जैन—बौद्ध पहली धारणा को मानकर चलते हैं। परिणाम वही है। शून्य हो जाना है, शांत हो जाना है, मौन हो जाना है। अहंकार को भूल जाना है, विसर्जित कर देना है। इसलिए वे अशरण की बात बोल सकते हैं। अशरण की इसलिए—थोड़ा समझ लेना जरूरी है—क्योंकि महावीर कहते हैं कि अहंकार इतना सूक्ष्म है कि तुम जब शरणागति करोगे, तो उसमें भी बच सकता है।

उनकी बात में सचाई है। महावीर कहते हैं कि जब तुम किसी की शरण में जाओगे, तो तुम ही जाओगे। यह तुम्हारा ही निर्णय होगा। तुम ही सोचोगे, तय करोगे, कि मैं शरण जाता हूं। तो यह तुम्हारे मैं का ही निर्णय है। इसमें डर है कि मैं छिप जाएगा, मिटेगा नहीं। क्योंकि तुम सदा मालिक रहोगे। जब चाहो, अपनी शरण वापस ले सकते हो।

अर्जुन कृष्ण से कह सकता है कि बस, बहुत हो गया। अब मैंने आपके चरणों में जो सिर रखा था, वापस लेता हूं। तो कृष्ण क्या करेंगे?

आप किसी व्यक्ति को गुरु चुनते हैं, वह आपका ही चुनाव है। कल आप गुरु को छोड़ देते हैं, तो गुरु क्या कर सकता है! अगर आप शरण जाने के बाद भी छोड़ने में समर्थ हैं, तो यह शरण झूठी हुई और धोखा हुआ; और आपने सिर्फ अपने को भुलाया, विस्मृत किया, लेकिन मिटे नहीं।

यह डर है। इस डर के कारण महावीर ने कहा, यह बात ही उपयोगी नहीं है। दूसरे की शरण मत जाओ, अपने को ही सीधा मिटाओ। दूसरे के बहाने नहीं, सीधा। यह सीधा आक्रमण है।

कृष्ण, राम, मोहम्मद, क्राइस्ट, जरथुस्त्र, वे सब शरण को मानते हैं कि शरण जाओ। उनकी बात में भी बड़ा बल है। क्योंकि वे कहते हैं कि जब तुम शरण जाकर भी नहीं मिटते हो और अपने को धोखा दे सकते हो, तो जो व्यक्ति दूसरे के बहाने अपने को धोखा दे सकता है, वह अकेले में तो धोखा दे ही लेगा। जो दूसरे की मौजूदगी में भी धोखा देने से नहीं बचता, जहां कि एक गवाह भी था, जहां कि कोई देख भी रहा था, वह अकेले में तो धोखा दे ही लेगा।

आप ताश खेलते हैं, तो आप दूसरों को धोखा देते हैं। लेकिन लोग हैं, जो कि पेशेंस खेलते हैं, अकेले ही खेलते हैं, अपने को ही धोखा दे देते हैं। अगर आपने अकेले ही ताश के पत्ते दोनों तरफ से चले हैं, तो आपको पता होगा कि आपने कई दफा धोखा दिया। किसको धोखा दे रहे हैं! लेकिन अकेले ताश खेलने में भी लोग धोखा देते हैं

अड़चन है। अड़चन आदमी के साथ है। कोई भी विधि हो, अड़चन रहेगी। तो कृष्ण और जरथुस्त्र और क्राइस्ट की मान्यता है कि जो आदमी गुरु के सामने भी धोखा दे लेता है और अपने अहंकार को बचा लेता है, उसको अकेला छोड़ना खतरनाक है। कम से कम दूसरे की आंखें, दूसरे की मौजूदगी सम्हलने का मौका बनेगी। और इसमें सचाई है।

जैन साधना ने बड़े अहंकारी साधु पैदा किए। जैन साधु में विनम्रता दिखाई नहीं पड़ती, अकड़ दिखाई पड़ती है। अकड़ का कारण भी है, क्योंकि साधना करता है, सचाई से जीता है, ब्रह्मचर्य साधता है, उपवास करता है, तप करता है। अकड़ का कारण भी है। अकारण नहीं है अकड़। लेकिन कारण हो या अकारण हो, अकड़ रोग है। और चूंकि शरण जाने का कहीं कोई उपाय नहीं है, इसलिए मैं कर रहा हूं यह धारणा मजबूत होती है।

दोनों के खतरे हैं। दोनों के लाभ हैं। जिस व्यक्ति को लगे कि खतरा कहां है, वहा वह न जाए।

अगर आप बहुत धोखेबाज हैं और बहुत बेईमान हैं, और अपने को भी धोखा देने में समर्थ हैं, सेल्फ डिसेप्शन आपके लिए आसान है, तो महावीर का मार्ग आपके लिए खतरनाक है। अगर आप अपने को धोखा देने में असमर्थ हैं, तो महावीर का मार्ग आपके लिए सुगम है।

साधक को निर्णय करना होगा, कैसे जाए। लेकिन प्रयोजन एक ही है कि साधक को मिटना पड़ेगा। या तो सीधा मिट जाए, शून्य हो जाए; या दूसरे के चरण में जाकर खो जाए और लीन हो जाए। यह शरणागति कैसे आएगी?

अपनी स्थिति समझने से। अपनी वास्तविक स्थिति समझने से। यह ठीक—ठीक समझ लेने से कि मैं क्या हूं।

च्यांग्त्सु एक कब्रिस्तान से निकल रहा था। सुबह का अंधेरा था; भोर होने में देर थी। एक आदमी की खोपड़ी से उसका पैर टकरा गया। तो उस खोपड़ी को अपने साथ ले आया। उसे सदा अपने पास रखता था। अनेक बार उसके शिष्यों ने कहा भी, इस खोपड़ी को फेंकें; यह भद्दी मालूम पड़ती है। और इसे किसलिए रखे हैं?

तो च्यांग्त्सु कहता था, इसे मैं याददाश्त के लिए रखे हूं। जब भी मेरी खोपड़ी भीतर गरम होने लगती है, मुझे लगता है कि मैं कुछ हूं तभी मैं इसकी तरफ देखता हूं कि आज नहीं कल मरघट में पड़े रहोगे; लोगों की ठोकरें लगेंगी। कोई क्षमा भी मांगने रुकेगा नहीं। जब मुझे कोई गाली देता है या जब कोई मुझे मारने को तैयार हो जाता है, तब मैं उसकी तरफ नहीं देखता, इस खोपड़ी की तरफ देखता हूं। तब मेरा मन भीतर ठंडा हो जाता है कि ठीक ही है। इस खोपड़ी को कब तक बचाऊंगा? फिर अनंत काल तक यह पड़ी रहेगी, ठोकरें खाएगी। तो क्या फर्क पड़ता है कि अभी कोई मार जाता है कि कल कोई मार जाएगा, जब मैं बचाने के लिए मौजूद न रहूंगा!

तो यह खोपड़ी भी शून्यता में ले जाएगी।

अपनी वास्तविक स्थिति का स्मरण कि मैं मरणधर्मा हूं कि यह देह थोड़ी देर के लिए है; कि मेरी सीमाएं हैं; कि मेरे ज्ञान की सीमा है, मेरे सामर्थ्य की सीमा है, और मैं स्वतंत्र नहीं हूं परतंत्र हूं; सब तरफ से मैं घिरा हूं और सब तरफ से परस्पर आश्रित हूं; मेरी कोई स्वतंत्र इकाई नहीं है। ऐसी प्रतीति गहरी होती जाए, यह विचार गहन होता जाए, यह ध्यान में उतरता जाए, यह हृदय में बैठ जाए, तो शरणागति फलित होगी।

कठिन इसलिए है, कि मैं कुछ भी नहीं हूं यह मानने का मन नहीं होता। मैं कुछ हूं ऐसा मोह है। बहुत दीन मोह है, बहुत दुर्बल मोह है, किसी मूल्य का भी नहीं; दो कौड़ी उसकी कीमत नहीं है, लेकिन मैं कुछ हूं...।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन के बड़े भाई ने उसे अपनी पत्नी को लेने ससुराल भेजा। और जाते वक्त कहा कि नसरुद्दीन, व्यर्थ की बकवास मत करना। ज्यादा उलटी—सीधी बात करने की तुम्हारी आदत है, इसका उपयोग मत करना। तुम तो न या ही में ही जवाब दे देना।

तो नसरुद्दीन ने गांठ बौध ली कि न और ही से दूसरा शब्द बोलेगा ही नहीं। पहुंचा, तो भाई के ससुर ने पूछा कि तुम आए हो नसरुद्दीन, तुम्हारे बड़े भाई नहीं आए? तो नसरुद्दीन ने कहा, न। तो पूछा ससुर ने कि क्या बीमार हैं? तो नसरुद्दीन ने कहा, हा। तो पूछा ससुर ने कि क्या बचने की कोई आशा नहीं? तो नसरुद्दीन ने कहा, हां। तो घर में कोहराम मच गया। लोग छाती पीटने लगे, रोने लगे। और फिर ससुर ने कहा कि जब तुम्हारे भाई आखिरी क्षण में हैं, तो अब मेरी लड़की को लिवा ले जाकर क्या करोगे! मैं भेजने से मना करता हूं। वह तो बेवा हो ही गई।

तो नसरुद्दीन दुखी और रोता हुआ वापस लौटा। रोता हुआ लौटा, तो भाई ने पूछा कि क्या हुआ? और भाभी कहा है? तो नसरुद्दीन ने कहा, वह बेवा हो गई। तो भाई ने कहा, नालायक, मैं जिंदा बैठा हूं तो वह बेवा हो कैसे सकती है! तो नसरुद्दीन ने कहा कि तुम जिंदा बैठे हो, इससे क्या फर्क पड़ता है। जब बुआ बेवा हुई थीं, तब भी तुम जिंदा थे। जब चाची बेवा हुईं, तब भी तुम जिंदा थे। सैकड़ों औरतें गांव में बेवा हो गईं, तुम जिंदा थे। किसी को न रोक पाए बेवा होने से। तो अब तुम क्या कर सकते हो? किसी का बेवा होना, न होना, तुम पर निर्भर है क्या?

नसरुद्दीन ठीक ही कह रहा है। लेकिन वह जो भीतर मैं है, वह पूरे समय अपने को केंद्र मानकर बैठा है। नसरुद्दीन का व्यंग्य बिलकुल ही ठीक है। तुम्हारे रहने से क्या होता है? लेकिन प्रत्येक सोच रहा है कि उसके रहने से ही सब कुछ होता है। छिपकली भी सोचती है कि उसका सहारा नहीं होगा, तो मकान गिर जाएगा। हम सब भी उसी भाषा में सोचते हैं।

मेरे पास लोग आते हैं; कहते हैं, ध्यान करना चाहते हैं, शांत होना चाहते हैं। लेकिन अगर हम शांत हो जाएंगे, तो क्या होगा? परिवार है, पत्नी है, बच्चे हैं।

हर एक को खयाल है कि सारा संसार उसकी वजह से चल रहा है; उसके सहारे चल रहा है। और कब्रिस्तान भरे पड़े हैं इस तरह के लोगों से, जिनको सभी को यह खयाल था। जिस जगह पर आप बैठे हैं, उस जगह पर कम से कम दस आदमी मर चुके और गड़ चुके। जमीन पर कोई ऐसी जगह नहीं है, जहां दस—दस परतें लाशों की न बिछ चुकी हों। उन सभी को यही खयाल था जो खयाल आपको है कि मैं कुछ हूं।

यह भ्रांति टूट जाए, तो शरणागति आनी शुरू होती है। और इसे तोड्ने के लिए कुछ करना नहीं है, सिर्फ आंख खोलनी काफी है। अपने चारों तरफ आंख भर खोलनी काफी है।

स्थिति ही यही है कि आप कुछ भी नहीं हैं। छोटा—सा संयोग है। वह भी पानी की लहर की तरह संयोग है। बन भी नहीं पाता और मिट जाता है। कोई पत्थर की लकीर भी नहीं है, पानी पर खिंची लकीर है। अपने को जो ठीक से सोचना—समझना, अपनी स्थिति को पहचानना शुरू करेगा, जागतिक संदर्भ में जो अपने को रखेगा और पहचानने की कोशिश करेगा, वह अनुभव करेगा कि मैं एक पानी की बूंद हूं सागर होने का भ्रम गलत है।

और जो अपनी तरफ सोच—विचार में लगेगा, विमर्श करेगा, चिंतन करेगा, उसे यह भी दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा कि जगत मुझसे बहुत बड़ा है। मेरे पीछे, मुझसे आगे, मेरे चारों ओर विराट

जगत है। उस विराट जगत में मैं एक छोटा—सा कंपित होता हुआ जीवन—क्या हूं केंद्र मैं नहीं हूं।

शरणागति सहज हो जाएगी। और अगर कोई परमात्मा न दिखाई पड़ता हो, कोई ईश्वर की प्रतीति न होती हो, तो शून्यता सध जाएगी। दोनों के परिणाम एक हैं। या तो शून्यता सध जाए या शरण— भाव आ जाए। आपका मिटना जरूरी है। जैसे ही आप खोते हैं, वैसे ही जीवन का सत्य प्रकट हो जाता है।

दूसरा प्रश्न :
अपने स्रोत की ओर लौटने के लिए प्राइमल स्कीम का होना आपने जरूरी बताया। पर हम कैसे पहचानेंगे कि कौन—सी रेचन—प्रक्रिया वांछित प्राइमल स्कीम है?
आपको पहचानने की जरूरत ही न पड़ेगी। उसके बाद आप तत्क्षण दूसरे हो जाएंगे। आप बीमार हों, तो आप कैसे पहचानते हैं जब आप स्वस्थ हो जाते हैं? कोई उपाय है आपके पास पहचानने का? नहीं, बीमारी जाती है, तो आप तत्क्षण अनुभव करते हैं कि स्वस्थ हो गए। जब आपका सिरदर्द खो जाता है, तो आप कैसे पता लगा पाते हैं कि अब सिरदर्द नहीं है और सिर ठीक हो गया?

प्राइमल स्कीम का जो रेचन है, जो कैथार्सिस है, जिस क्षण हो जाएगी, उसी क्षण आप फूल की तरह हलके हो जाएंगे, जैसे सारा बोझ खो गया। बोझ है भी नहीं आप पर, सिर्फ आपको खयाल है। पर इस बोझ को आप खींचते हैं, क्योंकि बिना बोझ के अहंकार नहीं चल सकता।

इसलिए जितना अहंकारी आदमी हो, उतना बड़ा बोझ ले लेता है। अहंकारी हो, तो राष्ट्रपति हो जाना जरूरी है, प्रधानमंत्री हो जाना जरूरी है। क्योंकि पूरे मुल्क का बोझ चाहिए, पूरी पृथ्वी का बोझ चाहिए, तब अहंकार को लगता है कि मैं कुछ हूं। हालांकि कुछ राजनीतिज्ञ कर नहीं पाते हैं। बोझ को घटाते हैं, ऐसा लगता नहीं, बढ़ाते भला हों। लेकिन बड़ा बोझ लेकर उन्हें अनुभव होता है कि हम कुछ हैं।

मैंने सुना है कि स्टैलिन ने मरने के पहले खुरश्चेव को दो पत्र दिए। और कहा कि जब मैं मर जाऊं और तू ताकत में आ जाए, तो इन पत्रों को सम्हालकर रखना। इसमें नंबर एक का जो पत्र है, वह तू तब खोलना, जब तेरी कोई योजना इतनी असफल हो जाए कि तेरा तख्ता डांवाडोल हो उठे। और दूसरा तब खोलना, जब कि कोई भरोसा ही न रह जाए तेरे बचने का, सब डूबने की हालत हो जाए और तुझे उतरने के सिवा कोई चारा न रहे, तब तू दूसरा खोलना। जब खुश्चेव असफल हुआ।

और सभी राजनीतिज्ञ असफल होते हैं। अब तक कोई राजनीतिज्ञ जमीन पर सफल नहीं हुआ। होंगे भी नहीं। क्योंकि सफलता से राजनीति का कोई संबंध भी नहीं है।

समस्याएं बड़ी हैं, और आदमी का अहंकार भर उसे खयाल देता है कि मैं हल कर लूंगा। समस्याएं विराट हैं। किसी से हल नहीं होतीं। पर थोड़ी देर को यह वहम भी मन को बड़ा सुख देता है, अहंकार को बड़ी तृप्ति देता है कि मैं हल करने की कोशिश कर रहा हूं। यह खयाल भी कि सारी समस्याओं के हल मुझ पर निर्भर हैं और लोगों की आशा मुझ पर लगी है, काफी सुख देता है।

जब ख्रुश्चेव की योजनाएं असफल हुईं, तो उसने मजबूरी में पहला पत्र खोला। उस पहले पत्र में स्टैलिन ने लिखा था कि सब जिम्मेवारी मेरे सिर पर थोप दे।

यह पुरानी तरकीब है राजनीतिज्ञों की कि जो ताकत में नहीं हैं, जो पीछे ताकत में थे, जो मर गए हैं, उन पर सारी जिम्मेवारी थोप देना कि उनके कारण.।

ख्रुश्चेव ने वही किया। थोड़े दिन नाव और चली। फिर नाव के डूबने के दिन फिर आ गए। तब उसने दूसरा पत्र खोला। दूसरे पत्र में स्टैलिन ने लिखा था कि अब तू भी दो पत्र लिख।

आदमी की बड़ी से बड़ी समस्या है और वह यह कि बिना समस्याओं के आपका अहंकार निर्मित नहीं हो सकता। लोग कहते हैं, हम कैसे शांत हों! लेकिन वे शांत होना नहीं चाहते। क्योंकि अगर आप शांत होंगे, तो आपका अहंकार खड़ा कैसे होगा? बड़ी समस्याएं चाहिए, चुनौती चाहिए, संघर्ष चाहिए, उसके मुकाबले अहंकार खड़ा होगा।

अहंकार को बडा करने के लिए लोग समस्याएं खड़ी करते हैं। आप भी खड़ी करते हैं। और अगर दो—चार दिन कोई समस्या न हो, तो बड़ी बेचैनी शुरू हो जाती है। खाली लगते हैं। कुछ करने को नहीं सूझता। पृथ्वी पर होना न होना बराबर मालूम पड़ता है। जिंदा अगर हैं, तो कुछ उपद्रव चाहिए। जितना ज्यादा उपद्रव, उतने आप जिंदा मालूम होते हैं।

मनसविद कहते हैं, अपराधी और राजनीतिज्ञ एक ही कोटि के लोग हैं। अपराधी भी बिना अपराध किए नहीं रह सकता। क्योंकि अपराध करके वह उपद्रव खड़े कर लेता है, और उनके बीच में महत्वपूर्ण हो जाता है। और राजनीतिज्ञ भी बिना उपद्रव खड़े किए नहीं रह सकता, क्योंकि उपद्रव के बिना उसका कोई मूल्य नहीं, कोई अर्थ नहीं।

इसीलिए युद्ध के समय में बड़े नेता पैदा होते हैं, क्योंकि युद्ध से बड़ा उपद्रव और किसी समय में पाना मुश्किल है। इसलिए जिसको बड़ा नेता होना हो, उसे युद्ध को पैदा करवाना ही पड़ता है।

आप भी यही कर रहे हैं। उपद्रव खडे करते हैं, खोजते हैं, निर्माण करते हैं, न हों, तो कल्पना करते हैं। ये सारे उपद्रव आपके भीतर अपनी छाया, अपने दाग, अपने घाव छोड़ जाते हैं, अपना दुख छोड़ जाते हैं। आपके भीतर एक खंडहर निर्मित हो जाता है। प्राइमल स्कीम, मूल रुदन इस सारे घाव का इकट्ठा रेचन है। जो कुछ आपने इकट्ठा किया है—कूडा—कर्कट, दुख—पीड़ाएं, झूठ, असत्य, धोखे—वह जो आपने एक खंडहर अपने भीतर निर्मित किया है, वह पूरा का पूरा एक चीख में बाहर आ जाए। उसके बाद आप एकदम हलके हो जाते हैं। मन की सारी व्यथा खो जाती है। इतना ही कहना ठीक नहीं, मन ही खो जाता है।

पहचानने की जरूरत नहीं पडेगी; अचानक आप पाएंगे कि पंख लग गए, आप उड़ सकते हैं। अचानक पाएंगे, ग्रेविटेशन समाप्त हो गया, जमीन आपको खींचती नहीं, वजन न रहा; आप निर्भार हो गए। कोई चिंता न आगे है, न पीछे है। यह क्षण पर्याप्त है। और यह क्षण बहुत सुखद है। आनंद की अनुभूति आपको बताएगी कि रेचन हो गया है। दुख बताता है कि रेचन बाकी है।

और आप रेचन भी नहीं होने देते। हृदयपूर्वक रो भी नहीं सकते, चीख भी नहीं सकते। हृदयपूर्वक कुछ भी करने का उपाय नहीं है। सब अधूरा— अधूरा, झूठा—झूठा करते हैं। और तब अगर पूरी जिंदगी एक उदास ऊब हो जाए, तो कुछ आश्चर्य नहीं है।

इसलिए साधक को साहस चाहिए कि जो भीतर दबा है, उसे वह बाहर फेंक सके। और एक बार भी आप हिम्मत जुटा लें, तो बाहर फेंकना बहुत कठिन नहीं है। और एक बार रस अनुभव होने लगे, जैसे ही बोझ अलग हो और रस अनुभव होने लगे।

मैंने सुना है, एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन रास्ते से गुजर रहा है। और बड़ी अश्लील, भद्दी गालियां दे रहा है अपने जूतों को। उसके एक मित्र ने पूछा कि क्या बात है? और इतने उदास, इतने दुखी,

और चेहरे पर ऐसे भाव जैसे कांटे चुभ रहे हों। उसने कहा कि जूते छोटे हैं, और पैरों में बड़ा कष्ट है। तो मित्र ने कहा, तुम इन्हें उतार क्यों नहीं देते हो? नसरुद्दीन ने कहा कि वह मैं नहीं कर सकता। मित्र कुछ समझा नहीं। उसने पूछा कि कारण न करने का? तो नसरुद्दीन ने कहा, बस यही एक मेरे सुख का सहारा है। जब दिनभर का थका—मादा, हारा, पराजित, दुकान— धंधे से उदास घर वापस लौटता हूं। पत्नी देखते ही टूट पड़ती है; बकने लगती है, चीखने—चिल्लाने लगती है। बच्चे अपनी मांगें मौजूद कर देते हैं। पास में पैसा नहीं है। पूरे दिनभर के इस दुख और पीड़ा के बाद जब घर जाकर मैं अपने पैर के जूते निकालता हूं तो मोक्ष का आनंद उपलब्ध होता है। जूते उतारते से ही लगता है कि जिंदगी में सुख है। और कोई सहारा नहीं है सुख का। बस, यह एक जूता ही सहारा है। आप भी अपने दुख को पकड़े हैं। क्योंकि वह दुख ही आपके सुख की छोटी—मोटी झलक है, बस। जब उसको आप उतारकर रखते हैं, थोड़ा—सा लगता है अच्छा।

नसरुद्दीन कहता है, ये जूते मैं उतार नहीं सकता। क्योंकि इनके सिवाय तो जीवन में कोई सुख नहीं है।

आप किस—किस बात को सुख कहते हैं, आपने कभी खयाल किया? लोग काम को, सेक्स को सुख कहते हैं; वह सिर्फ आपका जूता उतारने से ज्यादा नहीं है। तनाव इकट्ठे हो जाते हैं। दिनभर आप तनाव इकट्ठे करते हैं। शरीर से बाहर जाती ऊर्जा के कारण तनाव शिथिल हो जाते हैं। लगता है, सुख मिला।

महावीर या बुद्ध कामवासना को जीतकर आनंद को उपलब्ध नहीं होते हैं। चूंकि आनंद को उपलब्ध होते हैं, इसलिए कामवासना व्यर्थ हो जाती है। जूता उतारकर सुख अनुभव नहीं करते। सुख अनुभव हो रहा है, इसलिए जूते के दुख को झेलने की और सुख की आशा बनाने की कोई जरूरत नहीं रह जाती।

दिनभर के तनाव से भरे हुए जाकर एक फिल्म में बैठ जाते हैं; सुख मिलता है। कैसा सुख मिलता होगा! आंखें और थकती हैं। लेकिन कम से कम दो घंटे, तीन घंटे के लिए अपने को भूल जाते हैं; व्यस्त हो जाते हैं कथा में। व्यस्तता ज्यादा हो जाती है, स्वयं का विस्मरण हो जाता है।

लेकिन जिसको दिनभर स्वयं का विस्मरण रहा हो, जिसको अहंकार ही न हो, विस्मरण करने को कुछ न हो, उसे तीन घंटा भुलाने के लिए किसी फिल्म में बैठने की कोई जरूरत नहीं है। उसने जूते ही उतार दिए।

शराब पीकर थोड़ी देर सुख मिलता है। वही अहंकार शराब पीकर मिट जाता है। इसलिए शराब पीने वाले लोग विनम्र होते हैं। जो लोग शराब छोड़े होते हैं, वे लोग अक्डैल, दुष्ट प्रकृति के होते हैं। उन्हें अहंकार को हटाने का कोई उतना भी उपाय नहीं है।

इसलिए अक्सर आप पाएंगे कि शराब पीने वाला मृदु होगा, मैत्रीपूर्ण होगा, भला होगा; वक्त पर काम पड़ सकता है। आप उस पर भरोसा कर सकते हैं। कंजूस नहीं होगा, कठोर नहीं होगा। क्योंकि थोडी शराब के द्वारा कम से कम अहंकार भूलता है : मिटता तो नहीं, लेकिन थोड़ी देर को भूल जाता है।

इसलिए आप शराब पीए, तो थोड़ी देर में चेहरे की उदासी खो जाती है और एक प्रसन्नता प्रकट होने लगती है। पैरों में गति आ जाती है और नाच आ जाता है। यह वही आदमी है, थोड़ी देर पहले ऐसा मरा हुआ चल रहा था, चेहरा ऐसा था जैसे कि बस, जीवन में कोई अर्थ नहीं है। इसकी आंखों में रौनक आ गई, चेहरे पर चमक आ गई, पैर में गति आ गई।

यह हलका—फुलका कैसे हो गया? शराब किसी को हलका— फुलका नहीं करती। शराब केवल अहंकार को सुला देती है।

इसलिए सूफी फकीर कहते हैं कि जिन्होंने परमात्मा की शराब पी ली, फिर इस शराब में उन्हें कोई भी अर्थ नहीं है। परमात्मा की शराब का मतलब इतना ही है कि जिन्होंने अहंकार ही छोड़ दिया, जिन्होंने उसकी शरण पकड़ ली, उनको अब भुलाने को कुछ नहीं बचा।

इसलिए फकीरों की मस्ती शराबियों की ही मस्ती है, पर बड़ी गहन शराब की है। और शराबी की मस्ती बड़ी महंगी है। क्योंकि पाता बहुत ना—कुछ है और बहुत—से दुख उठाता है। फकीर की मस्ती बिना कुछ खोए बहुत कुछ पाने की है।

हम दुख को पकड़े बैठे हैं और दुख को हम इकट्ठा करते हैं। हम रस भी लेते हैं।

लोगों को देखें, जब वे अपने दुख की कथा किसी को सुनाते हैं, तो कितने प्रसन्न मालूम होते हैं! यह बड़ी हैरानी की बात है। अगर कोई आपकी दुख की कथा न सुने, तो आपको दुख लगता है। सुने, आपको रस आता है। और हर आदमी अपने दुख की कहानी बढ़ा—चढ़ाकर बताता है।

एक मेरे मित्र ने मुझसे कहा—उनकी पत्नी मेरे पास आती थी—उन्होंने कहा, आप इसकी बातों में ज्यादा मत पड़ना। क्योंकि इसको फुंसी हो जाती है, और कैंसर बताती है। और मैंने पाया कि वे ठीक कहते थे। फुंसी भी कोई बीमारी है! जब तक कैंसर न हो, तब तक अहंकार को रस नहीं आता।

आपने खयाल न किया होगा, जब आप डाक्टर की तरफ जाते हैं सोचकर कि बड़ी बीमारी पकड़ गई है, और डाक्टर कहता है कुछ भी नहीं है, तो आपको अच्छा नहीं लगता। मन में थोड़ी—सी चोट लगती है; शक होता है कि शायद यह डाक्टर ठीक नहीं है। मुझ जैसे आदमी को और छोटी—मोटी बीमारी या कुछ भी नहीं! यह उलटा मालूम पड़ता है, लेकिन भीतर यह लगता है कि बेकार आना जाना हुआ।

तो जो बेईमान डाक्टर हैं या कुशल, वे आपको देखकर बड़ा गंभीर चेहरा बना लेंगे। उससे आपका चित्त प्रसन्न होता है। और जब आपका हाथ हाथ में लेते हैं, तो ऐसा लगता है कि बहुत गंभीर स्थिति है। आपको कोई बीमारी न भी हो, तो भी वे बीमारी को बढ़ा—चढ़ाकर खड़ा करते हैं। उससे मरीज प्रसन्न होता है।

किसी मरीज को कह दें कि आपको मानसिक खयाल है, बीमारी है नहीं। वह आपका दुश्मन हो जाता है।

कोई यह बात मानने को राजी नहीं है कि हम दुख को भी पकड़ते हैं, लेकिन हम पकड़ते हैं। दुख को भी हम बड़ा करते हैं। फिर वह दुख बड़ा होकर हमारे सिर पर पत्थर की तरह, छाती पर पत्थर की तरह सवार हो जाता है। फिर हम उसको ढोते हैं।

रेचन का अर्थ है, दुख को उतार देना। प्राइमल स्कीम का अर्थ है, दुख को प्रकट हो जाने देना, निकल जाने देना। एक भयंकर चीत्कार में वह बाहर हो जाए और छाती हलकी हो जाए; हृदय का बोझ उतर जाए।

तो कोई आपको पता नहीं लगाना पड़ेगा कि कैसे पता चले कि यह प्राइमल स्कीम थी! ऐसे पता चलेगा कि उसके बाद एकदम आप हलके हो जाएंगे। आप पाएंगे कि जैसे आपके पास कोई दुख कभी था ही नहीं। आप सदा ही आनंद में रहे। जैसे एक स्वप्न देखा हो दुख का और नींद टूट गई। और अब कोई स्वप्न नहीं है। और आप हंस रहे हैं।

तीसरा प्रश्न :
कल आपने बताया कि वासनाओं की जड़ें गहरे अचेतन में हैं और केवल बौद्धिक तल पर घटित वैराग्य का निर्णय अपर्याप्त है। वैराग्य का जागरण गहरी अचेतन जड़ों तक कैसे हो सकता है?
अनुभव के अतिरिक्त कोई भी उपाय नहीं। और हम सब चाहते हैं कि अनुभव के बिना कुछ हो जाए। अनुभव से बिना गुजरे कोई उपाय नहीं है, चाहे अनुभव कितनी ही पीड़ा दे, कितना ही जलाए। हमारी आकांक्षा ऐसी है, जैसे सोना सोचता हो कि बिना आग से गुजरे और मैं शुद्ध हो जाऊं। आग से गुजरना ही पड़ेगा। पहली बात। अनुभव से गुजरना ही पड़ेगा।

और दूसरे के अनुभव आपके काम न आएंगे, यह ध्यान में रखें। बुद्ध कहते हैं, संसार दुख है। आप पढ लें, सुन लें। मैं कहता हूं संसार दुख है। आप सुन लें, समझ लें। इससे कुछ होगा नहीं। इससे खतरा है कि आप पाखंडी हो जाएंगे।

यह अनुभव आपका ही होना चाहिए कि संसार दुख है। इसीलिए इस तरह के सवाल उठते हैं कि वैराग्य कैसे गहरा हो? वैराग्य को गहरा करने का सवाल नहीं है। जीवन के अनुभव को पूरा का पूरा भोगने का है। लेकिन हम सब का मन यह होता है कि.......।

बुद्ध तो दुख भोगकर वैराग्य को उपलब्ध हुए, फिर उन्होंने आनंद पाया। हम बुद्ध से भी ज्यादा कुशलता दिखाना चाहते हैं। दुख भोगने से भी बचना चाहते हैं, और जैसा वैराग्य बुद्ध को हुआ, वैसा वैराग्य चाहते हैं, और वैसा आनंद चाहते हैं, जैसा वैराग्य के बाद उन्हें हुआ!

नहीं, यह नहीं होगा। वैराग्य का अपना गणित है। और कोई शार्टकट न कभी रहा है और न कभी होने वाला है। और अगर आप इतने लंबे दिनों से भटक रहे हैं, तो शार्टकट की तलाश की वजह से। नहीं तो कभी का आपको भी।

कितने जन्मों तक आप भी गुजरे हैं! पर आपकी आशा यह है कि बिना दुख से गुजरे, बिना अनुभव से गुजरे और वैराग्य हो जाए। और फिर वैराग्य से मोक्ष मिले और परम आनंद की उपलब्धि हो। आप पहली सीढ़ी चूक रहे हैं। बुद्ध जैसे दुख से गुजरना पड़े, तो ही बुद्ध जैसा वैराग्य उत्पन्न होगा।

और ऐसा नहीं है कि दुख की आपको कोई कमी है। दुख काफी है। लेकिन आप उससे गुजरते नहीं, बचते हैं। आपने पलायन, एस्केप को अपना रास्ता बनाया हुआ है। कैसे बच जाएं, इसकी फिक्र में रहते हैं।

जो दुख से बचेगा, उसे वैराग्य कभी उत्पन्न नहीं होगा। क्योंकि दुख की गहनता ही वैराग्य का जन्म है।

आपका प्रियजन मर जाता है, आप बचने की तलाश में लग जाते हैं। आप मृत्यु का दुख नहीं भोगते। आप पूछने चले जाते हैं पंडित से, पुरोहित से कि आत्मा अमर है? पत्नी मर गई है, या पति मर गया, या बेटा मर गया, मौत सामने खड़ी है। आप साधु—संन्यासियों से पूछ रहे हैं कि आत्मा अमर है?

आप झुठलाना चाहते हैं मौत को, कि कोई कह दे कि आत्मा अमर है, भरोसा दिला दे, तो रोने की जरूरत न रहे, दुख की जरूरत न रहे। क्यों? क्योंकि अगर आत्मा अमर है, तो कुछ बात नहीं। शरीर ही छूटा, वस्त्र बदले; लेकिन बेटा कहीं न कहीं जिंदा है, कभी न कभी मिलना होगा।

ईसाई, मुसलमान, सभी सोचते हैं कि मरने के बाद फिर अपने संबंधियों से मिलना हो जाता है। तो थोड़े दिन का फासला है, थोड़े दिन की बात है, झेल लो। और कोई मिटा नहीं, कोई मरा नहीं। आप दुख से बचने का उपाय खोज रहे हैं।

मौत सामने खड़ी है, इसके दुख को भोगो। झुठलाओ मत। तरकीबें मत खोजो। जिस पत्नी से सुख पाया है, उसका दुख भी भोगो। जिस पति से आनंद अनुभव किया था, उस पति के जाने पर अभाव का जो नरक है, उससे गुजरी। न तो शराब पीकर भुलाओ, न सिद्धांतों को पीकर भुलाओ। न भजन—कीर्तन करके अपने को समझाओ, न गीता पढ़कर अपने मन को यहां—वहा लगाओ। दुख सामने खड़ा है, दुख को सीधा भोगो। दुख को ही तुम्हारा ध्यान बन जाने दो।

तो उस मृत्यु से तुम निखरकर बाहर आओगे। तुम आग से गुजर जाओगे, तुम्हारा सोना निखर जाएगा; वैराग्य का उदय होगा। फिर तुम्हें मुझसे नहीं, किसी से भी नहीं पूछना पड़ेगा कि वैराग्य गहरा कैसे हो? वैराग्य गहरा हो जाएगा।

एक मौत को भी तुम ठीक से देख लो, तो जिंदगी व्यर्थ हो जाती है। एक सूखा पत्ता वृक्ष से गिरता हुआ भी तुम ठीक से समझ लो, तो जिंदगी में कुछ पाने जैसा नहीं रह जाता।

लेकिन नहीं, जब कोई मरता है, तब तुम अपने को समझाने में लग जाते हो। और जब कोई मर भी जाता है, तब भी तुम यही सोचते हो कि दुर्घटना है।

मौत जीवन का वास्तविक तथ्य है, दुर्घटना नहीं। यह कोई संयोग नहीं है। यह होने ही वाला है, यह जीवन की नियति है। जब कोई मरता है, तो तुम ऐसा सोचते हो कि कुछ भूल—चूक हो गई, कहीं कुछ गड़बड़ हो गई, कुछ कर्म का फल रहा होगा। तुम यह बात भूल रहे हो कि मौत हर जीवन के पीछे लगी ही है, होगी ही; उससे ज्यादा निश्चित और कुछ भी नहीं है। वही एकमात्र निश्चित तथ्य है।

फिर जब दूसरा मरता है, तब तुम्हें कभी खयाल नहीं आता कि यह मेरे मरने की भी खबर है। तब तुम दूसरे पर दया करने का विचार करते हो, कि बड़ा बुरा हुआ; बेचारा! तुम्हें यह खयाल कभी भी नहीं आता कि कोई भी जब मरता है, तब तुम ही मर रहे हो। लेकिन हर आदमी यह सोचकर चलता है कि हमेशा दूसरा मरता है, मैं तो कभी मरता नहीं। और एक लिहाज से आपका तर्क ठीक भी है। कम से कम अभी तक तो आप मरे नहीं। इसलिए.......।

मैंने सुना है कि एक आदमी एक पक्षियों की दुकान से एक तोता खरीदकर ले गया। दूसरे दिन ही वापस आया और तोता बेचने वाले पर नाराज होने लगा और कहा कि तुमने किस तरह का तोता दिया! वह घर जाकर मर गया। तो उस दुकानदार ने कहा, लेकिन यह मैं मान ही नहीं सकता, क्योंकि ऐसी हरकत उसने इसके पहले कभी नहीं की। तोता यहां भी था, महीनों तक रहा, ऐसी हरकत उसने पहले कभी की नहीं। इसलिए मैं भरोसा कर ही नहीं सकता।

आपका भी तर्क यही है। अभी तक आप मरे नहीं, तो भरोसा कैसे कर सकते हैं कि मर जाएंगे! और जो अब तक नहीं हुआ, वह आगे भी क्यों होगा!

जब दूसरा मरता है, तब भी आप सोचते हैं, दूसरा मरता है। तब आपको खयाल नहीं आता है कि मैं भी मरूंगा या मैं भी मर रहा हूं या यह खबर मेरी मौत की खबर है।

अगर आप दुख को ठीक से जीएं, तो हर मौत आपको अपनी मौत मालूम पड़ेगी। तब वैराग्य गहरा हो जाएगा।

जब कोई दूसरा असफल होता है या जब आप खुद भी असफल होते हैं जीवन में, तो आप सोचते हैं, संयोग ठीक न थे, भाग्य साथ न था, दूसरे लोगों ने बेईमानी की, चालबाजी की, चार सौ बीस थे, इसलिए वे सफल हुए; मैं असफल हुआ। लेकिन आप यह कभी नहीं देख पाते हैं कि पूरा जीवन असफलता है। इसमें सफल होना होता ही नहीं। लेकिन कोई तरकीब आप निकाल लेते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक गांव से गुजर रहा है। कोई मर गया है, घर के आस—पास भीड़ है, लाश सामने रखी है। नसरुद्दीन भूखा है। छोटा गांव है। सारा गांव वहीं इकट्ठा है। कोई भोजन देने के लिए भी अभी उत्सुक नहीं होगा।

अभी कोई मेहमान बनाने की भी तैयारी में नहीं है। और गांव इतने दुख में है कि वह यह बात भी करे कि मुझे भूख लगी है, कि मुझे भोजन चाहिए तो भद्दा मालूम पड़ेगा।

वह भी भीड़ में जाकर खड़ा हो गया और उसने पूछा कि क्या बात है? क्यों रो रहे हो? तो उन्होंने कहा कि क्यों रो रहे हैं, यह भी पूछने की कोई बात है? घर का आदमी मर गया है। गांवभर का प्यारा था।

नसरुद्दीन ने कहा कि मैं उसे जिला सकता हूं। लेकिन अभी मैं भूखा हूं। पहले मेरा पेट भर जाए, मैं स्नान कर लूं, पूजा—पाठ कर लूं; इसे मैं जिला सकता हूं। रोने की कोई भी जरूरत नहीं है।

भूख में ऐसा कह तो गया। फिर जब पेट भर गया, हाथ—मुंह धोकर पूजा—पाठ जब उसने की, तब पूजा—पाठ कर नहीं सका, क्योंकि अब उसको झंझट मालूम हुई कि अब क्या करना? कहीं मरा हुआ कभी कोई जिंदा हुआ है!

फिर भी वह आया, लाश के पास बैठा; और उसने कहा कि यह आदमी कौन था? इसका धंधा क्या था? उन्होंने कहा कि यह आदमी! जाहिर आदमी है, यह बड़ा नेता था; राजनीति इसका धंधा था। नसरुद्दीन क्रोध से खड़ा हो गया और उसने कहा कि नालायको, मेरा समय खराब किया! राजनीतिज्ञ मरकर कभी जिंदा नहीं होते। तुम्हें पहले ही बताना था, नाहक मेरा समय खराब करवा दिया। अब तक मैं दूसरे गांव पहुंच गया होता।

आप भी जिंदगी में बहाने खोज रहे हैं। कभी यह, कभी वह। लेकिन हमेशा समझा लेते हैं अपने को कि असफलता का कोई कारण है।

बुद्ध का वैराग्य गहरा हुआ, क्योंकि बुद्ध ने अपने को समझाया नहीं, बल्कि सीधा देखा और पाया कि जीवन पूरी की पूरी असफलता है; इसमें कारण की कोई जरूरत नहीं है। यहां कुछ भी करो, सफलता तो हो नहीं सकती। क्योंकि यहां कुछ भी करो, सुख तो मिल नहीं सकता। यहां कुछ भी करो, कहीं पहुंचना नहीं हो सकता। स्वप्नवत है।

जो सीधा देखना शुरू करेगा, उसका वैराग्य गहरा हो जाता है। और वैराग्य के बिना गहरा हुए, कोई शास्त्र सहयोगी नहीं है, कोई गुरु अर्थ का नहीं है। वैराग्य गहरा हो, तो गुरु से संबंध हो सकता है। वैराग्य गहरा हो, तो शास्त्र का अर्थ प्रकट हो सकता है। और वैराग्य गहरा हो, तो गुरु भी न हो, शास्त्र भी न हो, तो पूरा जीवन ही गुरु और शास्त्र बन जाता है।

लेकिन वैराग्य को गहरा करने की तरकीबें नहीं हैं। वैराग्य को गहरा करने का एक ही मार्ग है, आपका अनुभव पूरी सचाई में जीया जाए। जो भी अनुभव हो—सुख का हो, दुख का हो, संताप

हो, चिंता हो, असफलता हो—जो भी अनुभव हो, उसे पूरी तरह जीया जाए, होशपूर्वक जीया जाए। वह अनुभव ही आपको बताएगा कि जीवन व्यर्थ है, छोड़ देने योग्य है। पकड़ने योग्य यहां कुछ भी नहीं है।

अब हम सूत्र को लें।
उस स्वयं प्रकाशमय परम पद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चंद्रमा और न अग्नि ही। तथा जिस परम पद को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे संसार में नहीं आते, वही मेरा परम धाम है।

पहली बात, इस जगत में जो भी हम देखते हैं, वह दूसरे से प्रकाशित है। आप मुझे देख रहे हैं; बिजली बुझ जाए, फिर आप मुझे नहीं देख सकेंगे। मैं आपको देख रहा हूं; बिजली बुझ जाए, फिर मैं आपको नहीं देख सकूंगा। आप हैं, लेकिन कोई और चीज चाहिए, जिसके द्वारा आप प्रकाशित हैं।

दिन में दिखाई पड़ता है, रात में दिखाई नहीं पड़ता। आंख तो होती है, चीजें भी होती हैं, लेकिन सूरज नहीं होता। सभी चीजें पर—प्रकाश चाहती हैं। कोई और चाहिए, जो प्रकाशित कर सके। कृष्ण कह रहे हैं, लेकिन मेरा परम धाम

वहां है, जहां न तो सूर्य के प्रकाश की कोई जरूरत है, न चंद्र के प्रकाश की कोई जरूरत है; न अग्नि की कोई जरूरत है, जहां दूसरे प्रकाश की कोई जरूरत नहीं है। मेरा परम धाम स्व—प्रकाशित है, सेल्फ इस्मृमिन्द है।

यह बात बड़ी समझ लेने जैसी है। क्योंकि यह बहुत गहरा और मौलिक आधार है समस्त साधना का। और इसकी खोज ही साधक का लक्ष्य है। ऐसी कौन—सी घटना है जो स्व—प्रकाशित है? ऐसा क्या अनुभव है जो स्व—प्रकाशित है?

आप आंख बंद कर लें, तो मैं नहीं दिखाई पडूंगा। आंख बंद करके लेकिन आप तो अपने को दिखाई पड़ते ही रहेंगे। शरीर दिखाई नहीं पड़ेगा, लेकिन स्वयं का होना तो प्रतीत होता ही रहेगा। दीया बुझ जाए, मैं आपको दिखाई नहीं पडूंगा। लेकिन आप अपने को तो अनुभव करते ही रहेंगे कि मैं हूं। आपके होने के लिए तो किसी और प्रकाश की जरूरत नहीं है।

तो आपके होने में कोई एक तत्व चेतना का है, जो स्वयं प्रकाशित है; जिसका होना अपने आप में काफी है। यह जो चेतना की हल्की—सी झलक आपके भीतर है, यही झलक जब पूरी प्रकट हो जाती है, तो कृष्ण कहते हैं, वह परम धाम मेरा है; वही मैं हूं।

उस स्वयं प्रकाशमय परम पद को न तो सूर्य प्रकाशित कर सकता है—न करने की कोई जरूरत है—न चंद्रमा और न अग्नि, तथा जिस परम पद को प्राप्त होकर मनुष्य पीछे संसार में नहीं आते, वही मेरा परम धाम है।

यहां कृष्ण कह रहे हैं कि जितना ही व्यक्ति चेतन होता चला जाता है, उतना ही वह परम धाम की तरफ गति करता है। और जिस दिन परम चैतन्य प्रकट होता है, उस परम चैतन्य को प्रकाशित करने के लिए किसी की भी कोई जरूरत नहीं है, वह स्व—प्रकाशित है। और एक ही बात इस जगत में स्व—प्रकाशित है, वह स्वयं का होना है। उसके लिए किसी प्रमाण की कोई जरूरत नहीं है। उसको असिद्ध करने का भी कोई उपाय नहीं है। अगर आप यह भी कहें कि मैं नहीं हूं, तो कोई फर्क नहीं पड़ता। आपके कहने से सिर्फ आपका होना ही सिद्ध होता है।

और अंधा आदमी भी अपने को अनुभव करता है। अंधेरे में भी आप अपने को अनुभव करते हैं। आपकी आंखें चली जाएं, आपके कान खो जाएं, आपके हाथ काट दिए जाएं, आपकी जीभ काट दी जाए, आपकी नाक नष्ट कर दी जाए, तो भी आप अपना अनुभव कर सकते हैं, तो भी आप होंगे और आपकी प्रतीति में रत्तीभर का भी फर्क नहीं पड़ेगा। क्योंकि आंखों से दूसरे देखे जाते हैं, स्वयं नहीं। कानों से दूसरे सुने जाते हैं, स्वयं नहीं। सारी इंद्रियां भी खो जाएं, तो भीतर के होने में जरा भी अंतर नहीं पड़ता।

वह जो भीतर का होना है, वहा कोई प्रकाश नहीं है, फिर भी आप जानते हैं कि आप हैं। और आप कभी भीतर नहीं गए हैं अभी। अगर आप भीतर जाएं, तो आपको वहा भी प्रकाश का अनुभव होना शुरू हो जाएगा।

ध्यान में जो लोग भी गति किए हैं, उन सभी का अनुभव प्रकाश का अनुभव है। वे किस प्रकाश को जानते हैं?

कबीर कहते हैं कि जैसे आकाश में बिजलियां चमक रही हैं, ऐसा मेरे भीतर कुछ हो रहा है। दादू कहते हैं कि जैसे हजार सूरज एक साथ उग गए हों, ऐसा मेरे भीतर कुछ उग आया है। फिर चाहे मुसलमान फकीर हों, ईसाई फकीर हों, सभी फकीरों का अनुभव है कि जब भीतर ध्यान की गहराई उतरती है, तो परम प्रकाश के अनुभव होते हैं।

वह प्रकाश न तो सूरज का है, न अग्नि का है, न चांद का है। वह प्रकाश कहां से आता है? वह प्रकाश कहीं से भी नहीं आता; आप स्वयं ही वह प्रकाश हैं। आपका होना ही वह प्रकाश है।

इस प्रकाश को कह रहे हैं कृष्ण कि वह मेरा परम धाम है। और जो उस स्थिति को उपलब्ध हो जाता है, वह इस संसार में वापस नहीं लौटता। वही मूल—स्रोत है, वही उदगम है।

और हे अर्जुन, इस देह में यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है और वही इन त्रिगुणमयी माया में स्थित हुई मन सहित पांचों इंद्रियों को आकर्षण करता है।

उस स्व—प्रकाशित ज्योति—पुंज का एक हिस्सा ही प्रत्येक देह के भीतर छिपा है।

इसे हम ऐसा समझें। आप आंख बंद कर लें, तो आप अपने विचारों को देख सकते हैं। आंख बंद है; विचार देखे जा सकते हैं। कौन देखता है? भीतर क्रोध उठे, कामवासना उठे, आप उसे भी देख सकते हैं। कौन देखता है? वह जो देखने वाला है, उसको आप नहीं देख सकते।

जिस—जिसको आप देख सकते हैं, वह—वह आप नहीं हैं, यह गणित है। और जो सबको देखता है, लेकिन स्वयं नहीं देखा जा सकता, वह आप हैं। वही आपका मूल उत्स है। उससे पीछे जाने का कोई उपाय नहीं। नहीं तो उसको भी आप देख लेते। उससे पीछे खड़े हो जाते, उसको भी देख लेते। लेकिन उसे आप नहीं देख सकते।

सब देख सकते हैं। शरीर देखा जा सकता है, मन के विचार देखे जा सकते हैं; हृदय की भावनाएं देखी जा सकती हैं; कुंडलिनी के अनुभव देखे जा सकते हैं; सब देखा जा सकता है। जो भी देखा जा सकता है, वह आपका स्वभाव नहीं है। देखने वाला जो है, वही आपका स्वभाव है। वह जो द्रष्टा है, वह इररिडयूसिबल है। उसे आप दृश्य नहीं बना सकते। उसको आप विषय नहीं बना सकते। वह हमेशा विषयी है। वह हमेशा सब्जेक्ट है, वह आब्जेक्ट नहीं हो सकता।

जैसे ही सारे विषय खो जाते हैं, और सिर्फ जानने वाला ही रह जाता है, और जानने को कुछ नहीं बचता, परम प्रकाश का उदय होता है। यह परम प्रकाश बाहर से नहीं आता, न सूरज से, न चांद से, यह आपके भीतर ही छिपा है।

सूरज भी चुक जाएगा। उसकी गरमी भी कम होती है। यह बिजली भी चुक जाएगी। दीया जलता है, तेल चुक जाएगा, दीया बुझ जाएगा। सिर्फ एक ज्योति है, जो कभी नहीं बुझती, क्योंकि वह बिना ईंधन के जलती है, वह चेतना की ज्योति है। कोई तेल उसे नहीं जलाता। कोई ईंधन, कोई पेट्रोल, कोई बिजली, कोई हीलियम गैस उसे नहीं जलाती। इसलिए उसके समाप्त होने का कोई उपाय नहीं है। वह शाश्वत है।

वैज्ञानिक बड़ी खोज करते हैं कि कोई ऐसा प्रकाश उपलब्ध हो जाए, जो बिना ईंधन के चले। क्योंकि सब ईंधन चुकते जाते हैं, सब ईंधनों की सीमा है। कोयला खत्म होता जाता है, पेट्रोल खत्म होता जाता है। आज नहीं कल सब ईंधन चुक जाएंगे। और आदमी बिना ईंधन के जी नहीं सकता। तो बड़ी कठिनाई खड़ी हो गई है। वैज्ञानिक सोचते हैं, ईंधनरहित कोई प्रकाश।

और कृष्ण उसी प्रकाश की बात कर रहे हैं। वह प्रकाश प्रत्येक के भीतर है। लेकिन उसे यंत्र से पैदा करने का कोई भी उपाय नहीं है। चैतन्य उसी प्रकाश का नाम है।

इस देह में यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है—उस परम प्रकाश का ही अंश है—और वही इन त्रिगुणमयी माया में स्थित हुई मन सहित पांचों इंद्रियों को आकर्षण करता है।

और यह जो चेतना का अंश आपके भीतर है, यही आपकी पांचों इंद्रियों को अपने में आकर्षित किए हुए है, सम्हाले हुए है। यह थोड़ा समझने जैसा है। क्योंकि बडी भ्रांति है इस संबंध में।

आमतौर से आदमी सोचते हैं कि इंद्रियों ने आपको बांधा हुआ है। कृष्ण कह रहे हैं कि आप ही इंद्रियों को पकड़े हुए हैं। इंद्रियां आपको क्या बांधेगी! इंद्रियां जड़ हैं, वे आपको बांधें, इसका कोई उपाय नहीं है। आप बंधे हुए हैं। और यह आपका ही संकल्प है; यह आपका ही निर्णय है। इस निर्णय की बड़ी प्रक्रिया है।

आप रूप देखना चाहते हैं। रूप देखने की जो वासना है, वह आपकी आंखों को आपसे बांधे रखती है। उस वासना के रज्जु से आंख बंधी रहती है। अगर आपकी देखने की इच्छा खो जाए, आप इसी क्षण अंधे हो जाएंगे।

मेरे पास एक युवती को लाया गया। वह अचानक अंधी हो गई। और चिकित्सकों ने जांच की और पाया कि उसकी आंख में कोई शारीरिक भूल—चूक नहीं है। आंख बिलकुल ठीक है। इसलिए इलाज का कोई उपाय नहीं है। और चिकित्सकों ने कहा कि यह तो मानसिक अंधापन है, कुछ किया नहीं जा सकता।

किसी ने सुझाव दिया, उसके मां—बाप उस युवती को मेरे पास ले आए। मैंने उससे पूछा कि कैसे हुआ? क्या हुआ? क्योंकि अगर मानसिक घटना है, तो उसका इतिहास होगा। क्योंकि मन तो अतीत से काम करता है, मन तो अतीत है। तो मैंने मां—बाप को कहा कि आप जाएं; मैं उस युवती से अलग से ही बात कर लूं।

उससे पूछताछ की, खोजा—बीना, तो पता चला कि पड़ोस के युवक से उसका प्रेम है। और उसके बिना वह नहीं रह सकती।

लेकिन वह ब्राह्मण की लड़की है। पड़ोस में जो व्यक्ति है, वह ब्राह्मण तो है ही नहीं, हिंदू भी नहीं है। यह प्रेम चलाया नहीं जा सकता। यह विवाह हो नहीं सकता। तो सब तरफ से मा—बाप ने रोक लगा दी; और दोनों के मकान .के बीच छत पर एक बड़ी दीवार खड़ी कर दी, जिससे कि आर—पार देखा न जा सके। जिस दिन दीवार बनी है, उसी दिन से उसकी आंखें चली गई हैं।

मैंने उसको पूछा कि तेरे भीतर क्या भाव है? उसने कहा कि जिसे मैं देखने के लिए जीती हूं अगर उसे न देख सकूं? तो इन आंखों का कोई अर्थ नहीं है।

चिकित्सक इसका इलाज न कर सकेंगे। क्योंकि इसकी देखने की इच्छा वापस लौट गई है। आंखें निर्जीव पड़ी रह गई हैं। आंखों से देखने की इच्छा का जो प्रवाह है, वही आंखों में जीवन देता है। मैंने उनके मां—बाप को कहा कि उपाय एक ही है, वह दीवार बीच से गिरा दो। और जो—जो बंधन खड़े किए हैं; वह हटा लो। या फिर यह लड़की अंधी रहेगी, इसे स्वीकार कर लो।

उनको बात समझ में आ गई, जो कि बडा चमत्कार है। क्योंकि मां—बाप की समझ में कुछ आ जाए! वे राजी हो गए। दीवार नहीं गिरानी पड़ी; उनके राजी होते से ही, मेरे सामने ही बैठे—बैठे उस लड़की की आंखें वापस आ गईं। फिर से देखने की इच्छा प्रवाहित हो गई।

आप आंखों को पकड़े हैं, क्योंकि देखना चाहते हैं। कान को पकड़े हैं, क्योंकि सुनना चाहते हैं। हाथ को पकड़े हैं, क्योंकि छूना चाहते हैं। आपकी चाह आपकी इंद्रियों के और आपके बीच सेतु है। इसलिए बुद्ध ने कहा है कि आंखें मत फोड़ो; कान बंद करने से कुछ भी न होगा। चाह को गिरा दो, चाह को हटा दो, तो इंद्रियों से संबंध धीरे— धीरे अपने आप छूट जाता है।

ध्यान रहे, आप आमतौर से यही सुनते रहे हैं कि इंद्रियों ने आपको बांधा है, इंद्रिया दुश्मन हैं। और कृष्ण बिलकुल उलटी बात कह रहे हैं। क्या कह रहे हैं कि आपने इंद्रियों को चाहा है; उनका उपयोग किया है। आपने ही उनको खींचा और आकर्षित किया है, इसलिए वे हैं। और जिस दिन आप निर्णय करेंगे, जिस दिन आपका रुख बदल जाएगा, आपकी धारा भीतर बहने लगेगी, उसी दिन इंद्रिया तिरोहित हो जाएंगी।

इंद्रियों को दोष मत दें। दोष किसी का भी नहीं है। आपका संकल्प है। आपकी चेतना ने इस शरीर में रहना चाहा है, इसलिए शरीर में है। जिस दिन नहीं रहना चाहेगी, उसी दिन शरीर छूट जाएगा।

अगर यह बात खयाल में आ जाए, तो इंद्रियों से जो दुश्मनी चलती है, वह बंद हो जाए। वह मूढ़तापूर्ण है। उसका कोई भी मूल्य नहीं है। और वह गलत है। उसके परिणाम भयानक हैं। क्योंकि आप इंद्रियों से लड़ने में शक्ति गंवा देते हैं।

और लड़ाई वहा अर्थहीन है। लड़ाई कहीं और होनी चाहिए। लड़ाई होनी चाहिए कि मेरा इंद्रियों को पकड़ने का रुख कम हो जाए।

मन सहित पांचों इंद्रियों को वही आकर्षण करता है। जैसे कि वायु गंध के स्थान से गंध को जैसे ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही देहादिको का स्वामी जीवात्मा भी जिस पहले शरीर को त्यागता है, उससे इन मन सहित इंद्रियों को ग्रहण करके फिर जिस शरीर को प्राप्त होता है, उसमें जाता है।

जब आप मरते हैं, तब भी आप सूक्ष्म इंद्रियों को अपने साथ ले जाते हैं। जैसे हवा फूलों की गंध को अपने साथ ले जाती है। फूल को तो नहीं ले जा सकती, फूल तो पीछे रह जाता है, लेकिन हवा का झोंका फूल की गंध को अपने साथ ले जाता है। आपकी चेतना शरीर को तो नहीं ले जा सकती, लेकिन शरीर को पकड़ने की जो वासना है, उसको गंध की तरह अपने साथ ले जाती है।

उसी वासना के आधार पर, उसको हिंदुओं ने सूक्ष्म इंद्रियां कहा है। आंख स्थूल इंद्रिय है; देखने की वासना सूक्ष्म इंद्रिय है। जीभ स्थूल इंद्रिय है; स्वाद की आकांक्षा सूक्ष्म इंद्रिय है। फूल तो पड़े रह जाते हैं।

आप जानकर चकित होंगे कि हिंदू मरे हुए आदमी के शरीर की हड्डियां जब मरघट से उठाकर लाते हैं, तो उनको फूल कहते हैं। बिलकुल प्यारा शब्द है।

फूल पड़े रह जाते हैं, लेकिन गंध आपके साथ चली जाती है। और वह जो गंध आपके साथ चली जाती है, वह नए जन्मों की तलाश करती है। वह नए शरीर खोजती है, नए गर्भ खोजती है। और जैसी आपकी वासना होती है, वैसा गर्भ आपको उपलब्ध हो जाता है।

जो आप होना चाहते हैं, जो आप होना चाहने की कामना इकट्ठी करते रहे हैं, वही संगृहीभूत हो जाती है, वही क्रिस्टलाइज हो जाती है। नई देह का निर्माण... आप नई देह को पकड़ लेते हैं।

यह तब तक चलता रहेगा, जब तक हवा गंध को ले जाती रहेगी। यह उस दिन बंद हो जाएगा, जिस दिन हवा फूल को ही नहीं छोड़ेगी, गंध को भी छोड़ देगी। हवा खाली उड़ जाएगी।

बुद्ध ऐसे ही उड़ते हैं। महावीर ऐसे ही उड़ते हैं। फूल भी छोड़ जाते हैं, गंध भी छोड़ जाते हैं। फिर कोई देह उपलब्ध नहीं होती, फिर कोई गर्भ उपलब्ध नहीं होता। फिर किसी शरीर में प्रवेश का उपाय नहीं रह जाता। प्रवेश का उपाय आपको साथ लेकर चलना पड़ता है।

और उस शरीर में स्थित हुआ यह जीवात्मा श्रोत्र, चक्षु और त्वचा को तथा रसना, घ्राण और मन को आश्रय करके अर्थात इन सबके सहारे से ही विषयों का सेवन करता है।

फिर यात्रा शुरू हो जाती है। फिर वही भोग शुरू हो जाता है। फूल बदल जाते हैं, गंध की यात्रा चलती रहती है। इंद्रियां बदल जाती हैं, वासना की यात्रा चलती रहती है।

इंद्रियों को छोड़ना नहीं है, वासनाओं को छोड़ देना है। इंद्रियां अपने से छूट जाती हैं। लेकिन हमें इंद्रियां छोड़ना आसान मालूम पड़ता है। कोई भोजन छोड़ देता है, कोई भोजन में नमक छोड़ देता है, कोई भोजन में घी छोड़ देता है, कोई भोजन में शक्कर छोड़ देता है, कोई आंखें नीची करके चलने लगता है, कोई स्त्री के स्पर्श से भयभीत हो जाता है; कोई कीमती वस्त्र का स्पर्श नहीं करता। यह सब इंद्रियों का छोड़ना है।

यह वैसे ही है, जैसे कोई जीवन से ऊबा हुआ आदमी आत्महत्या कर ले। और आत्महत्या से जीवन समाप्त नहीं होता; सिर्फ देह बदलती है। मरे नहीं कि नया शरीर ग्रहण हो जाएगा। और आत्महत्या करने वाले को और भी विकृत देह के

उपलब्ध होने की संभावना है। क्योंकि जिसने अपने को नष्ट करना चाहा, उसका चित्त विकृत अवस्था में है। और इस विकृति की छाप उसके ऊपर रहेगी, आत्महत्या की।

आपने अपने को आग लगाकर जला लिया। तो एक क्षण में तो नहीं जल जाएंगे। जलने के पहले सोचेंगे, विचारेंगे, सब विकृति भीतर इकट्ठी होगी। फिर आग लगाएंगे। फिर तड़पेंगे। फिर उस तड़पती हुई आग में बचना भी चाहेंगे, और बच भी न सकेंगे। पुकारेंगे, चीखेंगे, सोचेंगे कि भूल हो गई; बड़ा विषाद उत्पन्न होगा, बड़ा संताप, बड़ी पीड़ा होगी। और उस पीड़ा में मरेंगे।

इस पीड़ा की छाप, ये कुंठित वासनाएं, ये जलती हुई आग की लपटें, सब की गंध आपके साथ चली जाएगी। गंध तो जाएगी ही, दुर्गंध भी जाएगी, उत्तप्तता भी जाएगी। और नया गर्भ आप लेंगे, वह गर्भ भी विकृत, उत्तप्त होगा। उसमें भी आप अपंग पैदा होंगे, अंधे पैदा होंगे, टूटे—फूटे पैदा होंगे, खंडहर की तरह पैदा होंगे। क्योंकि खंडहर करने की जो चेष्टा आपने की, उसका संस्कार अपने साथ ले आए।

लेकिन यह तो हमारी समझ में आ जाता है कि इस तरह कोई अपने को आत्मघात करे तो पाप है, बुरा है और इसके दुष्परिणाम होंगे। लेकिन छोटी—छोटी आत्महत्याएं लोग करते हैं, वे हमारी समझ में नहीं आती हैं।

एक आदमी आंखें बंद करके बैठ जाता है। वह एक बटे पांच आत्महत्या हुई, क्योंकि पांच इंद्रियां हैं। एक आदमी ने पांचों को जला लिया, और एक आंख बंद करके बैठ गया।

सूरदास की हमने कथा सुनी है। अगर सूरदास ढंग के आदमी रहे हों, तो कथा झूठी होनी चाहिए। अगर कथा सच्ची हो, तो सूरदास ढंग के आदमी नहीं हो सकते। कथा है कि एक सुंदर युवती को देखकर उन्होंने अपनी आंखें फोड़ लीं।

यह तर्क तो समझ में आता है। इस तरह के बहुत सूरदास हैं। लेकिन सुंदर स्त्री की जो वासना उठती है, वह सुंदर स्त्री से नहीं उठ रही है, वह मेरे भीतर से उठ रही है। वह मेरी आंखों से भी नहीं उठ रही। आंखों से मेरे भीतर से आ रही है, आंखों से गुजर रही है। उस सुंदर स्त्री को शायद पता भी न हो कि कोई उसके पीछे सूरदास हो गया। और इन आंखों का कोई कसूर भी न था। आंखें तो वहीं गईं, जहां मैं ले जाना चाहता था। आंखों ने वही देखा, जो मैं देखना चाहता था। आंखों ने वही चाहा, जो मेरी चाह थी। आंखें मेरा अनुसरण कर रही थी। और मैंने आंखें फोड़ दीं।

यह आत्महत्या हुई, एक बटा पांच। इस तरह की आत्महत्या करने वाले को हम साधु कहते हैं। मगर यह भी विकृति है। और इस तरह की आत्महत्या करने वाला भी दुर्गति को उपलब्ध होता है। सवाल इंद्रियों को नष्ट करने का है ही नहीं, सवाल इंद्रियों से मुक्त होने का है। और इंद्रियों ने आपको नहीं बांधा है, आपने उनको बांधा है। इसलिए इंद्रियों का कहीं भी कोई कसूर नहीं है। आपका भी कोई कसूर नहीं है। अगर आप चाहते हैं यही, तो कोई कसूर नहीं है। पर इसे होशपूर्वक होने दें। फिर इसमें प्रसन्न हों। फिर वैराग्य की कामना न करें।

राग की कामना कर रहे हैं और वैराग्य के सवाल उठाते हैं, तब आप दुविधा में पड़ जाते हैं।

रोज मेरे पास लोग आते हैं, जिनका कष्ट एक ही है, रण और वैराग्य की दुविधा। राग तो उनके जीवन का रस है और किन्हीं सिरफिरों की बातें सुनकर वैराग्य उनको पकड़ गया है। तो वैराग्य भी उनके सिर में घूम रहा है। और राग उनकी अवस्था है। अब इन दो झंडों के नीचे उनकी यात्रा चल रही है। इससे वे बड़े कष्ट चुनाव है। और अगर इस गुलामी को भी मैंने चुना है, तो जिस क्षण में हैं और खंडित हो गए हैं, टूट गए हैं, स्प्लिट। दो आदमी हैं मैं चाहूं उसी क्षण तोड़ सकता हूं। यह ध्यान आते ही रुख बदल उनके भीतर। एक राग की तरफ खींचता है, एक वैराग्य की तरफ जा सकता है।

खींचता है। इसलिए एक क्षण में समाधि लग सकती है, और एक क्षण में इस संताप से कोई आत्म—उपलब्धि होने वाली नहीं है। वैराग्य और राग साथ—साथ नहीं जी सकते हैं। जब तक राग है, तब तक वैराग्य को पकड भी नहीं सकते आप, सिर्फ सोच सकते हैं शब्दों में। शब्दों में सोचने का कोई अर्थ नहीं है, वह निष्प्राण है।

मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी में कुछ खटापटी हो गई, बोलचाल बंद हो गया, जैसा पति—पत्नी में अक्सर हो जाता है। ऐसे तो बोलचाल चलता है, तब भी बंद ही रहता है। लेकिन कभी—कभी बिलकुल ही बंद हो जाता है।

मुल्ला की पत्नी को सुबह कहीं जाना था जल्दी, सर्दी के दिन थे। तो वह कैसे पति को कहे? और जब भी बोलचाल बंद होता है, तो पति को ही शुरू करना पड़ता है। पत्नी कभी शुरू नहीं करती। वह स्त्री का स्वभाव नहीं है, पहल करने का, इनीशिएटिव लेने का।

तो पत्नी बड़ी मुश्किल में पड़ी। सर्दी के दिन हैं, सुबह जल्दी उठना है। तो उसने एक कागज पर लिखकर नसरुद्दीन को दिया कि मुल्ला, सुबह पांच बजे मुझे उठा देना। नसरुद्दीन ने चिट्ठी खीसे में रख ली।

सुबह जब पत्नी की नींद खुली, तो वह चकित हुई; सूरज उग चुका था और कोई आठ बज रहे थे। कुछ कह तो सकती नहीं नसरुद्दीन से, क्योंकि बोलचाल बंद है। आस—पास देखा; एक चिट रखी थी उसके बिस्तर पर, कि देवी जी, पांच बज गए हैं, उठिए।

बस, आपका वैराग्य ऐसा कागजी हो सकता है। उससे आप उठेंगे नहीं, सोए ही रहेंगे राग में और वैराग्य की चिट्ठियां आपके आस—पास तैरती रहेंगी। शास्त्र से आया हुआ वैराग्य कागजी होगा।

अपने राग को ठीक से समझें। और यह भी समझें कि यह मेरा संकल्प है। यह मैंने ही तय किया है, चाहे अनंत जन्मों पहले तय किया हो। यह मेरा ही निर्णय है कि मैं शरीर की यात्रा पर जाता हूं; इस संसार के सागर में उतरता हूं; इस संसार के वृक्ष में डूबता हूं; यह मेरा निर्णय है। मैं नियंता हूं। जिस दिन मैं यह निर्णय बदलूंगा, उसी दिन धारा बदल जाएगी। कोई मुझे ले जा नहीं रहा है।

यह हिंदू विचार अनूठा है। कोई मुझे ले जा नहीं रहा है, मैं मालिक हूं; इस गुलामी में भी मैं मालिक हूं। मैं जा रहा हूं यह मेरा बोध उत्पन्न हो सकता है। बुद्ध होने के लिए अनंत जन्मों की जरूरत नहीं है। एक क्षण में भी घटना घट सकती है।

कृष्ण यही अर्जुन को कह रहे हैं कि मेरा ही अंश तेरे भीतर है, सबके भीतर है। उसी अंश ने इंद्रियों को पकडा है। और वही अंश उन इंद्रियों की गंध को ले जाता है नई यात्राओं पर। जिस क्षण तू जान लेगा कि तेरा संकल्प ही तेरी यात्रा है, उस क्षण तू चाहे तो यात्रा रुक सकती है। और अगर तू यात्रा करना चाहे, तो कर सकता है। लेकिन तब यात्रा खेल होगी; तब यात्रा लीला होगी। क्योंकि तू ही कर रहा है; कोई करवा नहीं रहा है। तेरी ही मौज है।

इस संबंध में यह बड़ी क्रांतिकारी बात है। क्योंकि ईसाई सोचते हैं कि ईश्वर ने दंड दिया आदमी को, इसलिए संसार है। अदम ने भूल की, पाप किया, गुनाह किया, तो निष्कासित किया अदम को। मुसलमान भी वैसा ही सोचते हैं। जैन सोचते हैं कि आदमी ने कोई पाप किया, कोई कर्म—बंध किया, उसकी वजह से भटक रहा है। बुद्ध भी ऐसा ही सोचते हैं।

हिंदुओं का सोचना बहुत अनूठा है। हिंदू चितना यह है कि यह तुम्हारा संकल्प है। न तुम्हारा पाप है, न किसी ने तुम्हें दंड दिया है, न कोई दंड देने वाला बैठा है। और पाप तुम करोगे कैसे? कभी तो तुमने शुरुआत की होगी! कभी तो पहले दिन तुमने किया होगा बिना किसी पिछले कर्म के! आज हो सकता है कि मैं जो कर रहा हूं—पिछले कर्मों के कारण, पिछले जन्म में और पिछले कर्मों के कारण। लेकिन प्रथम क्षण में तो बिना किसी कर्म के मैंने कुछ किया होगा। वह मेरा संकल्प रहा होगा। वह मैंने चाहा होगा।

अगर यह मेरी चाह से ही संसार का वृक्ष है, तो मेरी चाह से ही समाप्त हो जा सकता है। राग संसार में उतरने का संकल्प है, वैराग्य संसार से पार होने का संकल्प है।

गीता दर्शन–(भाग–7)
अध्याय—15 (प्रवचन—चौथा) — समर्पण की छलांग

सूत्र—

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुज्जानं वा गुणान्यितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचमुषः ।। 10 ।।
यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यज्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यक्यधेतसः ।। 11 ।।
परंतु शरीर छोड़कर जाते हुए को अथवा शरीर में स्थित हुए को और विषयों को भोगते हुए को अथवा तीनों गुणों से युक्त हुए को भी ज्ञानीजन नहीं जानते है केवल ज्ञानरूप नेत्रों वाले ज्ञानीजन ही तत्व से जानते हैं।

क्योंकि योगीजन भी अपने हृदय में स्थित हुए हस आत्मा को यत्न करते हुए ही तत्व से जानते हैं और जिन्होंने अपने अंतःकरण को शुद्ध नहीं किया है ऐसे अज्ञानीजन तो यत्न करते हुए भी हम आत्मा को नहीं जानते हैं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्न :
किसे समर्पण करें? किसे समर्पण करना चाहिए, इसकी कैसे तसल्ली हो? और तब तक क्या जारी रखें?
तसल्ली कभी भी न होगी। क्योंकि जो मन तसल्ली मांगता है, तृप्त होना उसका स्वभाव नहीं। वह भूल—चूक खोज ही लेगा।

आप बुद्ध के पास से भी गुजरे हैं, कृष्ण के पास से भी, महावीर के पास से भी। आप पहली दफा पृथ्वी पर नहीं हैं। तसल्ली कोई आपको दे नहीं पाया। अगर किसी ने भी तसल्ली दी होती, तो आप यहां होते नहीं।

भूलें आपने सब में खोज ली हैं। इसलिए नहीं कि भूलें थीं। इसलिए कि भूल खोजने में आप पारंगत हैं, कुशल हैं। जहां भूल न हो, वहा भी आप देख ले सकते हैं। फिर व्याख्या आपके ऊपर निर्भर है। तथ्य तो केवल उन्हें दिखाई पड़ते हैं, जिनका मन खो गया। आप तो तथ्य की व्याख्या करते हैं। और आपको वही दिखाई पड़ता है, जो आप देखना चाहते हैं, जो आप देख सकते हैं।

मेरे एक मित्र हाईस्कूल में ड्राइंग के शिक्षक थे। किसी कारण से उनको जेल हो गई। जब वे वापस लौटे और मैं गांव गया, तो मैंने उनसे पूछा कि जेल का जीवन कैसा रहा? उन्होंने कहा, और तो सब ठीक था, लेकिन जेल की मेरी जो कोठरी थी, उसके कोने नब्बे डिग्री के नहीं थे।

ड्राइंग का शिक्षक! उन्हें बड़ी तकलीफ रही होगी। वे जो दीवार के कोने थे, नब्बे डिग्री के नहीं थे!

आप पर निर्भर होता है, आप क्या देखेंगे। आप पर निर्भर है, आप कैसी व्याख्या करेंगे।

'महावीर के पास से आप गुजरें, हो सकता है उनका नग्न खड़ा होना आपको कठिनाई में डाल दे। शायद आपको लगे कि नग्न खड़ा आदमी भला कैसे हो सकता है? भले आदमी तो सदा अपने को वस्त्र से ढाके हुए हैं। इस पर भरोसा न आएगा, तसल्ली न आएगी।

जीसस के पास से आप गुजरें, और यह जीसस दावा करता है कि मैं परमात्मा का पुत्र हूं। आपके अहंकार को चोट लगेगी कि आपके अतिरिक्त और कोई कैसे परमात्मा का पुत्र होने का दावा कर सकता है! जरूर यह धोखेबाज है, बेईमान है। और फिर जब जीसस को सूली लगेगी, तब भी आप व्याख्या करेंगे। आप कहेंगे, न मालूम किन कर्मों का फल भोग रहा है यह आदमी! और अगर सच में ईश्वर का पुत्र है, तो अब सूली पर चमत्कार दिखाना चाहिए। कोई चमत्कार नहीं हुआ।

मोहम्मद के पास से आप गुजरेंगे, तो भी अपनी व्याख्या ही आप करेंगे। मोहम्मद ने नौ स्त्रियों से शादी कर ली थी। तसल्ली आपको न होगी। आप अपने को ही बेहतर समझेंगे, कम से, एक से ही निबटारा कर रहे हैं। यह आदमी नौ स्त्रियों से शादी कर लिया है। महाकामी मालूम पड़ता है!

तसल्ली आपको कोई भी न दे सकेगा। कृष्ण तो आपको बिलकुल तसल्ली न दे सकेंगे। आप में से एक भी तसल्ली उनके द्वारा नहीं पा सकेगा। इतनी सखियां हैं! इतना राग—रंग है! नाच है, युद्ध है, धोखाधड़ी है, बेईमानी है, झूठ बोलना है। सब उनमें है। अगर आप तसल्ली की तलाश में हैं, तो आपके समर्पण का कोई उपाय नहीं है। सच तो यह है कि तसल्ली की खोज समर्पण से बचने का ढंग है। जिन्हें समर्पण करना है, वे पत्थर को भी समर्पण कर सकते हैं।

और समझ लेने की बात यह है कि वह आदमी समर्पण के योग्य था या नहीं, यह बात ही व्यर्थ है। आपने समर्पण किया, आपको फल मिल जाएगा। वह आदमी गलत भी रहा हो, वह आदमी ठीक न भी रहा हो, योग्य भी नहीं था कि उसके चरणों में आप झुकें। लेकिन उस आदमी का सवाल भी नहीं है। आप झुके, आप झुक सके, आप बदल जाएंगे। और अगर समर्पण की तलाश स्वयं को बदलने के लिए है, तो तसल्ली की बात ही मत सोचो।

फिर एक और बात समझ लेने की है। अगर कोई व्यक्ति सच में ही आपको पूरी तसल्ली दे दे, तो आपके झुकने का अर्थ क्या रह जाएगा? अगर परमात्मा आपके सामने खड़ा हो और सब भांति आपको तसल्ली हो जाए, तब आपका सिर झुके, तो आपका अहंकार नहीं झुक रहा है। अगर सब तरह तसल्ली ही हो गई, तो सिर को झुकना ही पड़ रहा है, इसमें गुण क्या है? इसका मूल्य क्या है? इससे कोई आत्मक्रांति घटित न होगी।

इसलिए बहुत—से संत तो इस भांति जीते हैं, ताकि आपको तसल्ली न हो सके। उनके पूरे जीवन की व्यवस्था यह है कि आपको तसल्ली न होने देंगे।

गुरजिएफ के पास एक महिला थी, अलेक्जेंड्रा डि साल्ज़मन। एक बड़ी संगीतज्ञ की पत्नी थी। और गुरजिएफ की आदत थी कि जब भी कोई व्यक्ति उसके पास आए, तो पहले वह उससे कहता था, सारा रुपया—पैसा, जेवर, जायदाद, जो भी हो, मुझे दे दो। कई तो इसीलिए भाग जाते थे कि हम यहां धर्म की तलाश में आए, और यह आदमी सारा धन, जेवर पहले मांगता है!

यह डि साल्ज़मन और उसकी पत्नी बड़े भक्त थे। और जब गुरजिएफ ने उनसे कहा कि तुम अपना सब जेवर पहले मेरे पास छोड़ दो, तुम खाली हाथ हो जाओ, क्योंकि तब ही मैं तुम्हें भर सकूंगा। तो साल्ज़मन, पति तो राजी हो गया। लेकिन जैसा स्त्रियों का मन होता है, साल्ज़मन की पत्नी का मोह अपने कुछ हीरे—जवाहरातों में था। बड़े परिवार की महिला थी। एक हीरे में तो उसका बहुत ही लगाव था।

तो उसने अपने पति को कहा कि मैं क्या करूं? उसके पति ने कहा, तेरे लिए दो ही उपाय हैं। या तो तू सब दे दे। वह एक हीरा नहीं बचाने देंगे। और या कुछ भी मत दे। लेकिन तब तू निर्णय कर ले। क्योंकि मैं तो सब छोड़कर उसके चरणों में जा रहा हूं। अगर तू गुरजिएफ को छोड़ती है, तो मुझे भी छोड़ दे।

उसकी पत्नी ने हिम्मत की। अपना हीरा, अपने सब जवाहरात, अपने सब गहने—लाखों रुपए के थे—वे सब एक पोटली में बांधे और गुरजिएफ के चरणों में जाकर रख दिए। दूसरे दिन गुरजिएफ ने बुलाया और पूरी पोटली उसे वापस कर दी।

कोई पंद्रह दिन बाद एक दूसरी महिला आई और गुरजिएफ ने उससे भी कहा कि तू सारे अपने जेवर मुझे दे दे। उसने साल्ज़मन की पत्नी को पूछा कि क्या करना चाहिए? साल्ज़मन की पत्नी ने कहा, मैं नहीं जानती। मैंने दिए थे, वे मुझे वापस मिल गए। तो उसने सोचा, जब वापस ही मिल जाना है, तो डरना क्या? वह गुरजिएफ को दे आई। उसने कभी वापस न किए।

अब यह जो गुरजिएफ है, इसे कोई प्रयोजन हीरे और जवाहरात से नहीं है; लेकिन उस मन से तो प्रयोजन है, जो पकड़ता है, छोड नहीं सकता। जो छोड़ सकता है, उसके वापस लौटाए जा सकते हैं। जो छोड नहीं सकता, उसके वापस लौटाने असंभव हैं।

और गुरजिएफ यहां से पैसा लेता और दूसरी जगह बांट देता। एक से मांगता और दूसरे को दे देता। उसके व्यवहार से लगेगा कि पैसे पर उसकी पकड़ है।

और गुरजिएफ ने अपने शिष्यों को कहा है कि मैं सब भांति अपने में अविश्वास पैदा करवाने की कोशिश करवाता हूं। और उसके बाद भी अगर कोई विश्वास कर ले, तो समर्पण है; तो उसका अहंकार उसी वक्त खो जाता है।

इसलिए जिनको आप साधारणत: संत पुरुष समझते हैं, जो सब भांति आपके मापदंड में साधु हैं, उनके पास आपके जीवन में कोई क्रांति कभी घटित नहीं होने वाली। आप सब भांति कसौटी पर कसकर उनको समर्पण करते हैं। समर्पण आप करते ही नहीं। क्योंकि समर्पण तो वही कर सकता है, जो जानता है, मेरी योग्यता क्या कि मैं कसौटी पर कसूं!

जो आपकी कसौटी पर खरा उतरा और उस पर आपने समर्पण किया, तो आपने समर्पण किया ही नहीं, आपकी कसौटी जिंदा है। यह आदमी आपसे छोटा है। आपने सब भांति इसे परख लिया। और आपका मन राजी हो गया कि बिलकुल ठीक, तब आपने समर्पण किया। समर्पण की कोई क्रांति घटित नहीं होगी।

समर्पण की क्रांति तो तब ही घटित होती है, जब मन डांवाडोल है, जब मन डरता है, जब मन भरोसा भी नहीं कर पाता है। और जब अहंकार सब तरह के सुझाव देता है कि भाग जाओ, हट जाओ, तब भी आप साहस करते हैं और छलांग लगाते हैं। उसी छलांग में अहंकार की मृत्यु हो जाती है। पक्के भरोसे के साथ, तसल्ली के साथ जब आप समर्पण करते हैं, तो समर्पण झूठा है। समर्पण है ही नहीं। वहा कोई छलांग ही नहीं है।

आपने सब भांति परख कर ली कि रास्ता साफ—सुथरा है; यहां कोई गड्ढे नहीं हैं। और यहां कोई छलांग का खतरा नहीं है; यहां किसी खाई में गिर जाने का डर नहीं है। रास्ता है पक्का पटा हुआ, हाई—वे है। उस पर आप चल रहे हैं।

वे ही संत पुरुष आपके समर्पण में सफल हो पाते हैं, आपको समर्पण करवाने में, जो आपकी कसौटी पर बंधने को राजी नहीं हैं। लेकिन एक बड़े मजे की घटना घटती है, कि जैसे ही वैसा संत पुरुष चल बसता है, उसके जीवन का ढंग उसके भक्तों के लिए आगे आने वाले दिनों में फिर कसौटी बन जाता है।

महावीर नग्न खड़े हैं। यह नग्नता उस वक्त अड़चन की बात थी। और जिन्होंने इस नंगे आदमी को समर्पण किया, वे क्रांतिकारी लोग थे। उन्होंने बड़ी हिम्मत जुटाई होगी। लेकिन उसके बाद, महावीर की मृत्यु के बाद, उन क्रांति पुरुष, जो उनके भक्त बने थे, उनके बच्चे और बेटे, उनकी कोई क्रांति नहीं है। उनको अगर आप बुद्ध के पास ले जाएं, तो वे देखते हैं और सोचते हैं कि यह आदमी कपड़े पहने हुए है, इसलिए संत नहीं हो सकता। इसलिए उनका समर्पण बुद्ध के लिए नहीं होगा।

इसलिए अगर जैन को आप राम के मंदिर में ले जाएं, तो सिर नहीं झुका सकता। क्योंकि यह कैसा भगवान, जो गहनों से सजा हुआ खड़ा है! और यह कैसा भगवान, जिसकी सीता पास में है! यह असंभव है। तसल्ली नहीं होती है।

इसलिए जैन राम को भगवान नहीं मान सकता है। कोई उपाय नहीं उसके मन में मानने का। उसकी अपनी कसौटी है। और कसौटी उसने महावीर से ले ली है। लेकिन महावीर खुद अत्यंत क्रांतिकारी व्यक्ति थे। और जो लोग उनसे राजी हुए थे, उन्होंने समर्पण किया था।

इसलिए हर बुद्ध पुरुष के पास समर्पित लोग इकट्ठे होते हैं, लेकिन उसकी मृत्यु के बाद परंपरा बन जाती है, लीक बन जाती है। फिर लीक से लोग चलते चले जाते हैं। फिर सबके पास अपनी धारणाएं, मापदंड होते हैं।

आपका कोई मापदंड होगा, इसलिए पूछते हैं, तसल्ली कैसे करें? क्या है आपके पास मापदंड? कोई यंत्र नहीं है, जिससे जाना जा सके कि कौन व्यक्ति जाग गया, कौन प्रबुद्ध हुआ, किसका शान प्रज्वलित हुआ। कौन हो गया कृष्ण, कौन हो गया क्राइस्ट, कोई जांचने का उपाय नहीं है, कोई व्यवहार की कसौटी नहीं है। क्योंकि दुनिया में सैकड़ों बुद्ध पुरुष हुए हैं, सबका व्यवहार अलग—अलग है, सबकी निजता है, सबका व्यक्तित्व है।

हम सोच भी नहीं सकते कि बुद्ध नाराज हों। लेकिन क्राइस्ट नाराज होते हैं। तो जिसने बुद्ध को कसौटी मान लिया, वह क्राइस्ट को नाराज देखकर समझेगा कि यह आदमी योग्य नहीं है, इसको अभी ज्ञान नहीं हुआ।

क्राइस्ट इतने नाराज हो गए कि उन्होंने अपना कोड़ा हाथ में रूप। लिया, और यहूदियों के मंदिर में प्रवेश कर गए। और उन्हों। पुरोहितों को चोट मारी और जो ब्याज लेने वाले दुकानदार वहां बैर! थे, उनके तख्ते उलट दिए, और उनको खदेड़कर बाहर कर दिया। जो बुद्ध को मानता है आधार, वह कहेगा, यह आदम। क्रांतिकारी हो सकता है; लेकिन अभी शांत नहीं हुआ है।

लेकिन जिसने क्राइस्ट को आधार माना है और उनके प्रेम में जो जीया है और जिसने उनको समर्पण किया है, वह बुद्ध को देखकर कहेगा, यह शांति निर्जीव है, यह आदमी नपुंसक है। जहां इतनी कठिनाई है समाज में, वहां यह चुपचाप वृक्ष के नीचे बैठा हुआ है! जहां इतनी पीड़ा, इतना दुख, इतनी दरिद्रता है, वहां इसकी शांति में कुछ भी क्रांति पैदा नहीं होती, तो इसकी शांति का कोई भी मूल्य नहीं है।

कैसे कसौटी खोजिएगा? क्या रास्ता है? महावीर लात मार देते हैं धन पर, जनक साम्राज्य में सिंहासन पर बैठे हैं। दोनों बुद्ध पुरुष हैं।

प्रत्येक बुद्ध पुरुष अनूठा है, इसलिए कोई कसौटी बनती नहीं। कोई सार निचोड़ा नहीं जा सकता है कि कैसे हम नापे! और नापने वाला कभी नहीं सोचता कि मैं कहां हूं? कैसे मैं नापूंगा?

किनारे पर आप खड़े हैं, और हिंद महासागर की गहराई को नापने की कोशिश कर रहे हैं! उस गहराई में उतरना पड़ेगा। जमीन पर आप बैठे हैं, और एवरेस्ट की ऊंचाई नापने की कोशिश कर रहे हैं! उस ऊंचाई पर चढ़ना पड़ेगा।

बुद्ध हुए बिना बुद्धों को पहचानने का कोई उपाय नहीं। तसल्ली कैसे होगी? तसल्ली कभी किसी को नहीं हुई है। अगर आप तसल्ली के लिए रुके हैं, तो सदा ही रुके रहेंगे।

हिम्मत करें। और जहां थोड़ा—सा भी आकर्षण मालूम होता हो, मत रुके कि जब सौ प्रतिशत तसल्ली होगी, तब छलांग लेंगे। वैसा कभी भी नहीं होगा। तो जहां मन आकर्षित होता हो और जिस व्यक्ति के द्वार से आपको किसी अज्ञात की हवा का हलका—सा झोंका भी लगता हो; जिसकी उपस्थिति में आपके भीतर ऊंचाइयों के द्वार खुलते हों; नए स्वप्न गाते हों, जिसकी मौजूदगी आपको बदलती हो; जिसके पास स्वाद आता हो किसी अनजान, अज्ञात का; वहा साहस करें और तसल्ली की फिक्र मत करें। गणित मत बिठाएं।

यह काम जोखम का है। इसलिए मैं अक्सर कहता हूं कि दुकानदार धर्म में असफल रहते हैं, जुआरी जीत जाते हैं। यह काम कोई हिसाब—किताब का नहीं है कि आप पूरा पक्का पता लगा लेंगे कि एक रुपया लगा रहे हैं, तो कितनी बचत होगी? कि नहीं होगी? यह दाव है। इसमें सब खो सकता है, सब मिल सकता है। इसमें छोटे हिसाब से नहीं चलेगा।

और जिंदगी बड़ी बेबूझ है, गणित की तरह नहीं है, पहेली की तरह है। यह पहेली की तरह जो जिंदगी है, इसमें अगर आप बहुत हिसाबी—किताबी हैं, तो धर्म आपके लिए नहीं है, फिर व्यवसाय आपके लिए है।

यह बिलकुल जोखम का काम है। यहां कोई पक्की गारंटी नहीं है कि आप किसी को समर्पण करेंगे, तो वह योग्य होगा ही। भूल हो सकती है। पर भूल से कोई खतरा नहीं है। क्योंकि समझने की बात यह है, जिसको आप समर्पण करते हैं, उसकी योग्यता से क्रांति घटित नहीं होती; समर्पण से क्रांति घटित होती है।

इसलिए एक वृक्ष के नीचे रखे हुए पत्थर को आप समर्पण कर दें और क्रांति घटित हो जाएगी। असली सवाल आपके झुकने, अपने को मिटाने का है। किसके बहाने मिटाया, यह बात गौण है। और मैं आपसे कहता हूं, ऐसा अक्सर हुआ है कि अज्ञानी गुरुओं के पास भी कई बार शिष्य ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं।

यह बिलकुल उलटा लगेगा, क्योंकि यह गणित नहीं समझ में आएगा। जब तक गुरु शानी न हो, तब तक कैसे शिष्य शान को उपलब्ध हो सकता है? शानी गुरुओं के पास भी शिष्य वर्षों रहे हैं और अज्ञानी रहे हैं!

इसलिए मैं कहता हूं; जीवन पहेली जैसा है। क्योंकि ज्ञानी गुरु के पास भी आप बैठे रहें बिना समर्पित, तो शानी गुरु कुछ भी नहीं कर सकता। उसकी आंखें आपके काम नहीं आ सकतीं, और न उसका हृदय आपके लिए धड़क सकता है, न उसकी अनुभूति आपकी अनुभूति बन सकती है। और अज्ञानी गुरु भी कभी काम आ सकता है, अगर आप समर्पण कर दें। क्योंकि समर्पण करना ही घटना है, गुरु तो सिर्फ बहाना है।

जैसे आप कमरे में आते हैं; कोट निकालते हैं; खूंटी पर टल देते हैं। खूंटी तो सिर्फ बहाना है। कोई भी खूंटी काम दे जाएगी। लाल रंग की है, कि हरे रंग की है, कि पीले रंग की है, कि बेरंग की है; कि छोटी है, कि बड़ी है, कि लकड़ी की है, कि लोहे की है, कि सोने की है; इसकी तसल्ली करने की बहुत जरूरत नहीं।

खूंटी है; कोट टांगा जा सकता है। कोट टैग जाएगा। कोट होना चाहिए टांगने को आपके पास।

समर्पण चाहिए, तैयारी चाहिए अपने को खोने और मिटाने की, तो कोई भी गुरु काम दे देगा।

मगर यह जो सवाल है, यह सबके मन में उठता है, कि जब तक तसल्ली न हो...। तो आप भटकेंगे। तसल्ली कभी भी न होगी। यह मन ऐसा है कि तसल्ली होने ही नहीं देगा। मन की सारी प्रक्रिया अविश्वास पैदा करवाने की है। इसे समझ लें।

मन का ढांचा संदेह जन्माने का है। जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं, ऐसे मन में संदेह लगते हैं। तो मन में कभी श्रद्धा तो लगती ही नहीं; वह उस वृक्ष के बीज में ही नहीं है। कोई व्यक्ति मन के द्वारा श्रद्धा को उपलब्ध नहीं होता, मन के द्वारा सिर्फ संदेह को उपलब्ध होता है। मन यानी संदेह।

तो जिस मन से आप खोजने जाएंगे, उसमें आपको संदेह मिलते चले जाएंगे। और जब संदेह आपको मिलेगा, तो कैसे समर्पण कर सकते हैं? समर्पण तो वे ही लोग कर सकते हैं, जो अपने मन से थक गए हैं।

तसल्ली के कारण नहीं किसी पर, अपने मन पर जिनकी श्रद्धा उठ गई है, जो अपने मन से ऊब गए हैं और परेशान हो गए हैं, और जिन्होंने मन के सब रास्ते टटोल लिए हैं; मन के साथ सब मार्गों पर चलकर देख लिया है, मन की सब बातें मान लीं और फिर भी कहीं कोई आनंद नहीं पाया; जो अपने मन से ऊब गए हैं, जो अपने मन से विषाद से भर गए; वे लोग समर्पण करते हैं।

मन को छोड़ना समर्पण है। क्योंकि मन को छोड़ा कि श्रद्धा का जन्म हुआ। जहां आपको कल संदेह दिखाई पड़ते थे, वहीं श्रद्धा दिखाई पड़ने लगेगी। जहां कल आपको तसल्ली पैदा नहीं होती थी, वहां अचानक तसल्ली हो जाएगी, ट्रस्ट हो जाएगा। एक गहरा भाव पैदा हो जाएगा और आप मार्ग पर चलना शुरू कर देंगे। कौन मांगता है तसल्ली? आप! अगर आप कहीं पहुंच गए हैं, तो तसल्ली की कोई जरूरत नहीं, समर्पण की कोई जरूरत नहीं। अगर कहीं नहीं पहुंचे हैं.......।

तो धार्मिक व्यक्ति और अधार्मिक व्यक्ति में एक ही फर्क है। अधार्मिक व्यक्ति सब पर संदेह करता है, अपने को छोड़कर। और धार्मिक व्यक्ति अपने पर संदेह करता है, सब को छोड़कर।

जो अपने पर संदेह करता है, उसको गुरु जल्दी मिल जाएगा, क्योंकि वह तसल्ली कर सकता है। जो दूसरे पर संदेह करता है, उसे गुरु कभी भी नहीं मिल सकता। क्योंकि वह कहीं भी जाए, अपने पर उसका भरोसा है, जिसने कहीं भी नहीं पहुंचाया है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन बहुत नाराज था; उछल—कूद रहा था, क्रोध में आगबबूला हो रहा था। उसके मित्र पंडित रामचरणदास उसके पास बैठे थे। वे उससे पूछ रहे थे कि नाराजगी क्या है? तो वह कह रहा था, मेरी पत्नी ने मुझे धोखा दिया! बेईमान है, दुश्चरित्र है। घर से निकाल देने योग्य है।

तो उसके मित्र ने पूछा कि आखिर क्या तुम्हारे पास प्रमाण है? किस आधार पर कहते हो कि पत्नी दुश्चरित्र है? किस आधार पर इतने नाराज और पागल हुए जा रहे हो?

नसरुद्दीन ने कहा, मेरे पास प्रमाण है। कल पूरी रात वह घर से गायब रही। और सुबह जब आई और मैंने पूछा, तो उसने मुझे धोखा दिया है। वह कहती है कि मैं अपनी सहेली तारा के घर पर रात रुक गई। यह बात सरासर झूठ है। तो पंडित रामचरणदास ने पूछा कि इसका तुम्हारे पास प्रमाण है कोई? तो उसने कहा, पूरा प्रमाण है। क्योंकि तारा के घर तो रातभर मैं रुका था।

मन पूरे समय दूसरे पर संदेह कर रहा है। मन अपने पर लौटता ही नहीं।

तो अगर आप इस मन को लेकर खोजने चले हैं, तो गुरु से आपका मिलना कभी भी नहीं हो सकता। अगर इस मन से थक गए हैं या न थके हों, तो और थोड़ी मेहनत करें, और थक जाएं। जब थक जाएं, तो गुरु से मिलना हो जाएगा।

और गुरु को खोजने कोई हिमालय जाने की जरूरत नहीं है। गुरु हो सकता है आपके घर में मौजूद हो। लेकिन आपका मन उससे संबंध न जुड्ने देगा।

आपका मन हट जाए, तो आंखें साफ हो जाएंगी, खोज सरल हो जाएगी। और शायद आपको खोजने भी न जाना पड़े। वह व्यक्ति आपको खोजता आ जाए। लेकिन तसल्ली की खोज वाला मन कभी भी नहीं खोज पाता है।

और पूछा है, तब तक क्या करें?

तब तक इस मन के दुख जितने भोग सकें, भोगें। कोई और उपाय नहीं है। और जहां—जहां यह मन ले जाए और भटकाए, भटकें। इस मन से पूरी तरह थक जाना है। थक जाएं।

यह मन उसी तरह का है, जैसे एक छोटे बच्चे को कहें कि बैठ जाओ एक कोने में, शांत बैठो, हिलो—डुलो मत! तो बडी मुश्किल में हो जाता है बच्चा। क्योंकि सब शक्ति उसकी ऊर्जा भागती है।

वह कुछ करना चाहता है। उसको बिठा देना कष्टपूर्ण है। उसके। बिठाने का एक ही उपाय है कि पहले उससे कहो कि घर के दस चक्कर लगा। और जितनी तेजी से बन सके, उतनी तेजी से लगा। और जब वह थक जाए और हाथ—पैर जोड्ने लगे कि अब मैं नत। दौड़ सकता; अब बस! तब उससे कहो कि बैठ जा।

इस मन को पहले दौड़ा लें। यह आधा— आधा दौडा हुआ होगा। तो यह कहीं रुकने न देगा। जहां भी आप जाएंगे, यह आपके दौड़ के लिए कारण खोज लेगा। इसे दौड़ा ही लें अच्छी तरह।

जितना संदेह करना है, संदेह कर लें। जितने तर्क करने हैं, तर्क कर लें। जितना विचार करना है, विचार कर लें। कुनकुने नहीं, पूरे उबल जाएं। भाप बनने दें इसे। बड़ा कष्ट होगा, नर्क। :। जाएगा खड़ा।

यही अड़चन है। न तो समर्पण करते हैं कि सब शांत हो जाए; और न उबलते हैं पूरे कि सब तरह से भाप पैदा हो जाए। कुछ भी नहीं करते। बीच में कुनकुनाते रहते हैं। यह जो कुनकुनापन है, यह : आदमी का दुख है।

संदेह ही करना है, तो पूरा कर लें। पूरा संदेह भी श्रद्धा पर ले जाएगा। नर्क से गुजरना पड़ेगा। बडी पीड़ा होगी। लेकिन उस पीड़ा से गुजरकर एक बात हाथ में आ जाएगी कि यह मन सिवाय दुख के और कहीं भी नहीं ले जाता है। यह द्वार है दुख का। यह प्रतीति हो जाएगी, तो आप इस मन के द्वारा तसल्ली नहीं खोजेंगे। अल्प इस मन को हटा देंगे और सीधा संपर्क साधेंगे। फिर समर्पण आसान है।

जब तक समर्पण न होता हो, तसल्ली खोजने का मन जारी रहता हो, तब तक इसका दुख पूरी तरह भोगें। और धीमे — धीमे नहीं। होमियोपैथी के डोज मत लें। पूरा जहर इकट्ठा पी लें। या इस पार या उस पार। दो में से कहीं भी पार हो जाएं। बीच में मत उलझे रहें। तो मैं यहां देखता हूं, अनेक लोग थोडी तसल्ली भी करते है। थोड़ी नहीं भी करते हैं। यह उनकी स्थिति है, नपुंसकता की स्थिति है। इससे इंपोटेंस पैदा होती है। इससे कहीं जा नहीं सकते। मेरे पास कोई आता है और वह कहता है कि थोड़ा आप पर विश्वास आता है, थोड़ा नहीं भी आता।

मैं कहता हूं, दो में से तू कुछ भी चुन। यह थोड़ा विश्वास भी छोड़ दे, तो मुझसे छुटकारा हो। इस थोड़े विश्वास की वजह से तू मेरे से दूर भी नहीं जा सकता। अकारण समय खराब कर रहा है। और थोडा अविश्वास है, उसकी वजह से मेरे पास भी नहीं आ सकता। थोडा अविश्वास है, तो मुझसे संबंध भी नहीं बनता। और थोड़ा विश्वास है, तो मुझसे संबंध टूटता भी नहीं। यह बड़ी दुविधा की स्थिति है। मुझसे संबंध टूटे, तो किसी और से बन सके। हो सकता है, कहीं और विश्वास घटित हो जाए। वहां भी जाना नहीं हो पाता, क्योंकि थोड़ा विश्वास यहां है।

यह ऐसी हालत है, जैसे किसी वृक्ष की हम आधी जड़ें बाहर निकाल लें और आधी जमीन में रहने दें। तो न तो वृक्ष में फूल लगें, न फल आएं, न पत्तों में हरियाली रहे और न वृक्ष मरे।

कभी आप अस्पतालों में जाएं; हिंदुस्तान के अस्पतालों में भी अब वैसी हालत आती जाती है। यूरोप और अमेरिका में तो बहुत है। लोग सौ वर्ष के हो गए हैं, सवा सौ वर्ष के हो गए हैं, और लटके हैं अस्पतालों में। उनको मरने नहीं दिया जाता और जीने का उनका कोई उपाय नहीं रहा है। तो किसी को आक्सीजन दी जा रही है, किसी के हाथ—पैर उलटे बांधे हुए हैं, उनको दवाइयां पिलाई जाती हैं।

वे मुरदा जिंदा हैं। न तो मर सकते हैं, क्योंकि ये डाक्टर मरने न देंगे। और न जी सकते हैं, क्योंकि डाक्टरों के हाथ के बाहर है उनको जीवन देना। जीवन उनके भीतर से बह चुका है। पर मौत को भी नहीं आने दिया जा रहा है।

इस अधूरी अवस्था में लटके लोग पश्चिम में आवाज उठा रहे हैं अथनासिया की। वे कहते हैं कि हमें मरने का हक होना चाहिए। और जब हम लिखकर दे दें कि हम मरना चाहते हैं, तो हमें बचाने की कोशिश बंद हो जानी चाहिए। लेकिन अभी तक कोई राज्य इतनी हिम्मत नहीं कर पाता कि मरने का हक दे।

डाक्टर भी जानते हैं कि यह आदमी मर जाए तो अच्छा। लेकिन फिर भी उसे दवाइयां दिए जाते हैं जिंदा रखने के लिए; क्योंकि उनको उनके अंतःकरण की पीड़ा है। अगर हम दवा न दें और यह आदमी मरे, तो उनको जिंदगीभर लगेगा कि हमने मारा।

जो व्यक्ति थोड़ा—सा विश्वास करता है और थोड़ा—सा अविश्वास, वह अस्पतालों में लटके हुए इन व्यक्तियों की भांति हो जाता है, न जी सकता है, न मर सकता है; न दूर जा सकता है, न पास आ सकता है।

तो या तो छलांग लगा लें; या समझें कि यह खाई आपके लिए नहीं है। कहीं और कोई खाई होगी। तो इस खाई से हट जाएं।

निर्णायक होने की जरूरत है। अपना निर्णय लेने की जरूरत है। गलत निर्णय भी बुरा नहीं है, लेकिन अनिर्णय बुरा है। क्योंकि गलत निर्णय भी बल देता है। कुछ तो तय हुआ। उस तय होने के साथ आपके भीतर इंटीग्रेशन पैदा होता है, अखंडता आती है। लेकिन अनिर्णय, कुछ भी तय नहीं, इनडिसीसिवनेस, तो आप धीरे—धीरे भीतर बिखर जाते हैं। भीतर आत्मा संगृहीत नहीं हो पाती, खंड—खंड हो जाती है। यह खंडित स्थिति छोड़े।

तो जब तक, पहली तो बात, तसल्ली की खोज बंद कर दें। न बंद कर सकते हों, तो खोज को पूरा करें। समर्पण कर दें। न समर्पण होता हो, तो असमर्पण का पूरा दुख भोग लें। मध्य में मत रहें। मध्य से कोई कभी ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुआ है। छलांग केवल अति से ही लग सकती है।

दूसरा प्रश्न :
दूसरों के अनुभव काम नहीं आते, ऐसा आपने कहा। फिर आप जैसे पुरुषों के बोलने में सार्थकता क्या है कि जिसके लिए लोक प्रार्थना करता है?
दूसरों के अनुभव काम नहीं आते, इसका अर्थ है कि दूसरों के अनुभव आपके अनुभव नहीं बन सकते हैं, दूसरे की प्रतीति आपकी प्रतीति नहीं बन सकती है। लेकिन दूसरे का संपर्क संक्रामक हो सकता है। दूसरे की सन्निधि संक्रामक हो सकती है। अगर आप दूसरे के प्रति खुले हों, तो जैसे बीमारियां पकड़ सकती हैं आपको, वैसे ही स्वास्थ्य भी पकड़ सकता है।

अनुभव दूसरे के काम नहीं आते। अगर आप कृष्ण के पास हों, तो कृष्ण के अनुभव आपके अनुभव नहीं बन सकते। लेकिन कृष्ण की मौजूदगी में अगर आप समर्पित हों, तो आपके अपने जीवन का विकास शुरू हो जाता है। उस विकास में कभी अनुभव घटित होंगे। वे अनुभव कोई दूसरा आपको नहीं दे सकता, लेकिन दूसरे की मौजूदगी कैटेलिटिक एजेंट का काम कर सकती है। उससे स्फुरणा हो सकती है। वह प्रेरणा बन सकती है। उससे धक्का लग सकता है।

लेकिन उसके लिए जरूरी है कि आप खुले हों। आपका हृदय बंद न हो; आपके मस्तिष्क पक्षपात से न घिरे हों। आप राजी हों अनजान में जाने के लिए, अपरिचित में उतरने के लिए; जिसको आपने कभी नहीं जाना है, उस रास्ते पर किसी के पीछे चलने के लिए। अनहोना घटित हो सकता है। अनचाहा घटित हो सकता है। उस जोखम को उठाने की तैयारी भीतर हो।

इसीलिए तो हम अपने को बंद रखते हैं कि कहीं कोई जोखम न हो जाए।

एक मित्र मेरे पास आए। और उन्होंने मुझे कहा कि मैं शिविर में आने से डरता हूं कि कहीं कुछ सच में ही हो न जाए। बच्चे हैं, पत्नी है, घर—द्वार है। और अभी इन सबको बड़ा करना है, सम्हालना है। अभी संसार का दायित्व है, उसे पूरा निभाना है। डर लगता है कि कहीं जाएं और कहीं कुछ हो ही न जाए!

उनका डर ऐसे स्वाभाविक है। और ठीक भी है। मगर इस डर के कारण वे बंद हैं। तो मैंने उनसे कहा, मेरे पास भी क्यों आए हो? क्योंकि आना फिजूल है। यहां भी डर तो भीतर होगा ही। उस डर की आड़ से अगर तुम मुझसे मिलोगे, तो मिलन हो ही न पाएगा। वह डर भीतर बैठा है, कहीं कुछ हो न जाए। तो जब डर चला जाए, तब ही आना।

और जल्दी कुछ भी नहीं है। समय अनंत है। और इतने जन्म आपके हुए हैं; और इतने ही जन्म हो जाएंगे; कोई जल्दी नहीं है। मगर डर की दीवार अगर भीतर हो, तो फिर आप किसी के भी पास जाएं, जाने से कुछ न होगा। अकेली पार्थिव मौजूदगी कुछ भी नहीं कर सकती है। मेरा जो अनुभव है, वह मैं आपको दे नहीं सकता। लेकिन अगर आप खुले हों, अगर आप मेरे साथ बहने को राजी हों, तो आपके अनुभव घटने शुरू हो जाएंगे। वे आपके ही होंगे।

लेकिन मैं आपका हाथ पकड़कर कहीं ले चलूं, कहूं कि आओ मकान के बाहर सूरज निकला है, और फूल खिले हैं, और आकाश में बड़ी रंगीनी है! तो मैं आपका हाथ पकड़कर बाहर ले जा सकता हूं, लेकिन जब आप आंख खोलेंगे और सूरज को देखेंगे, तो वह अनुभव आपका ही होगा, वह मैं आपको नहीं दे सकता। इस कमरे में बैठा हुआ मैं आपको वह अनुभव नहीं दे सकता। मैंने कितना ही सूरज देखा हो, और कितने ही फूल खिले देखे हों, और कितना ही आकाश रंगीन हो, यहां बैठकर मैं आप से आकाश की बात कर सकता हूं, सूरज की बात कर सकता हूं? लेकिन अनुभव नहीं दे सकता।

शब्द अनुभव नहीं हैं। और अगर आप मेरे शब्दों से राजी हो जाएं, तो मैं आपका दुश्मन हूं। क्योंकि आप समझ लें कि शब्द सूरज सूरज है, आकाश शब्द आकाश है, तो फिर आप बाहर जाना, खोजना, आकाश की तलाश ही बंद कर देंगे। यहीं बैठे सब मिल गया।

लेकिन मैं यहां आपके भीतर प्यास जगा सकता हूं अनुभव नहीं दे सकता। या मेरी मौजूदगी को अगर आप देखें, तो प्यास जग सकती है। और अगर मेरे साथ दो कदम चलने को राजी हों, तो बाहर भी पहुंच सकते हैं। फिर जो आप देखेंगे, वह आपका ही अनुभव होगा।

अनुभव निजी है और कभी भी हस्तांतरित नहीं हो सकता। इसलिए मैंने कहा कि अनुभव, दूसरे के अनुभव काम नहीं आते हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि आप दूसरों से सीख नहीं सकते हैं। अनुभव नहीं सीख सकते, लेकिन कैसे वे अनुभव तक पहुंचे, वे सारी विधियां, वे सारे मार्ग आप सीख सकते हैं।

इसलिए बुद्ध पुरुष सिद्धात नहीं देते, केवल विधियां देते हैं। निष्पत्ति नहीं देते, केवल मार्ग देते हैं। क्या होगा वहां पहुंचकर, यह नहीं बताते, कैसे वहां पहुंच सकोगे, इतना ही बताते हैं।

बुद्ध ने कहा है, मैं मार्ग बताता हूं; चलना तुम्हें है, पहुंचना तुम्हें है, जानना तुम्हें है। मैं सिर्फ मार्ग बता सकता हूं।

जो उस मार्ग से गुजरे हैं, उस मार्ग की खबर आपको दे सकते हैं। उनके अनुभव काम नहीं आते, लेकिन उनकी मौजूदगी, उनका व्यक्तित्व, उनका प्रकाश, उनका मौन, अगर आप खुले हों, तो संक्रामक हो जाता है। जैसे मलेरिया पकड़ता है, वैसे ही बुद्धत्व भी पकड़ता है।

लेकिन मलेरिया के लिए हम खुले होते हैं, तैयार होते हैं। अभी यहां एक आदमी खांस दे, दस—पंद्रह आदमी खांसेंगे। उसके लिए हम तैयार हैं। रोग के लिए हम तैयार हैं! लेकिन अभी यहां एक आदमी शांत हो जाए, तो दस—पंद्रह आदमी शांत नहीं हो जाएंगे। दुख के प्रति हम संवेदनशील हैं। आनंद के प्रति ऐसी ही संवेदनशीलता का नाम समर्पण है।

तीसरा प्रश्न :
इस विराट विश्व के संदर्भ में अपनी तुच्छता का बोध आदमी में हीनता की ग्रंथि को मजबूत बनाकर उसे पंगु बना सकता है। और हीनता— भाव निरअहंकारिता नहीं है। कृपया बताएं कि हीनता से बचकर अहंकार—विसर्जन के लिए क्या किया जाए?
पहली बात, हीनता की ग्रंथि, इनफीरिआरिटी काप्लेक्स अहंकार का ही हिस्सा है। अहंकार के कारण ही हमें हीनता मालूम होती है।

यह जरा कठिन लगेगा। अगर आप में अहंकार न हो, तो आप में हीनता हो ही नहीं सकती। हीनता इसलिए मालूम होती है कि आप समझते तो अपने को बहुत बड़ा हैं और उतने बड़े आप अपने को पाते नहीं। जितना बड़ा आप अपने को समझते हैं, उतना बड़ा पाते नहीं हैं। वास्तविक जगत में आप पाते हैं, छोटे हैं। उससे हीनता पैदा होती है।

अहंकार जितना बड़ा होगा, उतनी ज्यादा हीनता मालूम होगी। अहंकार जितना कम होगा, हीनता उतनी ही कम होगी। अहंकार नहीं होगा, हीनता खो जाएगी। हीनता और अहंकार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

इसलिए जो आदमी विनम्र है, वह हीन नहीं होता। उसको हीनता पकड़ ही नहीं सकती। जो आदमी दंभी है, उसको ही हीनता पकड़ती है।

मेरे पास न मालूम कितनी बार तरह—तरह के लोग आते हैं। कोई आकर कहता है कि मेरा आत्म—विश्वास ज्यादा कैसे हो? मुझमें बडा आत्म—अविश्वास है, कोई आकर कहता है। कोई कहता है कि मुझमें हीनता की ग्रंथि है, तो यह कैसे मिटे? ठीक बीमारी को नहीं पकड पा रहे हैं वे, केवल लक्षण को पकड़ रहे हैं।

अगर आत्म—अविश्वास है, तो इसे स्वीकार कर लें कि यह मेरा हिस्सा हुआ। जैसे आपकी छ: फीट ऊंचाई है या पांच फीट ऊंचाई है, तो आप क्या करते हैं? स्वीकार कर लेते हैं कि मैं पांच फीट ऊंचा हूं।

लेकिन आप सोचते हैं कि छ: फीट होना था। कोई दूसरा छ: फीट है। तो फिर हीनता शुरू हुई। एक फीट आप कम हैं, अब इसको किसी तरह पूरा करना जरूरी है। तब आप पंजे के बल खड़े होकर चलना शुरू करेंगे। उससे कष्ट पाएंगे, उससे बड़ी पीड़ा होगी।

सारी दुनिया में स्त्रियां बड़ी एड़ी का जूता पहनती हैं। वह सिर्फ पुरुष की ऊंचाई पाने की चेष्टा है। उससे बड़ा कष्ट होता है, क्योंकि चलने में वह आरामदेह नहीं है। जितनी ऊंची एड़ी हो, उतनी ही कष्टपूर्ण हो जाएगी। लेकिन फिर धीरे— धीरे उसी कष्ट की आदत हो जाती है। फिर हड्डियां वैसी ही जकड़ जाती हैं; फिर सीधे पैर से जमीन पर चलना मुश्किल हो जाता है। लेकिन स्त्री के मन में थोड़ा—सा संकोच है। पुरुष से थोड़ी उसकी ऊंचाई कम है।

पूरब की स्त्रियों ने इतनी फिक्र नहीं की ऊंची एड़ी के जूतों की। क्योंकि उनमें अभी भी पुरुष के साथ बहुत प्रतिस्पर्धा नहीं है। लेकिन पश्चिम में भारी प्रतिस्पर्धा है।

दूसरा बड़ा है, उससे कष्ट शुरू होता है। लेकिन कष्ट की क्या बात है! आप छ: फीट के हैं, मैं पांच फीट का हूं। न तो एक फीट बड़े होने से कोई बड़ा होता है, न एक फीट छोटे होने से कोई छोटा होता है। कि आप बहुत अच्छा गा सकते हैं, मैं नहीं गा सकता हूं। तो अड़चन कहां खड़ी होती है!

यह सब मुझमें भी होना चाहिए। यह मेरा अहंकार मान नहीं सकता कि कुछ है, जो मुझमें कम है। फिर जीवन में अनुभव होता है, बहुत कम है। तो हीनता आती है, आत्म—अविश्वास आता है। फिर इससे दूर होने के लिए हम उपाय करते हैं और एड़ियों वाले जूते पहनते हैं, उनसे और कष्ट पैदा होता है, और सारा जीवन विकृत हो जाता है।

इन सारे रोगों से मुक्त होने का एक ही उपाय है, आप जैसे हैं, वैसे अपने को स्वीकार करें। आपके पास दो आंखें हैं, तो आपने स्वीकार किया। आंखों का रंग काला है या हरा है, तो आपने स्वीकार किया। किसी की नाक लंबी है, किसी की छोटी है, तो उसने स्वीकार किया। ये तथ्य हैं; उन्हें स्वीकार कर लें कि ऐसा मैं हूं। और जो मैं हूं इस मेरी स्थिति से क्या उपलब्धि हो सकती है, उसकी चेष्टा, उस पर सृजनात्मक श्रम।

लेकिन दूसरे से स्पर्धा हो, तो आप पागल हो जाएंगे। और करीब—करीब सारे लोग पागल हो गए हैं। स्पर्धा विक्षिप्तता लाती है। और ऐसा तो कभी भी नहीं होगा.....।

ऐसी हालत है करीब—करीब। मैं एक यात्रा पर था। एक मेरे मित्र खुद ही ड्राइव कर रहे थे। तो जैसे ही कोई गाड़ी उनको आगे दिखाई पड़ती रोड पर, वे अपनी गाड़ी तेज कर देते। कोई गाड़ी उनसे आगे कैसे हो सकती है! मैं थोड़ी देर तो देखता रहा कि जैसे ही उनको गाड़ी दिखाई पड़ती कोई आगे कि वे पगला जाते। वे गाड़ी तेज करके जब तक उसको पीछे न कर दें, तब तक उनको बेचैनी रहती।

मैंने उनसे पूछा कि क्या तुम सोचते हो इस रास्ते पर कभी ऐसी हालत आएगी कि आगे कोई गाड़ी न हो? तुम पगला जाओगे। रास्ते पर कोई न कोई गाड़ी आगे होगी ही।

तुम अपनी रफ्तार से चलो। तुम्हें अपनी मंजिल पर पहुंचना है, उसके हिसाब से चलो। मगर कोई भी गाड़ी आगे हो, तो उसे पार करने की क्या तकलीफ है?

कोई बहुत गहरी हीनता की ग्रंथि होगी कि मैं किसी दूसरे से पीछे कैसे रह सकता हूं! और ऐसा जीवन के रास्ते पर भी यही है। आप इसकी फिक्र में नहीं होते कि आपको कहां जाना है। इसकी भी कोई चिंता नहीं कि कहीं पहुंचना है। लेकिन कोई आपके आगे न हो! वह चाहे नरक जा रहा हो, तो भी आपको उसको पीछे करना है!

मैंने सुना है कि अमेरिका का एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक ओपेनहेमर अमेरिकी प्रेसिडेंट को सलाह दिया कि जल्दी करें, क्योंकि रूसी चांद पर पहुंचने में हमसे आगे हैं। शुरू में वे थे भी। तो ओपेनहेमर ने कहा अमेरिका के प्रेसिडेंट को कि हम जल्दी करें, नहीं तो वे चांद पर हमसे पहले पहुंच जाएंगे। प्रेसिडेंट ने ऐसे ही कहा कि लेट देम गो टु हेल—जाने दो उनको नरक, जाने दो उनको दोजख। ओपेनहेमर ने कहा कि अगर इस रफ्तार से गए, तो वहा भी वे हमसे पहले पहुंच जाएंगे। और यह बर्दाश्त नहीं किया जा सकता!

तो कौन कहां जा रहा है, यह बड़ा सवाल नहीं है आपको, आप से आगे भर न जा पाए।

आपकी जिंदगी में कई बार आपके रास्ते इसीलिए बदल गए कि संयोग से आगे एक आदमी मिल गया, जो कहीं और जा रहा था।

आपको खयाल में नहीं है। अगर आप विश्लेषण करेंगे, तो आपको साफ दिखाई पड़ेगा कि आप चले जा रहे थे और एक आदमी और अच्छी कार में चला जा रहा था, आपकी जिंदगी बदल गई। क्योंकि आपको उससे अच्छी कार चाहिए। आप चले जा रहे थे, किसी से मित्रता हो गई, जिसके पास आपसे बड़ा मकान था। अब आप मुश्किल में पड़ गए; आपके पास उससे बड़ा मकान होना चाहिए।

और आप भूल ही जाते हैं कि आप कहां जाना चाहते हैं? क्या होना चाहते हैं? यह अहंकार बर्दाश्त नहीं कर सकता कि कोई मुझसे आगे हो; इससे हीनता अनुभव होती है। और कोई न कोई आगे होगा। जीवन के रास्ते पर कभी किसी आदमी ने अनुभव नहीं किया कि मैं सबके आगे हूं।

नेपोलियन सब कुछ जीत ले, तो भी छोटी—छोटी चीजों में दुखी हो जाता था। एक दिन उसकी घड़ी बिगड़ गई, तो उसे सुधारने की कोशिश में उसने हाथ बढ़ाया। उसकी ऊंचाई ज्यादा नहीं थी, पांच ही फीट थी। तो उसका हाथ नहीं पहुंचा घडी तक, तो उसका जो अर्दली था, वह छ: फीट लंबा जवान था। उसने जल्दी से आकर ठीक कर दिया। नेपोलियन ने अपनी डायरी में लिखा है कि मुझे इतनी पीड़ा हुई कि जैसे मैं सारा संसार हार गया। अर्दली! और उसका हाथ पहुंच गया और मेरा नहीं पहुंचा!

आप थोड़ा सोचें, नेपोलियन की जगह आप भी होते, तो ऐसी ही पीड़ा होती। रोज यही पीड़ा हो रही है।

हीनता अनुभव होने लगती है, क्योंकि बडा अहंकार है। अगर नेपोलियन स्वीकार करता कि मैं पांच फीट का हूं; ठीक है। और यह छ: फीट का है। तो इसका हाथ पहुंचेगा, मेरा नहीं पहुंचा। यह तथ्य की बात है; इसमें अड़चन क्या है? और हाथ पहुंच जाने से कौन—सी ऊंचाई सिद्ध हो गई? तब फिर कोई हीनता नहीं है।

और जब हम निरंतर जोर देते हैं समर्पण के लिए, शून्य होने के लिए, तो हीनता पैदा करने के लिए नहीं, विनम्रता पैदा करने के लिए। और विनम्रता हीनता से बिलकुल उलटी बात है। क्योंकि विनम्रता तब पैदा होती है, जब अहंकार जाता है। और जब अहंकार जाता है, तो हीनता अपने आप चली जाती है, वह उसकी छाया है। आप विनम्र आदमी को तो कभी हीन कर ही नहीं सकते।

लाओत्से ने कहा है कि मुझे कभी कोई हरा नहीं पाया, क्योंकि मैं पहले से ही हारा हुआ हूं। और मेरा कभी कोई अपमान नहीं कर सका, क्योंकि मैंने कभी सम्मान चाहा नहीं।

कहा जाता है, लाओत्से किसी सभा में जाता—अगर वह यहां आता सुनने, तो वह बिलकुल अंत में, जहां जूते उतारे जाते हैं, वहा बैठता। क्योंकि वह कहता, वहां से कभी कोई उठा नहीं सकता। आप लाओत्से को हीन नहीं कर सकते। कोई उपाय नहीं है उसे हीन करने का। और ध्यान रखें, जो आदमी अंतिम बैठने में समर्थ है, उसके पास बड़ी आत्मा चाहिए। वह इतना आश्वस्त है अपने होने से कि अंतिम बैठने से अंतिम नहीं होता हूं।

और जो आदमी पहले बैठने की कोशिश कर रहा है, वह आश्वस्त नहीं है। वह डरा हुआ है। वह जानता है कि अगर मैं पहला बैठा नहीं, तो लोग समझेंगे कि मैं पहला नहीं हूं। उसे अपने पर भरोसा नहीं है। जिसे अपने पर भरोसा है, वह कहीं भी बैठे, इससे कोई भी फर्क नहीं पड़ता।

विनम्रता हीनता नहीं है। विनम्रता अहंकार का विसर्जन है। विनम्रता इस बात की घोषणा है कि मैं जैसा हूं, वैसा हूं। और मेरी किसी दूसरे से प्रतिस्पर्धा नहीं है। और अगर मुझे विकास करना है, तो वह मेरा विकास है, वह दूसरे से संबंधित नहीं है। वह दूसरे की तुलना और कपेरिजन में नहीं है।

जैसे ही यह बोध आना शुरू हो जाता है, कि मैं मैं हूं तुम तुम हो। तुम जैसे हो, तुम्हारे लिए भले हो, मैं जैसा हूं, मेरे लिए भला हूं। न तुमसे कोई स्पर्धा है, न तुम्हारी जगह लेने की कोई आकांक्षा है। मेरी अपनी जगह है; परमात्मा ने मुझे मेरी जगह दी है। मुझे मेरी जगह पर अंकुरित होना है। और जैसे ही व्यक्ति दूसरों से प्रतिस्पर्धा छोड़ देता है, वैसे ही परमात्मा में उसका विकास शुरू हो जाता है। और जब तक व्यक्ति दूसरों से उलझता रहता है, तब तक परमात्मा के जगत में उसका कोई विकास नहीं हो पाता। क्योंकि उसका ध्यान दूसरों पर लगा है, परमात्मा पर तो ध्यान ही नहीं है उसका।

अगर तुम मंदिर में भी जाते हो, तो भी तुम इस बात की फिक्र करते हो कि प्रार्थना उस जगह पर बैठकर करो जो नंबर एक है! प्रार्थना का क्या संबंध नंबर एक से! मंदिर में भी कतारें हैं। वहा भी अहंकारी आगे बैठा है! वह दूसरे को आगे नहीं बैठने देगा।

अभी कुंभ का मेला भरने को है, वहा अहंकारी पहले स्नान करेंगे। उस पर दंगा—फसाद हो जाता है, हत्याएं हो जाती हैं, लट्ठ चल जाते हैं। और चलाने वाले संन्यासी हैं। क्योंकि वे कहते हैं, पहले हमारा हक है, पहले हम स्नान करेंगे।

धर्म का क्या संबंध है पहले से? धर्म का संबंध अगर कुछ है, तो अंतिम से है। आखिरी होने के लिए जो राजी है, वह परमात्मा का प्यारा हो जाता है।

प्रथम होने की जो दौड़ में है, वह परमात्मा से लड़ रहा है। प्रथम होने की दौड़ नदी में उलटी धारा में तैरने की कोशिश है। अंतिम होने के लिए राजी होने का मतलब है, धारा में बह जाना, धारा के साथ एक हो जाना। जहां नदी ले जाए, हम वहीं जाने को राजी हैं। समर्पण बहने की कला है। और यह पूरा अस्तित्व परमात्मा है। इसमें जो बहने की कला सीख लेता है, मंदिर उसके लिए दूर नहीं है। मंदिर में वह पहुंच ही गया है।

अब हम सूत्र को लें।
परंतु शरीर छोड़कर जाते हुए को अथवा शरीर में स्थित हुए को और विषयों को भोगते हुए को अथवा तीनों गुणों से युक्त हुए को भी अज्ञानीजन नहीं जानते हैं, केवल ज्ञानरूप नेत्रों वाले ज्ञानीजन ही तत्व से जानते हैं।

शरीर छोड़कर जाते हुए को......।

जब शरीर छूटता है, और आपका बहुत बार छूटा है, लेकिन वह घड़ी चूक—चूक जाती है। क्योंकि शरीर छूटने के पहले ही आप बेहोश हो जाते हैं। जब भी कोई मरता है, मरने के पहले ही बेहोश हो जाता है। तो मौत का अनुभव नहीं हो पाता और मृत्यु की जो रहस्यमय घटना है, वह अनजानी रह जाती है।

मरने के पहले आदमी मूर्च्छित हो जाता है। इसलिए मृत्यु में जो भेद घटित होता है, शरीर अलग होता है, आत्मा अलग होती है, इंद्रियों के फूल पीछे पड़े रह जाते हैं, सुगंध, सूक्ष्म वासनाएं, संस्कार आत्मा के इर्द—गिर्द सुगंध की तरह लिपटे हुए नई यात्रा पर निकल जाते हैं। यह घटना हमारी समझ में नहीं आ पाती, क्योंकि हम ग्रच्छइrत होते हैं। मूर्च्छित हम क्यों हो जाते हैं मरते क्षण में?

एक जीवन की व्यवस्था है कि दुख एक सीमा तक झेला जा सकता है। जहां दुख असह्य हो जाता है, वहीं मूर्च्छा आ जाती है। इसलिए जब आप कभी—कभी कहते हैं कि मैं असह्य दुख में हूं तो आप गलत कहते हैं। क्योंकि असह्य दुख में आप होश में नहीं रह सकते, आप बेहोश हो जाएंगे। तभी तक होश रहता है, जब तक सहने योग्य हो।

इसलिए जब भी कोई पीड़ा बहुत हो जाएगी, आप बेहोश हो जाएंगे। कोई भी आघात गहरा होगा, आप बेहोश हो जाएंगे।

मूर्च्छा दुख का असह्य हो जाना है। और मृत्यु सब से बड़ा दुख है, हमारे लिए। हम डरते हैं मिटने से, इसलिए। मृत्यु के कारण नहीं है दुख, मिटने से डरते हैं इसलिए; कि मैं मिट जाऊंगा, मैं मिटा! इससे जो भय, पीड़ा और संताप पैदा होता है, उसके धुएं में चित्त बेहोश हो जाता है।

लेकिन जिन लोगों ने जीवन में ही समर्पण की कला साधी हो, मृत्यु उन्हें बेहोश नहीं कर पाएगी। क्योंकि मिटने के लिए वे पहले से ही तैयार हैं। वे तलाश कर रहे हैं। वे मिटने का ही विज्ञान खोज रहे हैं। जिन्होंने योग साधा हो, तंत्र साधा हो, जिन्होंने ध्यान के कोई प्रयोग किए हों, प्रार्थना की हो कभी, उनकी तलाश एक ही है कि मैं कैसे मिट जाऊं, क्योंकि मेरा होना पीड़ा है। मृत्यु के क्षण में ऐसे लोग सहर्ष मृत्यु के लिए राजी होंगे।

संत अगस्तीन एक चर्च बनवा रहा था। उसने एक बहुत बड़े चित्रकार को बुलाया और कहा कि इस चर्च के प्रथम द्वार पर मृत्यु का चित्र अंकित कर दो। क्योंकि जो मृत्यु को नहीं समझ पाता, वह मंदिर में प्रवेश भी कैसे कर पाएगा!

अगस्तीन ने चर्च के द्वार पर मृत्यु का चित्र बनवाया। जब चित्र बन गया, तो अगस्तीन उसे देखने आया। पर उसने कहा कि और तो सब ठीक है, लेकिन यह जो मृत्यु की काली छाया है, इसके हाथ में तुमने कुल्हाड़ी क्यों दी है?

चित्रकार ने मृत्यु की काली छाया बनाई है, एक भयंकर विकराल रूप और उसके हाथ में एक कुल्हाड़ी दी है।

उस चित्रकार ने कहा, यह प्रतीक है कि मृत्यु की कुल्हाडी सभी को काट डालती है, तोड़ डालती है। अगस्तीन ने कहा, और सब ठीक है, कुल्हाड़ी अलग कर दो और हाथ में चाबी दे दो।

चित्रकार ने कहा, कुछ समझ में नहीं आया! चाबी से क्या लेना—देना? अगस्तीन ने कहा, जो हमारा अनुभव है, वह यह है कि मृत्यु सिर्फ एक नया द्वार खोलती है, किसी को मिटाती—करती नहीं। इसलिए चाबी! नया द्वार खोलती है।

लेकिन नया द्वार उनके लिए खोलती है, जो होशपूर्वक मरते हैं। जो बेहोशी से मरते हैं, उनकी तो गरदन ही काटती है। उनके लिए तो मृत्यु के हाथ में कुल्हाड़ी ही है।

शरीर छोड़कर जाते हुए को हम नहीं जान पाते, क्योंकि हम बेहोश होते हैं। और हम तभी जान पाएंगे, जब मृत्यु में होश सधे। इसका अभ्यास करना होगा। इसका इतना अभ्यास करना होगा कि यह चेतन से उतरते—उतरते अचेतन में चला जाए। और जब तक यह अचेतन में न चला जाए अभ्यास.।.

इसलिए योग दो शब्दों का उपयोग करता है, वैराग्य और अभ्यास। बस, प्रक्रिया पूरी उन दो में समाई हुई है। वैराग्य की हमने बात की, क्या है वैराग्य। और दूसरा है कि उसका गहन अभ्यास, रोज—रोज साधना। ताकि मरने के पहले आपके भीतर इतना उतर जाए कि मृत्यु उसको हिला न सके।

मेरे एक मित्र हैं। मिलिट्री में मेजर हैं। उनकी पत्नी मेरे पड़ोस में रहती थीं। वे तो कभी—कभी आते थे। जगह—जगह उनकी बदलिया होती रहती थीं। पत्नी उनकी एक कालेज में प्रोफेसर थीं।

जब भी मित्र आते, तो पत्नी थोड़ी परेशान हो जाती। क्योंकि और तो सब ठीक था, बहुत प्यारे आदमी हैं, लेकिन रात में धुर्राते बहुत थे। और पत्नी अकेली रहने की आदी हो गई थी वर्षों से। तो जब भी साल में महीने, दो महीने के लिए आते, तो उसकी नींद हराम हो जाती थी।

उसने मुझे एक दिन कहा कि बड़ी अजीब हालत है। कहते भी अच्छा नहीं मालूम पड़ता; वे कभी आते हैं। लेकिन मेरी नींद मुश्किल हो जाती है। या मैं यह कहूं कि मैं दूसरे कमरे में सोऊ, तो भी अशोभन मालूम पड़ता है, इतने दिन के बाद पति घर आते हैं। और रात में तो सो ही नहीं पाती।

मैंने उनसे पूछा कि मुझे पूरा ब्यौरा दो।

तो उसने कहा कि जब भी वे बाएं सोते हैं, तो घुर्राते हैं। जब दाएं बदल लेते हैं करवट, तो ठीक सो जाते हैं। पर रात में उनको सोते में करवट कौन बदलवाए! और वजनी शरीर है, भारी, सैनिक हैं। और बदलाओ उनको करवट, तो नींद टूट जाएगी।

तो मैंने उसको कहा कि मैं तुझे एक मंत्र देता हूं; उनके कान में अभ्यास करना। दूसरे दिन उसने अभ्यास करके मुझे कहा कि अदभुत मंत्र है!

छोटा—सा मंत्र था। मैंने कहा, उनके कान में कहना राइट टर्न। मिलिट्री के आदमी। जिदगीभर का अभ्यास। मंत्र काम कर गया। जैसे ही उसने कहा राइट टर्न, उन्होंने नींद में अपनी करवट बदल ली।

मौत के क्षण में तो आप तभी होश रख पाएंगे, जब जिंदगीभर अभ्यास किया हो। और वह इतना गहरा हो गया हो कि मौत भी सामने खड़ी हो, तो भी चित्त बेहोश न हो। अचेतन तक, अनकांशस तक पहुंच जाना जरूरी है।

इसलिए समर्पण का जितना से जितना प्रयोग हो सके, जितना ज्यादा प्रयोग हो सके, जिन—जिन स्थितियों में आप अपने को खो सकें, खोए। अपने को सम्हाले मत। क्योंकि वह खोना इकट्ठा होता जाएगा। रत्ती—रत्ती इकट्ठा होते—होते उसका पहाड़ बन जाएगा। और जब मौत आएगी, तो आप होशपूर्वक जा सकेंगे।

और जो व्यक्ति होशपूर्वक मर गया, उसका दूसरा जन्म होशपूर्वक होता है। क्योंकि जन्म और मृत्यु एक ही द्वार के दो हिस्से है इस तरफ से जब हम प्रवेश करते है, तो मृत्यु; और जब उसी

दरवाजे से उस तरफ निकलते है, तो जन्म। जैसे एक ही दरवाजे पर लिखा होता है, भीतर। तो बाहर से जब हम प्रवेश करते हैं, तो भीतर, वह बाहर जब हम खड़े थे दरवाजे के। लेकिन जैसे ही दरवाजे के भीतर गए, दूसरा जगत शुरू हो गया।

मृत्यु, इस शरीर से बाहर; और जन्म, दूसरे शरीर में भीतर। लेकिन प्रक्रिया एक ही है। अगर आप होशपूर्वक मर सकते हैं, तो आपका जन्म होशपूर्वक होगा। और तब आपको पिछले जन्म की याद रहेगी। और तब पिछले जन्म के अनुभव व्यर्थ नहीं जाएंगे। उनका निचोड़ आपके हाथ में होगा। और तब आपने जो भूलें पिछले जन्म में कीं, वे आप इस जन्म में न कर सकेंगे। अन्यथा हर बार वही भूल है। और यह चक्र दुष्टचक्र है, विशियस सर्किल है। हर बार भूल जाते हैं; फिर वही भूल करते हैं।

ऐसा आप बहुत बार कर चुके हैं। यही काम जो आप आज कर रहे हैं, इसको आप अनंत बार कर चुके हैं। यही शादी, यही बच्चे, यही धन, यही पद—प्रतिष्ठा, यही लड़ाई—झगड़ा, कलह, अदालत,

दुकान; यह आप बहुत बार कर चुके हैं।

काश, आपको एक दफे भी याद आ जाए कि यह आप बहुत बार कर चुके हैं, तो इसमें जो आज आप इतना रस ले रहे हैं, वह एकदम खो जाएगा। यह पागलपन मालूम पड़ेगा। आप एकदम ठहर जाएंगे।

मृत्यु में जो होशपूर्वक मरे, वह जन्म में भी होशपूर्वक पैदा होता है। और जो मृत्यु और जन्म में होशपूर्वक रह जाए, वह जीवन में होशपूर्वक रहता है। क्योंकि मृत्यु और जन्म छोर हैं; बीच में जीवन है। और हम तीनों में बेहोश हैं।

इसलिए हम कितना ही सुनें कि शरीर नहीं है, आत्मा है, यह बात बैठती नहीं है। कितना ही कोई कहे कि आप शरीर नहीं, आत्मा हैं, मान भी लें, तो भी यह बात भीतर उतरती नहीं। क्योंकि हमारा अनुभव नहीं है। लगता तो ऐसे ही है कि शरीर ही होंगे। यह आत्मा हवा मालूम पड़ती है, हवाई बात मालूम पड़ती है।

कृष्ण कहते हैं, परंतु शरीर छोड़कर जाते हुए को अथवा शरीर में स्थित हुए को और विषयों को भोगते हुए को अथवा तीनों गुणों से युक्त हुए को भी अज्ञानीजन नहीं जानते हैं। क्योंकि मूर्च्छा सतत है। केवल ज्ञानरूप नेत्रों वाले ज्ञानीजन ही तत्व को जानते हैं।

कौन—सा है ज्ञान—नेत्र जो ज्ञानियों को मिल जाता है? उसको ही मैं अमूर्च्छा कह रहा हूं। होशपूर्वक घटनाओं को घटने देना, मृत्यु को, जन्म को, जीवन को। ये तीन घटनाएं हैं। अगर ये तीनों होशपूर्वक घट जाएं, तो आपके पास ज्ञान—नेत्र उपलब्ध हो गया। जहां आप हैं, वहीं से शुरू करना पड़ेगा। जन्म तो पीछे छूट गया। मौत आगे आ रही है। वह अभी दूर है। जीवन अभी है। जीवन के साथ शुरू करना जरूरी है कि हम जीएं, तो ज्ञानपूर्वक जीएं। जो भी करें, होशपूर्वक करें। बार—बार होश छूट जाएगा, फिर उसे पकड़े।

रास्ते पर चलें, तो होश से। भोजन करें, तो होश से। किसी से बात करें, तो होश से। एक बात सतत बनी रहे कि मेरे द्वारा मूर्च्छा में कुछ न हो। कोई गाली दे, तो पहले होश को सम्हाले, फिर उत्तर दें।

आप चकित हो जाएंगे, होश सम्हल जाए तो उत्तर निकलेगा नहीं। और होश न सम्हला हो, तो जो आप नहीं करना चाहते, वह भी हो जाता है, वह भी निकल जाता है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक यात्रा पर गया। दो मित्र साथ थे। तीनों बैलगाडी से यात्रा कर रहे थे। तीनों ने चिटें डालकर तय किया कि भोजन कौन बनाएगा। एक का नाम आ गया। पर उसमें भी एक शर्त थी। वह शर्त यह थी कि जिसका नाम आ जाएगा, वह भोजन बनाएगा; लेकिन बाकी दो में से कोई भी भोजन की शिकायत न कर सकेगा। और जिसने शिकायत की, उसी दिन से भोजन उसको बनाना पड़ेगा।

मुल्ला बड़ी मुश्किल में पड़ गया। नाम तो दूसरे का आया, इससे प्रसन्न हुआ। लेकिन भोजन उसने इतना रही बनाना शुरू किया कि वह खाया न जाए और शिकायत कर नहीं सकते। शिकायत की, तो खुद बनाना पड़े।

एक दिन, दो दिन, तीन दिन, फिर उसने होश खो दिया। तीसरे दिन उसने कहा कि इट टेस्ट्स लाइक हार्स शिट—घोड़े की लीद जैसा इसका स्वाद है। लेकिन तभी उसको खयाल आया, तो उसने कहा, बट डिलीशियस—पर बड़ा स्वादिष्ट है। क्योंकि कंप्लेंट नहीं करनी है, शिकायत नहीं करनी है।

अगर आप खयाल रखेंगे, तो चौबीस घंटे ऐसे मौके आपको आएंगे, जब आधा वाक्य बेहोशी में निकलेगा, और तब आपको खयाल आएगा; आधा तब आप पीछे से कहेंगे, बट डिलीशियस।

जीवन है हाथ में अभी, और अभी ही कुछ किया जा सकता है। वाणी, विचार, आचरण, सब पहलुओं पर होश की साधना। जो भी मैं कहूं जो भी मैं सोचूं जो भी मैं करूं, वह होशपूर्वक हो, इतना भर काफी है। तो धीरे—धीरे आप

पाएंगे कि बेहोशी टूटने लगी। और बेहोशी के टूटने के साथ ही दुख टूटने शुरू हो जाते हैं। बेहोशी के कारण ही दुखों को हम निमंत्रण देते हैं। और बेहोशी के कारण ही हम वे क्षण चूक जाते हैं जिनसे आनंद उपलब्ध हो सकता था।

मुल्ला नसरुद्दीन के पास एक गधा था। और गधे को अक्सर सर्दी लग जाती, तो वह कंपने लगता, बुखार आ जाता। तो वह लेकर गया उसको एक जानवरों के डाक्टर के पास।

उस डाक्टर ने जांच—पड़ताल की और उसको दो गोलियां दीं और एक पोली नली दी। और कहा कि नली में गोलियों को रखना और एक छोर गधे के मुंह में डालना और दूसरे से फूंक मार देना, तो गोलियां इसके पेट में चली जाएंगी। गोलियां बहुत गरम हैं, एक ही दिन में ठीक हो जाएगा।

शाम को ही नसरुद्दीन लौटा, तो वह लट्ठ लिए हुए था। उसने जाकर दरवाजे पर लट्ठ मारा और कहा, कहां है वह डाक्टर का बच्चा? डाक्टर भी डरा, क्योंकि उसकी आंखें लाल, चेहरा सुर्ख, पसीने से भरा हुआ।

डाक्टर ने पूछा कि क्या हुआ?

उसने कहा, तूने पूरी बात क्यों न बताई?

कौन—सी पूरी बात?

नसरुद्दीन ने कहा, गधे ने पहले फूंक मार दी; गोलियां मेरे पेट में चली गईं!

उस डाक्टर ने पूछा, तुम करने क्या लगे?

उसने कहा, मैं जरा दूसरे सोच में पड़ गया, जरा देर हो गई। गोली रखकर, मुंह में नली लगाकर मैं बैठा और कुछ दूसरा खयाल आ गया।

उतने खयाल में तो बेहोशी हो जाएगी।

हम सब ऐसे ही जी रहे हैं। कुछ कर रहे हैं, कुछ खयाल आ रहा है। कुछ करना चाहते हैं, कुछ हो जाता है। कुछ सोचा था, कुछ परिणाम आते हैं। कभी भी वही नहीं हो पाता, तो हम चाहते हैं। वह होगा भी नहीं, क्योंकि वह केवल तभी हो सकता है, जब होश पूरा हो।

जिसका होश पूरा है, उसके जीवन में वही होता है, जो होना चाहिए। उससे अन्यथा का कोई उपाय नहीं है। जिसका जीवन मूर्च्छा में चल रहा है, वह शराबी की तरह है। जाना चाहता था घर, पहुंच गया कहीं और। क्योंकि पैर का उसे कोई पता नहीं कि कहा जा रहे हैं। वह शराबी की तरह है। करना चाहता था कुछ और, हो गया कुछ और।

मैं पड़ता था एक शराबी के संस्मरणों को। वह एक रात ज्यादा पीकर लौटा। पत्नी से बचने के लिए कि पत्नी को पता न चले..। और ज्यादा पी गया, तो रास्ते पर कई जगह गिरा था। तो चेहरे पर कई जगह खरोंच और चोट लग गई। तो वह बाथरूम में गया और उसने मलहम की पट्टियां अपने चेहरे पर लगाई। जाकर चुपचाप बिस्तर में सो गया। और बड़ा प्रसन्न हुआ कि पत्नी को पता भी नहीं चला; शोरगुल भी नहीं हुआ; खरोंच वगैरह भी सुबह तक काफी ठीक हो जाएगी; पता भी नहीं चलेगा। बात निपट गई।

लेकिन सुबह ही उसकी पत्नी चिल्लाती बाथरूम से बाहर आई कि तुमने बाथरूम का दर्पण क्यों खराब किया है? पति ने पूछा, कैसा दर्पण!

क्योंकि वह रात बेहोशी में जो मलहम—पट्टी चेहरे पर लगानी थी, दर्पण पर लगा आया था। होश न हो, तो यही होगा। करेंगे कुछ, हो जाएगा कुछ। और शराबी को होना बिलकुल आसान है। क्योंकि चेहरा दिखाई दर्पण में पड़ रहा था, वहीं उसने पट्टिया लगा दीं।

कृष्ण कह रहे हैं कि केवल ज्ञानरूप नेत्रों वाले ज्ञानीजन ही तत्व से जानते हैं।

केवल वे ही, जो होश से जगे हुए हैं और प्रतिपल जिनका ज्ञान जाग्रत है, वे ही जन्म में, मृत्यु में, जीवन में, भीतर के तत्व को पूरी तरह पहचानते हैं।

क्योंकि योगीजन भी अपने हृदय में स्थित हुए इस आत्मा को यत्न करते हुए ही तत्व से जानते हैं। और जिन्होंने अपने अंतःकरण को शुद्ध नहीं किया है, ऐसे अज्ञानीजन तो यत्न करते हुए भी इस आत्मा को नहीं जानते हैं।

यत्न ही काफी नहीं है। यत्न जरूरी है, पर्याप्त नहीं है। प्रयास तो करना होगा सघन, लेकिन अकेला प्रयास काफी नहीं है, हृदय की शुद्धि भी चाहिए।

यहां थोड़ा—सा समझ लेना जरूरी है। क्योंकि बहुत बार ऐसा होता है कि लोग सिर्फ प्रयास ही करते रहते हैं, बिना इस बात की फिक्र किए कि भाव शुद्ध नहीं है, हृदय शुद्ध नहीं है। तो उसके परिणाम भयानक हो सकते हैं। कोई आदमी हृदय को शुद्ध न करे और एकाग्रता को साधे, कनसनट्रेशन को साधे। साध सकता है।

बुरे से बुरा आदमी भी एकाग्रता साध सकता है। एकाग्रता से बुराई का कोई लेना—देना नहीं है, बल्कि बुरा आदमी शायद एकाग्रता ज्यादा आसानी से साध सकता है। क्योंकि बुरे आदमी का एक लक्षण होता है कि वह जिस काम में भी लग जाए, पागल की तरह लगता है। और बुरा आदमी जिद्दी होता है, क्योंकि बुराई बिना जिद्द के नहीं की जा सकती। तो बुरे आदमी के लिए हठयोग बिलकुल आसान है। उसको पकड़ भर जाए उसके खयाल में भर आ जाए। और बुरा आदमी दुष्टता कर सकता है, दूसरों के साथ भी, अपने साथ भी। दुष्टता करने में उसे अड़चन नहीं है।

अगर आप हठयोग साधेंगे, तो ऐसा लगेगा कि क्यों सताओ इस शरीर को! क्यों इतना आसन लगाकर बैठो! पैर दुखने लगते हैं; आंख से आंसू झरने लगते हैं। दुष्ट आदमी इनकी फिक्र नहीं करता। वह दूसरे को भी सता सकता है, उतनी ही मात्रा में खुद को भी सता सकता है।

इसलिए आप हैरान होंगे जानकर कि आपके तथाकथित योगियों में, महात्माओं में आधे से ज्यादा तो दुष्टजन हैं। पर उनकी दुष्टता दूसरों की तरफ नहीं है। इतनी भी उनकी बड़ी कृपा है। अपनी ही तरफ किए हुए हैं। इससे समाज को उनसे कोई हानि नहीं है। अगर हानि है, तो उनको खुद को है।

अगर एक दुष्ट हत्यारा एकाग्रता साधे, तो साध सकता है। लेकिन उसकी एकाग्रता से खतरा होगा। क्योंकि एकाग्रता से शक्ति आएगी, और हृदय शुद्ध नहीं है। उस शक्ति का दुरुपयोग होगा। आपने दुर्वासा ऋषि की कहानियां पढ़ी हैं। बस, वह इस तरह का आदमी दुर्वासा हो जाएगा। उसके पास शक्ति होगी; क्योंकि अगर वह कुछ भी कह दे, तो उसका परिणाम होगा।

अगर कोई व्यक्ति बहुत एकाग्रता साधा हो, तो उसके वचन में एक शक्ति आ जाती है, जो सामान्यत: दूसरों के वचन में नहीं होती। उसका वचन आपके हृदय के अंतस्तल तक प्रवेश कर जाता है। वह जो भी कहेगा, उसके पीछे बल होगा। हमारी जो कथाएं हैं, वे झूठी नहीं हैं, उन कथाओं में सच है।

अगर एकाग्रता साधने वाला आदमी कह दे कि तुम कल मर जाओगे, तो बचना बहुत मुश्किल है। इसलिए नहीं कि उसके कहने में कोई जादू है, बल्कि उसके कहने में इतना बल है कि वह बात आपके हृदय में गहरे तक प्रवेश कर जाएगी। उसका तीर गहरा है, एकाग्र है, और उसने वर्षों तक अपने को साधा है। वह एक विचार पर अपनी पूरी शक्ति को इकट्ठा कर लेता है। तो उसका विचार आपके लिए सजेशन बन जाएगा।

वह कह देगा, कल मर जाओगे! तो उसकी आंखें, उसका व्यक्तित्व, उसका ढंग, उसकी एकाग्रता, उसकी अखंडता, उस विचार को तीर की तरह आपके हृदय में चुभा देगी। अब आप लाख कोशिश करो, उस विचार से छुटकारा मुश्किल है। वह आपका पीछा करेगा। कल आने तक, वह कल आने के पहले ही आपको आधा मार डालेगा। कल आप मर जाएंगे।

अभिशाप इसलिए लागू नहीं होता कि परमात्मा अभिशाप पूरा करने को बैठा है, कि दुर्वासाओं का रास्ता देख रहा है कि अभिशाप दें, और परमात्मा पूरा करे। लेकिन दुर्वासा ने एकाग्रता साधी है वर्षों तक; पर हृदय शुद्ध नहीं है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, सिर्फ यत्न काफी नहीं है। अगर अंतःकरण को शुद्ध नहीं किया है, तो यत्न करते हुए भी अज्ञानीजन आत्मा को नहीं जानते हैं।

इसलिए दो बातें हैं। प्रयत्न चाहिए और साथ—साथ हृदय की शुद्धि चाहिए।

तो बुद्ध और महावीर जैसे साधकों ने तो हृदय की शुद्धि को पहले रखा है, ताकि भूल—चूक जरा भी न हो पाए। आहार शुद्धि, शरीर शुद्धि, आचरण शुद्धि, सब तरह से शुद्ध हो जाए व्यक्ति, फिर वे कहते हैं, यत्न करो। नहीं तो खतरा है।

ऐसे खतरे कोई अतीत में कहानियों में घटे हैं, ऐसा ही नहीं है। अभी इस सदी के प्रारंभ में रूस में एक बहुत अदभुत व्यक्ति था, रासपुतिन। अनूठी प्रतिभा का आदमी था। ठीक उसी हैसियत का आदमी था, जिस हैसियत के आदमी गुरजिएफ या रमण। लेकिन एक खतरा था कि हृदय की शुद्धि नहीं थी।

रासपुतिन गहन साधना किया था। और पूरब की जितनी पद्धतिया हैं, सब पर काम किया था। ठेठ तिब्बत तक उसने खोजबीन की थी, और अनूठी शक्तियों का मालिक हो गया था। लेकिन हृदय साधारण था। साधारण आदमी का हृदय था। इसलिए जो चाहता, वह हो जाता था। लेकिन जो वह चाहता, वह गलत ही चाहता था। वह ठीक तो चाह नहीं सकता था।

पूरे रूस को डुबाने का कारण रासपुतिन बना, क्योंकि उसने जार को प्रभावित कर लिया। खासकर जार की पत्नी जारीना को प्रभावित कर लिया। उसमें ताकत थी।

और ताकत सच में अदभुत थी। उसके दुश्मनों ने भी स्वीकार किया। क्योंकि जब उसको मारा, हत्या की गई उसकी, तो उसको पहले बहुत जहर पिलाया, लेकिन वह बेहोश न हुआ। एकाग्रता इतनी थी उसकी। उसको जहर पिलाते गए, वह बेहोश न हुआ। जितने जहर से कहते हैं, पांच सौ आदमी मर जाते, उनसे वह सिर्फ बेहोश ही नहीं हुआ, मरने की तो बात ही अलग रही।

फिर उसको गोलिया मारी, तो कोई बाईस गोलिया उसके शरीर में मारी, तो भी नहीं मरा! तो फिर उसको बांधकर और पत्थरों से लपेटकर वोलग़ा के अंदर उसको डुबो दिया। और जब दो दिन बाद उसकी लाश मिली, तो उसने पत्थरों से अपने को छुड़ा लिया था। बंधन काट डाले थे। और डाक्टरों ने कहा कि वह पत्थरों की वजह से नहीं मरा है; उसके दो घंटे बाद मरा है।

अंदर भी वोल्गा में वह इतना सारा—इतना नशा, इतनी जहर, इतनी गोलियां, पत्थर बंधे—फिर भी उसने अपने पत्थर छोड़ लिए थे और अपने बंधन भी अलग कर डाले थे। हो सकता था, वह निकल ही आता। गहन शक्ति का आदमी था। लेकिन सारा प्रयोग उसकी शक्ति का उलटा हुआ।

रूस की क्रांति में लेनिन का उतना हाथ नहीं जितना रासपुतिन का है। क्योंकि रासपुतिन ने रूस को बरबाद करवा दिया। जार के ऊपर उसका प्रभाव था। उसने जो चाहा, वह हुआ। सारा उपद्रव

हो गया। उस उपद्रव का फल लेनिन ने उठाया। क्रांति आसान हो गई। आधा काम रासपुतिन ने किया, आधा लेनिन ने।

अगर हृदय शुद्ध न हो, तो शक्ति तो यत्न से आ सकती है। लेकिन उससे आत्मा नहीं आ जाएगी। यह रासपुतिन के पास इतनी ताकत है, लेकिन आत्मा नहीं है। यह शक्ति भी मन और शरीर की है।

हृदय की शुद्धि का अर्थ है, भावों की निर्मलता। बच्चे जैसा हृदय हो जाए। कठोरता छूटे, क्रोध छूटे, अहंकार छूटे, ईर्ष्या—द्वेष छूटे, घृणा—वैमनस्य छूटे और हृदय शुद्ध हो; और साथ में योग का यत्न हो। यत्न और शुद्ध भाव।

इसे हम ऐसा भी कह सकते हैं कि सिर्फ योगी होना काफी नहीं है, भक्त होना भी जरूरी है। सिर्फ योगी खतरनाक है, सिर्फ भक्त कमजोर है।

भक्त निर्बल है। वह सिर्फ दीनता—हीनता की प्रार्थना कर सकता है कि तुम पतित—पावन हो और मैं पापी हूं मुझे मुक्त करो। यह सब कह सकता है। लेकिन निर्बल है। उसके पास कोई शक्ति नहीं है। योगी के पास बड़ी शक्ति इकट्ठी हो सकती है, लेकिन उसके पास भाव नहीं है।

जहां भक्त और योगी का मिलन होता है, जहां भाव और यत्न दोनों संयुक्त हो जाते हैं, वहां आत्मा उपलब्ध होती है।

गीता दर्शन–(भाग–7)
अध्याय—15 (प्रवचन—पांचवां) — एकाग्रता और ह्रदय—शुद्धि

सूत्र—
यदादित्यगतं तेजो जगद्यासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमलि यचाग्नौ तत्तेजो विद्धि मांक्कम्।। 12 ।।
गामांविश्य च भूतानि धारयाथ्यमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः ।। 13 ।।
अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमांश्रितः।
प्राणायानसमांयुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।। 14 ।।
सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मतः स्मृतिर्ज्ञनिमयहेनं च।
वेदैश्च सवैंरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदीवदेव चाहम्।। 15 ।।
और हे अर्जुन, जो तेज सूर्य में स्थ्ति हुआ संपूर्ण जगत को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चंद्रमा में स्थ्ति है और जो तेज अग्नि में स्थित है, उसको तू मेरा ही तेज जान।

और मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके अपनी शक्ति से सब भतों को धारण करता हूं और रस—स्वरूप अर्थात अमृतमय सोम होकर संपूर्ण औषधियों को अर्थात वनस्पतियों को पुष्ट करता हूं।

मैं ही सब प्राणियों के शरीर में स्थित हुआ वैश्वानर अग्निरूप होकर प्राण और अपान मे स्थ्ति हुआ चार प्रकार के अन्न को पचाता हूं।

और मैं ही सब प्राणियों के ह्रदय में अंतर्यामीरूय से स्थित हूं तथा मेरे से ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन अर्थात संशय—विसर्जन होता है और सब वेदों द्वारा मैं ही जानने के योग्य हूं तथा वेदांत का कर्ता और वेदों को जानने वाला भी मैं ही हूं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्न :
कल आपने रासपुतिन की जो घटना कही, वह विस्मयजनक है। हमने तो अब तक यही सुना था कि शक्ति जब जागती

है—उसे चाहे कुंडलिनी कहें या त्रिनेत्र—तो उसकी अग्नि में मनष्य के सभी मैल, सभी कलुष जल जाते हैं, और वह शुद्ध और पवित्र हो जाता है!
इस संबंध में कुछ बातें महत्वपूर्ण हैं।

एक, शक्ति स्वयं में निष्पक्ष और निरपेक्ष है। शक्ति न तो शुभ है और न अशुभ। उसका शुभ उपयोग हो सकता है; अशुभ उपयोग हो सकता है।

दीए से अंधेरे में रोशनी भी हो सकती है, और किसी के घर में आग भी लगाई जा सकती है। जहर से हम किसी के प्राय भी ले सकते हैं, और किसी मरणासन्न व्यक्ति के लिए जहर औषधि भी बन सकता है।

शक्ति सभी— भौतिक या अभौतिक—निष्पक्ष और निरपेक्ष है। क्या उपयोग करते हैं, इस पर परिणाम निर्भर होंगे।

शुद्ध अंतःकरण न हुआ हो, तो भी शक्ति उपलब्ध हो सकती है। क्योंकि शक्ति की कोई शर्त भी नहीं कि शुद्ध अंतःकरण हो, तो ही उपलब्ध होगी। अशुद्ध अंतःकरण को भी उपलब्ध हो सकती है। और अक्सर तो ऐसा होता है कि अशुद्ध अंतःकरण शक्ति को पहले उपलब्ध कर लेता है। क्योंकि शक्ति की आकांक्षा भी अशुद्धि की ही आकांक्षा है।

शुद्ध अंतःकरण शक्ति की आकांक्षा नहीं करता, शांति की आकांक्षा करता है। अशुद्ध अंतःकरण शक्ति की आकांक्षा करता है, शांति की नहीं। शुद्ध अंतःकरण को शक्ति मिलती है, वह प्रसाद है, वह परमात्मा की कृपा है, अनुकंपा है। वह उसने मांगा नहीं है, वह उसने चाहा भी नहीं है। वह उसने खोजा भी नहीं है। वह उसे सहज मिला है।

अशुद्ध अंतःकरण को शक्ति मिलती है, वह उसकी वासना की मांग है। वह प्रभु का प्रसाद नहीं है। वह उसने चाहा है, यत्न किया है, और उसे पा लिया है। शक्ति की चाह ही हमारे भीतर इसलिए पैदा होती है कि हम कुछ करना चाहते हैं। शक्ति के बिना न कर सकेंगे।

शुद्ध अंतःकरण कुछ करना नहीं चाहता। शक्ति की कोई जरूरत भी नहीं है। अशुद्ध अंतःकरण बहुत कुछ करना चाहता है। वासनाओं की पूर्ति करनी है; महत्वाकांक्षाएं भरनी हैं; मन की पागल दौड़ है, उस दौड़ के लिए सहारा चाहिए ईंधन चाहिए। तो शक्ति की मांग होती है।

और शक्ति मिलती है न तो शुद्धि से, न अशुद्धि से। शक्ति मिलती है यत्न, प्रयत्न, साधना से। अगर कोई व्यक्ति अपने चित्त को एकाग्र करे, तो शुभ विचार पर भी एकाग्र कर सकता है, अशुभ विचार पर भी।

इस संबंध में महावीर की अंतर्दृष्टि बडी गहरी है। महावीर ने ध्यान के दो रूप कर दिए हैं। एक को वे धर्म— ध्यान कहते हैं; एक को अधर्म— ध्यान। ऐसा भेद मनुष्य जाति के इतिहास में किसी दूसरे व्यक्ति ने नहीं किया। यह भेद बड़ा कीमती है। हमें तो लगेगा कि सभी ध्यान धार्मिक होते हैं। लेकिन महावीर दो हिस्से करते हैं, अधर्म—ध्यान और धर्म—ध्यान।

तो ध्यान अपने आप में धार्मिक नहीं है। शुद्ध अंतःकरण के साथ जुड़े तो ही धार्मिक है, अशुद्ध अंतःकरण के साथ जुड़े तो अधार्मिक है।

आपको भी अनुभव हुआ होगा। धार्मिक ध्यान का तो अनुभव शायद न हुआ हो, लेकिन अधार्मिक ध्यान का आपको भी अनुभव हुआ है।

जब आप क्रोध में होते हैं, तो चित्त एकाग्र हो जाता है। जब कामवासना से भरते हैं, तो चित्त एकाग्र हो जाता है। परमात्मा पर मन को लगाना हो, तो यहां—वहा भटकता है। एक सुंदर स्त्री मन में समां जाए, तो भटकता नहीं है, सुंदर स्त्री में रुक जाता है। परमात्मा की मूर्ति पर ध्यान को लगाएं, तो बडी मेहनत करनी पड़ती है तो भी नहीं रुकता।

एक नग्न स्त्री का चित्र सामने रखा हो, तो मन एकदम रुक जाता है; कहीं जाता नहीं। पास शोरगुल भी होता रहे, तो भी मन विचलित नहीं होता।

इसे महावीर अधर्म—ध्यान कहते हैं। यह भी ध्यान तो है ही। क्योंकि ध्यान का तो मतलब है, मन का ठहर जाना। वह कहां ठहरता है, यह सवाल नहीं है।

जब आप क्रोध में होते हैं, तब मन ठहर जाता है। इसलिए आपको अनुभव होगा कि क्रोध में आपकी शक्ति बढ़ जाती है। साधारणत: हो सकता है आपमें इतनी शक्ति न हो, लेकिन जब क्रोध में आप होते हैं, तो अनंत गुना शक्ति हो जाती है। क्रोध की अवस्था में लोगों ने ऐसे पत्थरों को हटा दिया है, जिनको सामान्य अवस्था में वे हिला भी नहीं सकते। क्रोध की अवस्था में अपने से दुगुने ताकतवर आदमियों को लोगों ने पछाड़ दिया है, जिनको साधारण अवस्था में वे देखकर भाग ही खड़े होते।

क्रोध में मन एकाग्र हो जाता है, शक्ति उपलब्ध होती है। वासना के क्षण में मन एकाग्र हो जाता है, शक्ति उपलब्ध होती है। एकाग्रता शक्ति है। कहां एकाग्र कर रहे हैं, यह बात एकाग्रता के लिए आवश्यक नहीं है कि वह शुभ हो या अशुभ हो।

रासपुतिन जैसे व्यक्ति बड़ी एकाग्रता को साधते हैं। लेकिन हृदय अशुद्ध है, तो उस एकाग्रता का अंतिम परिणाम अशुभ होता है। रासपुतिन ने अपनी शक्तिओं का जो उपयोग किया.......।

जार का एक ही लड़का था, रूस के सम्राट का एक ही लड़का था। और सम्राट और सम्राज्ञी दोनों ही उस लड़के के लिए बड़े चिंतातुर थे। वह बचपन से ही बीमांर था, अस्वस्थ था। रासपुतिन की किसी ने खबर दी कि वह शायद ठीक कर दे। रासपुतिन ने उसे ठीक भी कर दिया। रासपुतिन ने उसके सिर पर हाथ रखा और वह बच्चा पहली दफा ठीक स्वस्थ अनुभव हुआ।

लेकिन तब से सम्राट के पूरे परिवार को रासपुतिन का गुलाम हो जाना पड़ा। क्योंकि रासपुतिन दो दिन के लिए कहीं चला जाए, तो वह बच्चा अस्वस्थ हो जाए। रासपुतिन का रोज राजमहल आना जरूरी है। और यह बात थोड़े दिन में साफ हो गई कि रासपुतिन अगर न होगा, तो बच्चा मर जाएगा। इलाज तो कम हुआ, इलाज बीमांरी बन गया! पहले तो कुछ चिकित्सकों का परिणाम भी होता था, अब किसी का भी कोई परिणाम न रहा। अब रासपुतिन की मौजूदगी नियमित चाहिए।

और उस लड़के के आधार पर रासपुतिन जितना शोषण कर सकता था जार का और ज़ारीना का, उसने किया। उसने जो चाहा, वह करवाया। मुल्क का प्रधानमंत्री भी नियुक्त करना हो, तो रासपुतिन जिसको इशारा करे, वह प्रधानमंत्री हो जाए। क्योंकि वह लड़के की जान उसके हाथ में हो गई। जिस व्यक्ति ने चित्त को बहुत एकाग्र किया हो, यह बड़ा आसान है। वह बच्चा सम्मोहित हो गया। वह बच्चा हिम्मोटाइब्द हो गया। अब यह सम्मोहित अवस्था उस बच्चे की, शोषण का आधार बन गई।

जीसस ने भी लोगों को स्वस्थ किया है। जीसस ने भी लोगों के सिर पर हाथ रखकर उनकी बीमांरियां अलग कर दी हैं। रासपुतिन के पास भी ताकत वही है, जो जीसस के पास है। रासपुतिन भी बीमांरी दूर कर सकता है। लेकिन रासपुतिन बीमांरी को रोक भी सकता है, जीसस वह न कर सकेंगे। रासपुतिन बीमांरी का शोषण भी कर सकता है, जीसस वह न कर सकेंगे।

हृदय शुद्ध हो, तो वही शक्ति सिर्फ चिकित्सा बनेगी। हृदय अशुद्ध हो, तो वही शक्ति शोषण भी बन सकती है।

कठिनाई हमें समझने में यह होती है कि अशुद्ध हृदय एकाग्र कैसे हो सकता है! कोई अड़चन नहीं है। एकाग्रता तो एक कला है; मन को एक जगह रोकने की कला है। इसलिए अगर दुनिया में बुरे लोगों के पास भी शक्ति होती है, तो उसका कारण यही है कि उनके पास भी एकाग्रता होती है।

हिटलर के पास बड़ी एकाग्रता है। जर्मन जैसी बुद्धिमान जाति को इतने बड़े पागलपन में उतार देना सामान्य व्यक्ति की क्षमता नहीं है। हिटलर ने जो भी कहा, वह जर्मन जाति ने स्वीकार कर लिया। उसकी आंखों में जादू था। उसके कहने में बल था। उसके खड़े होते से सम्मोहन पैदा हो जाता।

जर्मनी की पराजय के बाद जिन लोगों ने अंतर्राष्ट्रीय अदालत में वक्तव्य दिए—उसमें बड़े बुद्धिमान लोग थे, प्रोफेसर थे, युनिवर्सिटी के वाइस चांसलर थे—उन्होंने यही कहा कि हम अब सोच भी नहीं पाते कि हमने यह सब कैसे किया! जैसे कोई शक्ति हमसे करवा रही थी।

दुनिया में बुरे आदमी के पास भी ताकत होती है, भले आदमी के पास भी ताकत होती है। ताकत एक ही है। बुरे आदमी के पास हृदय का यंत्र बुरा है। वही ताकत उसके बुरे यंत्र को चलाती है।

यह बिजली दौड़ रही है। इससे बिजली भी चल रही है, पंखा भी चल रहा है। पंखा खराब हो, बिजली वही दौड़ती रहेगी, लेकिन पंखे में खड़—खड़ शुरू हो जाएगी। पंखा बहुत खराब हो, तो टूटकर गिर भी सकता है, और किसी के प्राण भी ले सकता है। कसूर बिजली का नहीं है।

मनुष्य तो एक यंत्र है। शक्ति तो सभी परमात्मा की है, चाहे बुरे आदमी में हो, चाहे भले आदमी में हो। शक्ति का स्रोत तो एक ही है। राम में भी वही स्रोत है, रावण में भी वही स्रोत है। रावण के लिए कोई अलग मांर्ग नहीं है शक्ति को पाने का। उसी महास्रोत से रावण भी शक्ति पाता है, जिस महास्रोत से राम शक्ति पाते हैं।

शक्ति के स्रोत में कोई भी फर्क नहीं है, लेकिन दोनों के हृदय में फर्क है। एक के पास शुद्ध हृदय है, एक के पास अशुद्ध हृदय है। उस अशुद्ध हृदय में से शक्ति विनाशक हो जाती है। शुद्ध हृदय से शक्ति निर्मात्री, सृजनात्मक हो जाती है। शुद्ध से जीवन बहने लगता है, अशुद्ध से मृत्यु बहने लगती है। शुद्ध से प्रकाश बन जाता है, अशुद्ध से अंधकार बन जाता है।

लेकिन शक्ति का स्रोत एक है। दो स्रोत हो भी नहीं सकते, दो स्रोत का कोई उपाय भी नहीं है। कितना ही बुरा आदमी हो, परमात्मा उसके भीतर वही है।

इसलिए जो सदगुरु वस्तुत: सैकड़ों लोगों पर साधना के प्रयोग किए हैं, करवाए हैं, उन्होंने अनिवार्यरूप से कुछ व्यवस्था की है जिससे कि अंतःकरण शुद्ध हो। या तो साधना के साथ शुद्ध हो या साधना के पूर्व शुद्ध हो; शक्ति की घटना घटने के पहले अंतःकरण शुद्ध हो जाए। अन्यथा हित की जगह अहित की संभावना है।

आप सोचें, अगर आपको अभी शक्ति मिल जाए, तो आप क्या करेंगे? अगर आपको एक शक्ति मिल जाए कि आप चाहें तो किसी को जीवन दे सकें और चाहे तो किसी को मृत्यु दे सकें, तो आपके मन में सब से पहले क्या खयाल उठेगा?

शायद यह आपके मन में खयाल उठे कि मित्र को मैं शाश्वत बना दूं। लेकिन शत्रु को नष्ट कर दूं यह खयाल पहले उठेगा। वह जो अंतःकरण भीतर है, जैसा है, वैसे ही खयाल देगा।

अगर आपको यह शक्ति मिल जाए कि आप अदृश्य हो सकते हैं, तो आपको यह खयाल शायद ही आए कि अदृश्य होकर जाऊं और लोगों के पैर दबाऊं, सेवा करूं। मैं नहीं सोचता कि यह खयाल भी आ सकता है। अदृश्य होने का खयाल आते ही से, किसकी पत्नी को आप ले भागें, किसकी तिजोरी खोल लें, जहा कल तक आप प्रवेश नहीं कर सकते थे, वहां कैसे प्रवेश कर जाएं, वही खयाल आएगा।

सोचने भर से कि आपको अगर अदृश्य होने की शक्ति मिल जाए, तो आप क्या करेंगे? एक कागज पर आप बैठकर आज ही रात लिखना, तो आपको खयाल में आ जाएगा कि. अभी शक्ति मिल नहीं गई है, सिर्फ खयाल है, लेकिन मन सपने संजोना शुरू कर देगा कि क्या करना है।

और शक्ति अशुद्ध को भी मिल सकती है। इसलिए शक्ति के स्रोत छिपाकर रखे गए हैं। सीक्रेसी, योग, तंत्र और धर्म के आस—पास इतनी गुप्तता का कुल कारण यही है। क्योंकि शक्ति का स्रोत गलत आदमी को भी मिल सकता है; खतरनाक आदमी को भी मिल सकता है। और जब भी कोई वितान—कोई भी विज्ञान, चाहे आंतरिक, चाहे बाह्य—ऊंचाइयों पर पहुंचता है, तो खतरे शुरू हो जाते हैं।

अभी पश्चिम में विचार चलता है कि विज्ञान की जो नई खोजें हैं, वे गुप्त रखी जाएं, अब उनको प्रकट न किया जाए। क्योंकि विज्ञान की नई खोजें अब खतरे की सीमां पर पहुंच गई हैं। वे बुरे आदमी के हाथ में पड़ सकती हैं। पड़ ही रही हैं; क्योंकि राजनीतिज्ञ के हाथ में पड़ जाती है सारी खोज।

आइंस्टीन, जिसने हाथ बंटाया अणु शक्ति के निर्माण में, उसने कभी सोचा भी नहीं था कि हिरोशिमां और नागासाकी में एक—एक लाख लोग जलकर राख हो जाएंगे मेरी खोज से।

आइंस्टीन से मरने के पहले किसी ने पूछा कि तुम अगर दुबारा जन्म लो तो क्या करोगे? तो उसने कहा, मैं एक प्लंबर होना पसंद करूंगा बजाय एक वैज्ञानिक होने के। क्योंकि वैज्ञानिक होकर देख लिया कि मेरे मांध्यम से, मेरे बिना जाने, मेरी बिना आकांक्षा के, मेरे विरोध में, मेरे ही हाथों से जो काम हुआ, उसके लिए मैं रोता हूं।

क्योंकि शक्ति तो खोजता है वैज्ञानिक और राजनीतिज्ञ के हाथ में पहुंच जाती है। और राजनीतिज्ञ शुद्ध रूप से अशुद्ध आदमी है। वह पूरा अशुद्ध आदमी है। क्योंकि उसकी दौड़ ही शक्ति की है। उसकी चेष्टा ही महत्वाकांक्षा की है। दूसरों पर कैसे हावी हो जाए! तो आइंस्टीन ने अपने अंतिम पत्रों में अपने मित्रों को लिखा है कि भविष्य में अब हमें सचेत हो जाना चाहिए। और हम जो खोजें, वह गुप्त रहे।

यह खयाल पश्चिम को अब आ रहा है। लेकिन हिंदुओं को यह खयाल आज से तीन हजार साल पहले आ गया।

पश्चिम में बहुत लोग विचार करते हैं कि हिंदुओं ने, जिन्होंने इतनी गहरी चितना की, उन्होंने विज्ञान की बहुत—सी बातें क्यों न खोजी!

चीन को आज से तीन हजार साल पहले यह खयाल आ गया कि विज्ञान खतरनाक है। चीन में सबसे पहले बारूद खोजी गई। लेकिन चीन ने बम नहीं बनाए; फुलझड़ी—फटाके बनाए। बारूद वही है, लेकिन चीन ने फुलझड़ी—फटाके बनाकर बच्चों का खेल किया, इससे ज्यादा उनका उपयोग नहीं किया।

यह तो बिलकुल साफ है कि जो फुलझड़ी—फटाके बना सकता है, उसको साफ है कि इससे आदमी की हत्या की जा सकती है। क्योंकि कभी—कभी तो फुलझड़ी—फटाके से हत्या हो जाती हैं। हर साल दीवाली पर न मालूम कितने बच्चे इस मुल्क में मरते हैं; अपंग हो जाते हैं; आंख फूट जाती है, हाथ जल जाते हैं।

तो तीन हजार साल पहले चीन को फटाके बनाने की कला आ गई। बम बड़ा फटाका है। लेकिन चीन ने उस कला को उस तरफ जाने ही नहीं दिया, उसको खेल बा दिया। जैसे ही यूरोप में बारूद पहुंची कि उन्होंने तत्काल बम बना लिया। बारूद की ईजाद पूरब में हुई और बम बना पश्चिम में।

हिंदुओं को, चीनिओं को तीन हजार साल पहले बहुत—से विज्ञान के सूत्रों का खयाल हो गया। और उन्होंने वे बिलकुल गुप्त कर दिए। वे सूत्र नहीं उपयोग करने हैं।

न केवल विज्ञान के संबंध में, बल्कि धर्म के संबंध में भी हिंदुओं को, तिब्बतिओं को, चीनिओं को, पूरे पूरब को कुछ गहन सूत्र हाथ में आ गए। और यह बात भी साफ हो गई कि ये सूत्र गलत आदमी के हाथ में जाएंगे, तो खतरा है। तो उन सूत्रों को अत्यंत गुप्त कर दिया। जब गुरु समझेगा शिष्य को इस योग्य, तब वह उसके कान में दे देगा। सीक्रेसी, अत्यंत गुप्तता और गुह्यता है। और वह तब ही देगा, जब वह समझेगा कि शिष्य इस योग्य हुआ कि शक्ति का दुरुपयोग न होगा।

इसलिए जो भी महत्वपूर्ण है, वह शास्त्रों में नहीं लिखा हुआ है। शास्त्रों में तो सिर्फ अधूरी बातें लिखी हुई हैं। कोई भी गलत आदमी शास्त्र के मांध्यम से कुछ भी नहीं कर सकता। शास्त्र में मूल बिंदु छोड़ दिए गए हैं। जैसे सब बता दिया गया है, लेकिन चाबी शास्त्र में नहीं है। महल का पूरा वर्णन है। भीतर के एक—एक कक्ष का वर्णन है। लेकिन ताला कहा लगा है, इसकी किसी शास्त्र में कोई चर्चा नहीं है। और चाबी का तो कोई हिसाब शास्त्र में नहीं है। चाबी तो हमेशा व्यक्तिगत हाथों से गुरु शिष्य को देगा।

जिसको हम मंत्र कहते रहे हैं और दीक्षा कहते रहे हैं, वह गुप्तता में, जो जानता है उसके द्वारा उसको चाबी दिए जाने की कला है, जिससे खतरा नहीं है, जो दुरुपयोग नहीं करेगा; और चाबी को सम्हालकर रखेगा, जब तक कि योग्य आदमी न मिल जाए। और अगर योग्य आदमी न मिले, तो हिंदुओं ने तय किया कि चाबी को खो जाने देना, हर्जा नहीं है। जब भी योग्य आदमी होंगे, चाबी फिर खोजी जा सकती है। लेकिन गलत आदमी के हाथ में चाबी मत देना। वह बड़ा खतरा है। और एक बार गलत आदमी के हाथ में चाबी चली जाए तो अच्छे आदमी के पैदा होने का उपाय ही समाप्त हो जाता है।

तो ज्ञान चाहे खो जाए लेकिन गलत को मत देना। यह जो हिंदुओं ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की व्यवस्था की, उस व्यवस्था में यह सारा का सारा खयाल था। ब्राह्मण के अतिरिक्त चाबी किसी को न दी जाए।

शूद्र के हाथ तक तो पहुंचने न दी जाए। शूद्र से कोई मतलब उस आदमी का नहीं, जो शूद्र घर में जन्मा है। हिंदुओं का हिसाब बहुत अनूठा है। हिंदुओं का हिसाब यह है कि पैदा तो हर आदमी शूद्र ही होता है। शूद्रता तो जन्म से सभी को मिलती है। इसलिए ब्राह्मण को हम द्विज कहते हैं। उसका दुबारा जन्म होना चाहिए। वह गुरु के पास फिर से उसका जन्म होगा। मां—बाप ने जो जन्म दिया, उसमें तो शूद्र ही पैदा होता है। उससे कोई कभी ब्राह्मण पैदा नहीं होता है। और जो अपने को मां—बाप से पैदा होकर ब्राह्मण समझ लेता है, उसे कुछ पता ही नहीं है।

ब्राह्मण तो पैदा होगा गुरु की सन्निधि में। वह दुबारा उसका जन्म होगा, वह ट्वाइस बॉर्न होगा। इसलिए हम उसे द्विज कहते हैं, जिसका दूसरा जन्म हो गया। और दूसरे जन्म के बाद वह अधिकारी होगा कि गुरु उसे जो गुह्य है, जो छिपा है, वह दे। जो नहीं दिया जा सकता सामान्य को, वह उसे दे। वह उसकी धरोहर होगी।

इसलिए बहुत सैकड़ों वर्ष तक हिंदुओं ने चेष्टा कि उनके शास्त्र लिखे न जाएं, कंठस्थ किए जाएं। क्योंकि लिखते ही चीज सामान्य हो जाती है, सार्वजनिक हो जाती है। फिर उस पर कब्जा नहीं रह जाता। फिर नियंत्रण रखना असंभव है।

और जब लिखे भी गए शास्त्र, तो मूल बिंदु छोड़ दिए गए हैं। इसलिए आप शास्त्र कितना ही पढ़ें, सत्य आपको नहीं मिल सकेगा। सब शास्त्र पढकर आपको अंततः गुरु के पास ही जाना पड़ेगा।

तो सभी शास्त्र गुरु तक ले जा सकते हैं, बस। और सभी शास्त्र आप में प्यास जगाके और बेचैनी पैदा करेंगे, और चाबी कहां है, इसकी चिंता पैदा होगी। और तब आप गुरु की तलाश में निकलेंगे, जिसके पास चाबी मिल सकती है।

आध्यात्मिक विज्ञान तो और भी खतरनाक है। क्योंकि आपको खयाल ही नहीं कि आध्यात्मिक विज्ञान क्या कर सकता है। अगर कोई व्यक्ति थोड़ी—सी भी एकाग्रता साधने में सफल हो जाए, तो वह दूसरे लोगों के मनों को बिना उनके जाने प्रभावित कर सकता है। आप छोटे—मोटे प्रयोग करके देखें, तो आपको खयाल में आ जाएगा।

रास्ते पर जा रहे हों, किसी आदमी के पीछे चलने लगें; कोई तीन—चार कदम का फासला रखें। फिर दोनों आंखों को उसकी चेथी पर, सिर के पीछे थिर कर लें। एक सेकेंड भी आप एकाग्र नहीं हो पाएंगे कि वह आदमी लौटकर पीछे देखेगा। आपने कुछ किया नहीं; सिर्फ आंख।

लेकिन ठीक रीढ़ के आखिरी हिस्से से मस्तिष्क शुरू होता है। मस्तिष्क रीढ़ का ही विकास है। जहा से मस्तिष्क शुरू होता है, वहां बहुत संवेदनशील हिस्सा है। आपकी आंख का जरा—सा भी प्रभाव, और वह संवेदना वहा पैदा हो जाती है; सिर घुमांकर देखना जरूरी हो जाएगा।

और अगर आप दस—पांच लोगों पर प्रयोग करके समझ जाएं कि यह हो सकता है, तो उस संवेदनशील हिस्से से कोई भी विचार किसी व्यक्ति में डाला जा सकता है।

बहुत बार ऐसा होता है, आपको पता भी नहीं होता है कि बहुत—से विचार आप में किस भांति प्रवेश कर जाते हैं। बहुत बार ऐसा होता है कि किसी व्यक्ति के पास आप जाते हैं और आपके विचार तत्काल बदलने लगते हैं; बुरे या अच्छे होने लगते हैं।

संतों के पास अक्सर अनुभव होगा कि उनके पास जाकर आपके विचारों में एक झोंका आ गया; कुछ बदलाहट हो गई। बुरे आदमी के पास जाकर भी एक झोंका आता है, कुछ बदलाहट हो जाती है। संत किसी भावना में जीता है। उस भावना में वह इतनी सघनता से जीता है कि जैसे ही आप उसके पास जाते हैं, आपके मस्तिष्क में उसकी चोट पड़नी शुरू हो जाती है। वहा एक सतत वातावरण है। बुरा आदमी भी एक भावना में जीता है। वह उसकी एकाग्रता है। उसके पास आप जाते हैं कि चोट पड्नी शुरू हो जाती है।

भीड़ में जब भी आप जाते हैं, तभी आप लौटकर अनुभव करेंगे कि मन उदास हो गया, थक गया, जैसे आप कुछ खोकर लौटे हैं। क्योंकि भीड़ एक उत्पात है; उसमें कई तरह के मस्तिष्क हैं, कई तरह की एकाग्रताएं हैं। वे सब एक साथ आपके ऊपर हमला कर देती हैं।

इसलिए सदियों से साधक स्वात की तलाश करता रहा है। एकांत की तलाश, आप जानकर हैरान होंगे, जंगल और पहाड़ के लिए नहीं है। एकांत की तलाश आपसे बचने के लिए है। वह कोई जंगल की खोज में नहीं जा रहा है, न पहाड़ की खोज में जा रहा है। वह आपसे दूर हट रहा है। वह आपसे बच रहा है। नकारात्मक है खोज। पहाड़ क्या दे सकते हैं! पहाड़ कुछ नहीं दे सकते। लेकिन आप बहुत कुछ छीन सकते हैं।

पहाडों के पास कोई मस्तिष्क नहीं है। इसलिए पहाड़ों के पास आप निश्चित रह सकते हैं। वे न तो बुरा देंगे, न भला देंगे। जो आपके भीतर है, वही होगा। लेकिन आदमियों के पास आप निश्चित नहीं रह सकते। क्योंकि पूरे समय उनके विचार आप में प्रवाहित हो रहे हैं—वे न भी बोलें तो भी, वे न भी चाहें तो भी। उनका कचरा आप में बह रहा है; आपका कचरा उनमें बह रहा है। तो जब भी आप भीड़ में जाते हैं, आप कचरे से भरकर लौटते हैं। एक कनफ्यूजन, एक भीतर भीड़ पैदा हो जाती है।

अगर आपको थोड़ी सी भी एकाग्रता अनुभव हो जाए, तो आप किसी के भी विचार बदल सकते हैं। बड़ी ताकत है विचार बदलने में। तर्क करने की जरूरत नहीं है। विवाद करने की जरूरत नहीं है।

सिर्फ एक विचार सतत किसी की तरफ फेंकने की जरूरत है। उसके विचार बदलने शुरू हो जाते हैं।

और अगर आप कोई अशुभ काम करवाना चाहें, तो कोई अड़चन नहीं है। उसकी जेब में हाथ डालकर उसके नोट निकालने की जरूरत नहीं है। उससे ही कहा जा सकता है कि निकालो नोट और सड़क पर गिरा दो। वह खुद ही रूमाल निकालने के बहाने रूमाल के साथ नोट भी गिरा देगा। और वह सोचेगा कि भूल से गिर गया।

जीवन के गहन में प्रवेश किया जा सकता है एकाग्रता के सेतु से। शुभ भी किया जा सकता है, अशुभ भी किया जा सकता है। इसलिए एकाग्रता की कला किसी शास्त्र में लिखी हुई नहीं है। और जो भी लिखा हुआ है, उसको आप वर्षों करते रहें, तो भी एकाग्र न होंगे।

इसलिए बहुत लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि हम वर्षों से एकाग्रता साध रहे हैं, लेकिन कुछ हो नहीं रहा है! वे किताब पढ़कर साध रहे हैं। कभी होगा भी नहीं। थोड़े दिन में थक जाएंगे। किताब भी फेंक देंगे, एकाग्रता को भी भूल जाएंगे।

वह एकाग्रता तभी कोई उनको बता सकेगा, जब पाया जाएगा कि उनका हृदय उस शुद्धि में है कि अब वे किसी को नुकसान नहीं पहुंचा सकते हैं। बच्चों के हाथ में तलवार नहीं दी जा सकती। और जो दे, वह आदमी मंगलदायी नहीं है।

रासपुतिन या दुर्वासा, या उस तरह के लोग शक्तिशाली लोग हैं। अदम्य उनके पास ऊर्जा है, लेकिन हृदय की शुद्धि नहीं है। रासपुतिन जैसे लोग कैसे सूत्र खोज लेते हैं? रासपुतिन भटका है। जैसे गुरजिएफ सूफी फकीरों, लामांओं, ईरान, तिब्बत, भारत, मिल, सब जगह जैसे गुरजिएफ भटका कोई बीस साल तक सूत्रों की तलाश में, वैसे ही रासपुतिन भी भटका है। और आज की नैतिकता इतनी कमजोर है कि जिनको आप साधारणत: साधु भी कहते हैं, वे भी खरीदे जा सकते हैं। और छोटी—मोटी बातें लीक आउट हो जाती हैं।

रासपुतिन भटका तलाश में कि कहां से सूत्र मिल सकते हैं। और उसने जरूर कहीं से सूत्र खरीद लिए। उसने अथक मेहनत की। और वर्षों के श्रम के बाद उसने कुछ रास्ते निकाल लिए। कुछ छोटी—मोटी कुंजिया उसके हाथ में आ गईं। और उसने उनका उपयोग किया।

आज भी कुछ लोगों के पास छोटे—मोटे सूत्र हैं। अनेक कारणों से गलत लोगों के पास भी सूत्र पहुंच गए हैं। कभी मोह के कारण पहुंच जाते हैं; कभी भूल—चूक से भी पहुंच जाते हैं। कभी बाप मरता है और सिर्फ मोह के कारण कुछ जानता है, वह बेटे को दे जाता है। बेटा योग्य नहीं भी होता है तो भी। कभी गुरु मरता है और सिर्फ इस आशा में दे जाता है कि आज नहीं कल शिष्य योग्य हो जाएगा। कई बार सूत्रों की चोरी भी हो जाती है। धन की ही चोरी नहीं हो सकती, सूत्रों की भी चोरी हो सकती है।

हिंदुस्तान में बहुत दिन तक वैसा हुआ। बौद्धों के पास कुछ सूत्र थे, जो हिंदुओं के पास नहीं थे। तो हिंदू बौद्ध भिक्षु बनकर वर्षों तक बौद्ध गुरुओं की शरण में रहे, ताकि कुछ सूत्र वहा से पाए जा सकें। कुछ सूत्र हिंदुओं के पास थे, जो जैनों या बौद्धों के पास नहीं थे। तो जैन और बौद्ध, हिंदू बनकर वर्षों तक हिंदू गुरुओं की शरण में रहे, ताकि कहीं से कुछ पाया जा सके। और जैसे ही उन्होंने पा लिया, वह दूसरी परंपरा को दे दिया गया।

हजारों साल से खोज चलती है। उस खोज में ठीक और गलत सब तरह के लोग लगे हुए हैं।

रासपुतिन ने भी सूत्र खोज लिए। और मनुष्य तो शक्तिशाली था। क्योंकि सूत्रों से ही कुछ नहीं होता। आपको अगर कुंजी भी दे दी जाए, तो आप इतने कमजोर हैं कि कुंजी हाथ में रखे बैठे रहेंगे, ताले तक भी कुंजी नहीं पहुंचाएंगे। या भरोसा ही न करेंगे कि कुंजी खोल भी सकती है कुछ। या कुंजी को कुछ और समझते रहेंगे। या जहा ताला नहीं है, वहा कुंजी लगाते रहेंगे।

लेकिन रासपुतिन अथक चेष्टा किया, और उसने कुछ पाया। और उसे पाकर उसने श्रम भी किया उस पर। और एक बडी अनूठी क्षमता बुराई की उसने पैदा कर ली। रासपुतिन प्रतीक बन गया इस सदी में बुरे से बुरे आदमी का। लेकिन बड़ा शक्तिशाली था।

ध्यान रहे, हृदय की शुद्धि अत्यंत अपरिहार्य है।

इसलिए बुद्ध ने तो अपने शिष्यों को पहले चार ब्रह्मविहार साधने को कहा है। जब तक ये चार ब्रह्मविहार न सध जाए—ब्रह्मविहार, जब तक ब्रह्म में इनके द्वारा विहार न होने लगे—तब तक कोई योगिक साधना नहीं करनी है। तो करुणा पहले सध जाए; मैत्री पहले सध जाए; मुदिता पहले सध जाए; उपेक्षा पहले सध जाए।

ये चार : करुणा, मैत्री, मुदिता, उपेक्षा। क्योंकि जिसकी करुणा गहन है, वह किसी को नुकसान न पहुंचा सकेगा। जिसकी मैत्री की भाव—दशा है, उसके लिए कोई शत्रु न रह जाएगा। और मुदिता का 'अर्थ है, प्रफुल्लता, प्रसन्नता। जो प्रसन्न है और प्रफुल्ल है, वह किसी को दुखी नहीं करना चाहता। सिर्फ दुखी आदमी ही दूसरे को दुखी करना चाहता है।

तो जब भी आप किसी को दुखी करना चाहते हों, समझना कि आप दुखी हैं। आनंदित आदमी किसी को दुखी नहीं करना चाहता। आनंदित आदमी चाहता है, सभी आनंदित हो जाएं। आनंदित आदमी आनंद को बांटना और फैलाना चाहता है। जो हमारे पास है, वही हम बांटते हैं; उसी को हम फैलाते हैं।

इसलिए बुद्ध ने मुदिता को अनिवार्य कहा। क्योंकि जब तक तुम प्रसन्नचित्त न हो जाओ, तब तक तुम खतरनाक हो।

दुखी आदमी खतरा है। वह किसी को सुखी नहीं देखना चाहेगा। दुखी आदमी चाहता है कि सब लोग मुझसे ज्यादा दुखी हों, तभी उसको लगता है कि मैं थोड़ा सुखी हूं? तुलना में।

और चौथा बुद्ध ने कहा, उपेक्षा, इनडिफरेंस। बुद्ध ने कहा, जब ऐसी उपेक्षा सध जाए कि जीवन हो या मृत्यु, बराबर मालूम पड़े। सुख हो या दुख, समान मालूम पड़े। हानि हो या लाभ, सफलता हो या विफलता, कोई चिंता न रह जाए। इन चार ब्रह्मविहारो के सध जाने के बाद साधक योग में प्रवेश करे।

इसलिए पतंजलि ने भी आठ यम—नियम की पहले ही व्यवस्था दी है। और इसके पहले कि धारणा, ध्यान और समाधि के अंतिम तीन चरण आएं, पांच चरणों में हृदय का पूरा रूपांतरण है। वे जो पांच प्राथमिक चरण हैं, जब तक उनसे हृदय का रूपांतरण न होता हो, तब तक तीन चरण, पतंजलि राजी नहीं हैं।

अभी पश्चिम में पूरब से कई कुंजियां पहुंच रही हैं। जैसे महेश योगी ध्यान की एक पद्धति पश्चिम ले गए। तो उन्होंने बाकी सारे यम—नियम अलग कर दिए। सिर्फ मंत्र—योग। उसका परिणाम होता है, लेकिन खतरनाक है। आग के साथ खेलना है। और लोग जल्दी उत्सुक होते हैं, क्योंकि न कोई नियम है, न कोई साधना है। बस, एक बीस मिनट बैठकर एक मंत्र—जाप कर लेना है; पर्याप्त है। तुम चोर हो, तो अंतर नहीं पड़ता; तुम बेईमान हो, तो अंतर नहीं पड़ता। तुम हत्यारे हो, तो अंतर नहीं पड़ता। बीस मिनट मंत्र—जाप कर लेना है।

उस मंत्र—जाप से शांति मिलती है, क्योंकि मंत्र मन को संगीत से भर देता है। लेकिन ध्यान रहे, हत्यारे को शांति मिलनी उचित नहीं है। क्योंकि हत्यारे की पीड़ा क्या है? कि उसने हत्या की है! यह उसकी पीड़ा है; यह अपराध उसके ऊपर है। इसको अगर शांति मिल जाए, यह दूसरी हत्या करेगा। इसको अशांत होना उचित है, यह इसके कर्म का सहज परिणाम है। और यह अशांत रहे, पीड़ा भोगे, तो शायद हत्या से बचेगा।

चोर को शांति मिलनी उचित नहीं है। उसके हृदय की धड़कन बढ़ी ही रहनी चाहिए। क्योंकि जैसे ही उसको शांति मिलती है, वह दुबारा चोरी करेगा। और करेगा क्या? बुरे आदमी को शांति मिलनी उचित नहीं है। यह ऐसे ही है, जैसे बुरे आदमी को स्वास्थ्य मिलेगा, तो वह करेगा क्या?

जीसस के जीवन में एक बड़ी प्यारी कथा है। और वह यह है कि जीसस एक गांव से गुजरे। उन्होंने एक आदमी को एक वेश्या के पीछे भागते हुए देखा। तो उन्होंने उस आदमी को रोका, क्योंकि चेहरा उसका पहचाना हुआ मालूम पड़ा। और जीसस ने कहा कि अगर मैं भूलता नहीं हूं तो जब मैं पहली दफा आया, तुम अंधे थे। और मेरे ही स्पर्श से तुम्हारी आंखें वापस लौटीं। और अब तुम आंखों का क्या कर रहे हो! वेश्या के पीछे भाग रहे हो?

उस आदमी ने कहा, हे प्रभु, मैं तो अंधा था। तुमने ही मुझे आंखें दीं। अब मैं इन आंखों का और क्या करूं? आंखें रूप देखने के लिए हैं। और अगर मैं तुम्हारे पास आंखें मांगने आया था, तो इसीलिए मांगने आया था कि आंखों से रूप देख सकूं।

जीसस ने सोचा भी नहीं होगा कि जिसको आंखें दी हैं, वह आंखों का क्या करेगा। सभी आदमी आंखों का एक ही उपयोग नहीं कर सकते। उपयोग तो आदमियों पर निर्भर होगा। आंखें तो उपकरण हैं।

तो अगर मंत्र—जाप से बेईमान को शांति मिले, तो वह बेईमानी में और कुशल हो जाएगा। खतरनाक है यह बात। और मंत्र—जाप से अगर धन की दौड़ में कोई आदमी लगा है, उसको शांति मिले, तो उसकी धन की दौड़ और

कुशल हो जाएगी; और क्या होगा! और महेश योगी से लोग पूछते हैं, तो वे कहते हैं, बिलकुल ठीक है। तुम जहा भी जा रहे हो, तुम जो भी कर रहे हो, उसमें ध्यान से सफलता मिलेगी।

निश्चित सफलता मिलेगी। लेकिन तुम कहां जा रहे हो, यह पूछ लेना जरूरी है। तुम क्या कर रहे हो, यह पूछ लेना जरूरी है। सभी सफलताएं सफलताएं नहीं हैं। बुरे काम में विफल हो जाना बेहतर है। बुरे काम में सफल हो जाना बेहतर नहीं है। तो सफलता अपने आप में कोई मूल्य नहीं है।

लेकिन यह परिणाम पश्चिम में घटित होगा, क्योंकि कोई भी यम और नियम के लिए तो राजी नहीं है। लोग चाहते हैं, जैसे वे

इंस्टैंट काफी बना लेते हैं, वैसा इंस्टैंट मेडिटेशन हो! एक पांच मिनट में काम किया, और उस काम के लिए भी कुछ करना नहीं है। आप हवाई जहाज में उड़ रहे हों, तो भी मंत्र—जाप कर सकते

हैं। कार में चल रहे हों, तो भी मंत्र—जाप कर सकते हैं। ट्रेन में बैठे हों, तो भी मंत्र—जाप कर सकते हैं। उसमें कोई कुछ आपको बदलना नहीं है। सिर्फ एक तरकीब है, जिसका उपयोग करना है। वह तरकीब आपको भीतर शांत करेगी। वह शांति आत्मज्ञान नहीं बन सकती। वह शांति अक्सर तो आत्मघात बनेगी। क्योंकि आपके पास जो व्यक्तित्व है, वह खतरनाक है। वह उस शांति का उपयोग करेगा।

इसलिए अगर पतंजलि और बुद्ध और महावीर ने ध्यान के पूर्व कुछ अनिवार्य सीढ़ियां रखी हैं, तो अकारण नहीं रखी हैं। गलत आदमी के पास शक्ति न पहुंचे, इसलिए। और गलत आदमी अगर चाहे, तो पहले ठीक होने की प्रक्रिया से गुजरे। और उसके हाथ में चाबी तभी आए, जब कोई दुरुपयोग, अपने लिए या दूसरों के लिए, वह न कर सके।

यही सवाल नहीं है कि दूसरों के लिए आप हानि पहुंचा सकते हैं, खुद को भी पहुंचा सकते हैं। गलत आदमी खुद को भी पहुंचाएगा।

सच तो यह है कि बिना खुद को हानि पहुंचाए, कोई दूसरे को हानि पहुंचा ही नहीं सकता। इसका कोई उपाय ही नहीं है। इसके पहले कि मैं आपको आग लगाऊं, मुझे खुद जलना पड़ेगा। इसके पहले कि मैं आपको जहर पिलाऊं, मुझे खुद पीना पड़ेगा। जो मैं दूसरों के साथ करता हूं वह मुझे अपने साथ पहले ही कर लेना पड़ता है।

दूसरा प्रश्न :
साधन तत्व को अभ्यास और वैराग्य, ऐसे दो भागों में बांटने का क्या कारण है? क्या वे एक ही चीज के दो छोर नहीं हैं? क्या सम्यक साधना पद्धति के अभ्यास से वैराग्य का उदय अवश्यंभावी नहीं है? और वैराग्य क्या स्वयं एक साधन पद्धति नहीं है?
अभ्यास और वैराग्य बड़ी भिन्न बातें हैं। वैराग्य तो एक भाव है; और अभ्यास एक प्रयत्न, एक यत्न है। वैराग्य तो आपको कई बार अनुभव होता है। लेकिन उसकी हल्की झलक आती है। उसको अगर आप अभ्यास न बना सकें, तो वह खो जाएगा। अभ्यास का अर्थ है कि जिस वैराग्य की झलक मिली है, वह झलक न रह जाए, उसकी गहरी लकीर हो जाए आपके भीतर।

जैसे कि आप धन के लिए दौड़ते थे। और धन आपको मिल गया। धन के मिलने के बाद आपके मन में विषाद आएगा। क्योंकि आप पाएंगे कि कितनी आशा की थी, आशा तो कुछ पूरी न हुई! कितने सपने संजोए थे, वे सब सपने तो धूल में मिल गए! धन हाथ में आ गया। कितना नहीं सोचा था आनंद मिलेगा; वह आनंद तो कुछ मिला नहीं!

तो जो भी धन को पा लेगा, उसके पीछे एक छाया आएगी, जहा वैराग्य का अनुभव होगा। उसे लगेगा, धन बेकार है। लेकिन अगर इसे अभ्यास न बनाया, तो यह झलक खो जाएगी। और मन फिर कहेगा कि आनंद इसलिए नहीं मिल रहा है, क्योंकि धन आनंद के लिए पर्याप्त नहीं है, और चाहिए। दस हजार ही हैं, दस लाख ही हैं, करोड़ चाहिए।

करोड़ भी मिल जाएंगे एक दिन, कुछ अड़चन नहीं है। तब फिर वैराग्य का उदय होगा। फिर लगेगा कि वे सब इंद्रधनुष खो गए। वह सब मृग—मरीचिका हाथ नहीं आई। फिर खाली के खाली हैं। और इतना जीवन गया मुफ्त! क्योंकि धन कोई ऐसे ही नहीं मिलता, जीवन से खरीदना पड़ता है। खुद को बेचो, तो धन मिलता है। जितना खुद को मिटाओ, उतना धन इकट्ठा होता है।

तो आत्मा नष्ट होती जाती है, सोने का ढेर लगता जाता है। फिर विषाद पकड़ेगा; फिर वैराग्य लगेगा; लेकिन उसकी झलक ही आएगी। मन फिर जोर मारेगा कि छोड़ो भी, एक करोड़ से कहीं दुनिया में सुख मिला है! यह वही मन है, जो दस लाख पर कहता था, करोड़ से मिलेगा। यह वही मन है, जो दस हजार पर कहता था, दस लाख पर मिलेगा। यह वही मन है, जो दस पैसे पर कहता था, दस हजार पर मिलेगा।

जब तक कोई पूरा अध्ययन न करे अपने जीवन की घटनाओं का; और वैराग्य की जो झलकें आती हैं, उनको पकड़ न ले, और फिर उन वैराग्य की झलकों का अभ्यास न करे..। अभ्यास का मतलब है, उनकी पुनरुक्ति, उनका बार—बार स्मरण, उनकी चोट निरंतर भीतर डालते रहना। और जब भी मन पुराना धोखा दे, तो वैराग्य का स्मरण खड़ा करना।

तो एक घटना बनेगी। जब वैराग्य पानी पर खींची लकीर न होगा, पत्थर पर खींची लकीर हो जाएगा। और उसी वैराग्य के सहारे मन का अंत होगा, नहीं तो मन का अंत नहीं होगा। एक—एक बूंद वैराग्य इकट्ठा करना होगा। उसका नाम अभ्यास है।

यह बड़े मजे की बात है कि वैराग्य तो सभी को आता है; ऐसा आदमी ही खोजना मुश्किल है, जिसको वैराग्य न आता हो। हर संभोग के बाद वैराग्य आता है। हर संभोग के बाद ब्रह्मचर्य की आकांक्षा उठती है। हर बार ज्यादा खा लेने के बाद उपवास की सार्थकता दिखाई पड़ती है। हर बार क्रोध करके पश्चात्ताप उठता है। हर बार बुरा करके न करने की प्रतिज्ञा मन में आती है। पर क्षणभर को रहती है, यह बात। मन प्रबल है, क्योंकि मन का अभ्यास जन्मों—जन्मों का है।

तो दो तरह के अभ्यास हैं जगत में। एक मन का अभ्यास और एक वैराग्य का अभ्यास। तो आप मन का अभ्यास तो पूरी तरह करते हैं। वैराग्य मन का विपरीत है। वैराग्य का मतलब यह है कि मन का एंटीडोट। वह मन जब भी नया धोखा खड़ा करे, तब आपको वैराग्य की स्मृति खड़ी करनी है। यह तो मैं पहले भी सुन चुका, यह तो मैं पहले भी कर चुका; यह तो मेरा अनुभव है और परिणाम क्या हुआ?

निरंतर परिणाम का चिंतन पुराने अनु_भव की स्मृति है, और पुरानी झलकों का संग्रह है। इसको जब कोई साधता ही चला जाता है, तो धीरे— धीरे मन के विपरीत एक नई शक्ति का निर्माण होता है। जो मन के लिए नियंत्रण बन जाता है, और मन के लिए साक्षी बन जाता है; और मन की जो पताल दौड़ है, उसे तोड्ने में सहयोगी हो जाता है। कई बार मन आपको पकड लेगा फिर—फिर। लेकिन अगर वैराग्य का थोड़ा—सा संग्रह है, तो पुन: स्मरण आ जाएगा और आप रुक सकेंगे।

अभ्यास का केवल इतना ही अर्थ है, जीवन में जो सहज वैराग्य की झलक आती है, उसको संजो लेना है, इकट्ठा कर लेना है; उसकी शक्ति निर्मित कर लेनी है। और अभ्यास के उपाय हैं।

मृत्यु तो आपको कई दफा अनुभव होती है, लेकिन हमने ऐसी व्यवस्था कर ली है कि उसके अनुभव की हमें चोट नहीं लगती।

कोई कहता है, कोई मर गया। अगर वह कोई बहुत निकट का नहीं है, तो हम कहते हैं, बुरा हुआ। बात समाप्त हो गई। उसके बाद हमारे मन में कुछ भी नहीं होता। कोई बहुत निकट का मर गया, तो दिन दो दिन खयाल में रहता है। कोई बहुत ही निकट का मर गया—कि पत्नी चल बसी, कि बेटा, कि पति, कि पिता—तो थोड़ी चोट लगती है कुछ दिन। यह हमने इंतजाम किया है।

यह इंतजाम ऐसा ही है, जैसे ट्रेन में बफर लगे होते हैं। दो रेल के डब्बों के बीच में बफर लगे रहते हैं, ताकि धक्का बफर पी जाएं और यात्रियों को धक्का न लगे। कार में स्प्रिंग लगे रहते हैं कि गड्ढा आए, तो स्प्रिंग गड्ढे के धक्के को पी जाएं, भीतर बैठे यात्री को धक्का न लगे।

तो हमने अपने चारों तरफ बफर लगा रखे हैं। चोट आए, तो बफर पी जाए। तो अगर मुसलमान मर गया, तो हिंदू के लिए बफर है कि ठीक है, मुसलमान था, मर गया तो क्या हर्ज है! पहले ही मर जाना चाहिए था। आदमी बुरा था। और होने से कोई लाभ भी नहीं था। हिंदू मर गया, तो मुसलमान के लिए बफर है। नीग्रो मर जाए, तो अमेरिकी को फिक्र नहीं। अमेरिकी मरे, तो नीग्रो को प्रसन्नता है। ये हमने बफर पैदा किए हैं। शत्रु मर जाए, तो ठीक। इन सब बफर के बाद दो—चार लोग ही बचते हैं हमारे आस—पास, जिनकी मौत से हमको थोड़ी—बहुत चोट पहुंचेगी। नहीं तो हर एक की मौत से चोट पहुंचती है। क्योंकि कौन मरता है, इससे क्या फर्क पड़ता है। मौत घटती है। और मौत की चोट पहुंचती है, और वैराग्य का उदय होता है। लेकिन हमने तरकीबें बना रखी हैं।

फिर जो हमारे बिलकुल निकट हैं, उनसे भी बचने के लिए हमने बफर बना रखे हैं। अगर पत्नी भी मर जाए, तो भी हम कहते हैं, जल्दी ही मिलना होगा, स्वर्ग में मिलेंगे। थोड़े ही दिन की बात है। और आत्मा अमर है, इसलिए पत्नी कुछ मरी नहीं है। यह तो सिर्फ शरीर छूट गया है। कोई रास्ता हम खोज लेते हैं।

बेटा मर जाए, तो हम कहते हैं, परमात्मा, जो प्यारे लोग हैं, उनको जल्दी उठा लेता है। यह बफर है। इससे हम अपने को राहत देते हैं, कसोलेशन देते हैं। इससे सांत्वना बना लेते हैं कि ठीक है, परमात्मा के लिए प्यारा होगा, इसलिए बेटे को उठा लिया। आपका बेटा परमात्मा को प्यारा होना ही चाहिए! सिर्फ गलत लोग ज्यादा जीते हैं। अच्छे लोग तो जल्दी मर जाते हैं। कि अपना कोई कर्म होगा, जिसकी वजह से दुख भोगना पड़ रहा है।

मौत को बचाते हैं; कुछ और चीजें बीच में ले आते हैं। कर्म का फल है, इसलिए भोगना पड़ रहा है। अब फल है, तो भोगना पड़ेगा। तो मौत को हटा दिया, डायवर्शन पैदा हो गया। अब हम कर्म की बात सोचने लगे। लड़का, मौत, अलग हट गई। थोड़े दिन में सब भूल जाएगा, हम अपने काम— धंधे में लग जाएंगे।

इस तरह हमने बफर हर चीज में खड़े कर रखे हैं और वैराग्य उदय नहीं हो पाता।

अभ्यास का अर्थ है, बफर का तोड़ना। और हर जगह से, जहा से भी सूरज की किरण मिल सके, वैराग्य की किरण मिल सके, वहा से उसे भीतर आने देना। सब तरफ खुले होना।

बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहते थे, मरघट पर जाओ। पहला ध्यान मरघट पर। और तीन महीने मरघट पर रहो। भिक्षु कहते, लेकिन मरघट पर जाने की क्या जरूरत है? ध्यान यहीं कर सकते हैं! बुद्ध कहते, यहां न होगा। तुम मरघट पर ही बैठो दिन—रात। चिताएं जलेंगी, लोग आएंगे—जाएंगे; तुम वहीं ध्यान करना।

तीन महीने जो मरघट पर बैठकर ध्यान कर लेता, उसके मौत के संबंध में जितने बफर होते, सब टूट जाते। तब वह यह नहीं देखता, कौन मरा। मौत दिखाई पड़ती। कौन का कोई संबंध नहीं रह जाता। और चौबीस घंटे मरघट पर बैठे—बैठे यह असंभव है तीन महीने में कि आपको यह समझ में न आ जाए कि यह देह आज नहीं कल जलेगी। यह असंभव है कि आपको सपने न आने लगें कि आप जलाए जा रहे हैं चिता पर, तीन महीने मरघट में रहने पर। यह असंभव है कि मौत इतनी प्रगाढ़ न दिखाई पड़ने लगे कि जीवन का रस खो जाए।

तो मौत का अभ्यास हो जाएगा मरघट पर। अभ्यास से वैराग्य उदय होगा, घना होगा। जीवन के साथ जो हमारे राग के, लगाव के संबंध हैं, वे क्षीण और शिथिल हो जाएंगे।

अगर बुद्ध के जमाने में एक्सरे रहा होता, तो वे कहते कि अपनी पत्नी का एक्सरे अपने साथ रखो। और जब भी पत्नी की याद आए एक्सरे देखो, तो समझ में आएगा कि देह कितनी सुंदर है। लोग फोटो रखते हैं। फोटो रखना ठीक नहीं है। एक्सरे की कापी रख लेना एकदम अच्छा है। और जब भी मन में आ जाए तो फिर—फिर उसको देख लेना उचित है।

तो एक्सरे की फोटो अभ्यास बन जाएगी। उससे वैराग्य का जन्म होगा; सघन होगा। फिर धीरे— धीरे पत्नी को भी देखेंगे, तो आपके पास एक्सरे वाली आंखें हो जाएंगी। तो उसकी सुंदर चमड़ी के पीछे हड्डियां दिखाई पड़ने लगेंगी। जब उसको छाती से लगाएंगे, तो आपको अस्थिकंकाल छूता हुआ मालूम पड़ेगा।

ये बफर तोड़ने हैं और वैराग्य को जन्माना है। और उसका निरंतर अभ्यास चाहिए। क्योंकि मन का पुराना अभ्यास है। और मन से संघर्ष है। मन को काटना है। मन बहुत सबल है। आपने ही उसको सबल किया है।

अब हम सूत्र को लें।

और हे अर्जुन, जो तेज सूर्य में स्थित हुआ संपूर्ण जगत को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चंद्रमा में स्थित है और जो तेज अग्नि में स्थित है, उसको तू मेरा ही तेज जान।

और मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके अपनी शक्ति से सब भूतों को धारण करता हूं और रस—स्वरूप अर्थात अमृतमय सोम होकर संपूर्ण औषधियों को अर्थात वनस्पतियों को पुष्ट करता हूं।

मैं ही सब प्राणियों के शरीर में स्थित हुआ वैश्वानर अग्निरूप होकर प्राण और अपान से युक्त अन्न को पचाता हूं। और मैं ही सब प्राणियों के हृदय में अंतर्यामीरूप से स्थित हूं तथा मेरे से ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन अर्थात संशय—विसर्जन होता है और सब वेदों द्वारा मैं ही जानने योग्य हूं तथा वेदांत का कर्ता और वेदों को जानने वाला भी मैं ही हूं।

कुछ बातें। पहली बात, कृष्ण के ये सारे सूत्र अर्जुन का समर्पण संभव हो सके, इसके लिए हैं। कृष्ण ये सारी बातें कह रहे हैं उस एक केंद्र की ओर इशारा करने को, जो सबका आधार है।

और अगर वह आधार हमें दिखाई पड़ने लगे, तो हम उस आधार की शरण सहज ही जा सकेंगे। अगर हमारी बुद्धि को उसकी झलक भी मिलने लगे, तो हम अपने होने का आग्रह, और अपने आपको कुछ समझने का आग्रह, अस्मिता और अहंकार की आति हमारी छूटनी शुरू हो जाएगी।

तो कृष्ण जब बार—बार यह कहते हैं कि मैं यह हूं मैं यह हूं मैं यह हूं तो बहुत—से पढ़ने वालों को गीता में ऐसा लगता है कि कृष्ण बड़े अहंकारी हैं। यह आदमी अजीब है। यह क्यों कहे चला जाता है कि सभी चांद—सूरज की रोशनी मैं हूं! कि सभी रसों में छिपा हुआ रस मैं हूं! कि सभी प्राणों में धड़कता प्राण मैं हूं!

आज के जमाने में तो गीता जैसी किताब लिखनी बड़ी मुश्किल हो जाए; कहनी भी मुश्किल हो जाए। फौरन पत्थर पड़ जाएं। क्योंकि लोग कहें कि दिमाग खराब है आपका! सभी कुछ आप हैं?

और अगर हिंदुओं को गीता पढ़ते वक्त यह खयाल नहीं आता, तो बफरों के कारण। उनको लगता है, कृष्ण भगवान हैं, इसलिए ठीक है। लेकिन मुसलमान जब गीता पढ़ता है, तो उसे फौरन खयाल आता है कि यह आदमी ठीक नहीं मालूम पड़ता। जैन जब पढ़ता है, तो उसे फौरन समझ में आता है कि यह आदमी अहंकारी है।

हिंदू सोच लेता है कि भगवान हैं, ठीक है। बाकी अगर वह भी विचार करेगा, तो उसको भी लगेगा कि यह बात क्या है? कृष्ण क्यों इतना जोर देते हैं कि मैं ही सब कुछ हूं?

और आपको अगर ऐसा लगे कि कृष्ण अहंकारी हैं, इतना जोर अपने मैं पर देते हैं, तो समझना कि यह चोट आपके अहंकार को लग रही है। यह आपका अहंकार क्रुद्ध हो रहा है।

कृष्ण का क्या प्रयोजन होगा? कृष्ण क्यों इतना जोर दे रहे हैं स्वयं पर? कृष्ण के जोर का कारण आप समझ लें।

कृष्ण का जोर स्वयं पर नहीं है; कृष्ण का जोर अर्जुन मिट जाए, इस पर है। पर इसके लिए एक ही उपाय है कि अर्जुन का केंद्र अर्जुन के बाहर हट जाए। अर्जुन का केंद्र अर्जुन के भीतर न हो, कहीं बाहर हो जाए। कृष्ण की यह सारी चेष्टा इसीलिए है कि अर्जुन देख पाए कि उसके भीतर जो मैं की आवाज है, वह व्यर्थ है; और वह संपूर्ण के केंद्र पर समर्पित हो जाए।

अर्जुन ने कहीं भी यह सवाल नहीं उठाया कि आप इतने अहंकार की बातें क्यों कर रहे हैं! यह भी जरा आश्चर्यजनक है। क्योंकि अर्जुन बुद्धिमान है; जैसा सोफिस्टिकेटेड होना चाहिए, उतना है। सुशिक्षित है, सुसंस्कारी है। उस समय के प्रतिभावान व्यक्तियों में एक है। मेधावी है। नहीं तो कृष्ण की मित्रता का कोई अर्थ भी न था। और कृष्ण जिसके सारथी बनने को राजी हो गए हैं, वह कोई साधारण गंवार नहीं है। पर अर्जुन एक बार भी नहीं कहता कि आप क्यों अपने अहंकार की घोषणा किए जा रहे हैं!

कृष्ण अर्जुन से कह सके, क्योंकि अर्जुन का एक प्रेम, एक सतत प्रेम कृष्ण के प्रति है। और जहा प्रेम हो, वहां हम समझ पाते हैं कि यह जो कहा जा रहा है इसमें कोई अहंकार नहीं है। और प्रेम हो, तो यह भी हम समझ पाते हैं कि यह मेरे लिए कहा जा रहा है। तो अर्जुन को पूरे समय यह लगा है कि मैं मिट जाऊं, इसकी चेष्टा के लिए कृष्ण अपने मैं को बड़ा कर रहे हैं। वे अपने मैं को खड़ा कर रहे हैं, ताकि मेरा मैं उस बड़े मैं में खो जाए। वे अपने मैं के विराट रूप को मुझे दे रहे हैं, ताकि मैं एक बूंद की तरह उस सागर में खो जाऊं।

यह सिर्फ एक उपाय है। अर्जुन मिट सके, राजी हो सके मिटने को, इसके लिए यह सिर्फ एक सहारा है।

प्रत्येक गुरु अपने शिष्य को यह सहारा देगा ही। जिस दिन शिष्य मिट जाएगा, उस दिन गुरु हंसकर उससे भी कह देगा कि तुम भी नहीं हो, मैं भी नहीं हूं।

लेकिन उसके पहले यह नहीं कहा जा सकता। यह बड़ी अड़चन की बात है। क्योंकि गुरु अगर यह कह दे, मैं भी नहीं हूं तुम भी नहीं हो, तो शिष्य यह तो मान लेगा कि तुम नहीं हो, यह नहीं मान सकता कि मैं नहीं हूं। क्योंकि यह मानना बहुत कठिन बात है। यह तो कोई भी मान लेगा कि तुम नहीं हो, बिलकुल ठीक है, सच है। यह तो हम पहले ही जानते थे। इसलिए जो गुरु कहे, मैं नहीं हूं? शिष्य बिलकुल राजी होगा।

कृष्णमूर्ति के पास वैसी घटना रोज घट रही है। कृष्णमूर्ति उलटा प्रयोग कर रहे हैं, ठीक कृष्ण से उलटा। लेकिन वह प्रयोग सफल नहीं हो रहा है। वह सफल नहीं हो सकता। उस सफलता के लिए तो अर्जुन से भी श्रेष्ठ शिष्य चाहिए, जो कि बड़ा मुश्किल मामला है।

कृष्णमूर्ति कहते हैं, न मैं गुरु हूं न मैं अवतार हूं; मैं कोई भी नहीं हूं। वे जो शिष्य बैठकर सुनते हैं, वे बड़े प्रसन्न होते हैं। वे कहते हैं, बिलकुल ठीक है। लेकिन इससे यह खयाल नहीं आता उनको कि हम भी नहीं हैं। अपने मैं से भरकर लौटते हैं, घटकर नहीं।

और एक खतरा हो जाता है कि अब जहा भी कृष्ण मिल जाएंगे उनको, और कृष्ण कहेंगे कि मैं हूं प्राणों का प्राण; मैं हूं ज्योतियों की ज्योति। वे कहेंगे, आपका दिमाग खराब है। क्योंकि कृष्णमूर्ति ने कहा है कि मैं कुछ भी नहीं हूं। ज्ञानी तो सदा यह कहते हैं कि मैं कुछ भी नहीं हूं।

ज्ञानी सदा जानते हैं कि वे कुछ भी नहीं हैं। लेकिन अज्ञानियों से बात करना जोखम का काम है।

कृष्ण इतने जोर से कह रहे हैं कि मैं यह हूं ताकि अर्जुन को प्रतीति होने लगे कि वह कुछ भी नहीं है।

यह ठीक वैसा ही है, जैसा कि एक बड़ी प्रसिद्ध घटना है, जो आपने सुनी होगी कि अकबर ने एक लकीर खींच दी दीवाल पर और अपने दरबारियों को कहा कि इसे बिना छुए छोटा कर दो। वे नहीं कर पाए क्योंकि बुद्धि सीधी कहेगी

कि बिना छुए कैसे छोटी होगी? हाथ लगाना पड़े, पोंछना पड़े। लेकिन बीरबल ने एक बड़ी लकीर उसके पास खींची। उस लकीर को नहीं छुआ, लेकिन वह छोटी हो गई।

ये कृष्ण इतना ही कर रहे हैं कि अर्जुन की लकीर के पास एक बहुत बड़ी लकीर खींच रहे हैं, कृष्ण की लकीर। वह अर्जुन का मैं है, छोटा—सा टिमटिमाता दीया; और कृष्ण कह रहे हैं, सूर्यों का सूर्य मैं हूं। तू इधर देख, तू इस तरफ मुड़, तू कहां छोटे—से दीए

की टिमटिमाती लौ! और मिट्टी का तेल—वह भी मिलना मुश्किल—उसमें तू कब तक टिमटिमाता रहेगा, इस तरफ देख। और अर्जुन का प्रेम है इतना कृष्ण के प्रति, वह देख सकता है। इतना भरोसा है कि यह आदमी कह रहा है, तो कोई सूरज होगा उसमें। और सूरज सबके भीतर छिपा है, इसलिए अड़चन कुछ भी नहीं है। अगर अर्जुन भाव से देख ले, तो कृष्ण के भीतर का सूरज दिख जाएगा। और जिस दिन कृष्ण के भीतर का सूरज दिखेगा, वह अपने टिमटिमाते दीए को छोड़ देगा।

टिमटिमाता दीया छूट जाए तो अपने भीतर का सूरज भी दिखेगा। लेकिन यह गुरु जो है, वाया मीडिया है। अपने ही भीतर के सूरज को देखना अति कठिन है। क्योंकि अपनी नजर तो अपने दीए पर ही लगी है। इस दीए का बुझना जरूरी है। यह गुरु के सहारे बुझ जाएगा। और एक बार बुझ जाए, तो गुरु के सूरज को देखने की कोई जरूरत नहीं है, अपना सूरज भी दिखाई पड़ने लगेगा।

हम दीए से आविष्ट होकर बैठे हैं। हमारी हालत ऐसी है, सूरज निकला है खुले मैदान में, हम अपना दीया रखे उस पर आंख गड़ाए बैठे हैं। इतने जन्मों से आंख गड़ाए हैं कि हिप्नोटाइज्ड हो गए हैं। वह दीया ही दिखाई पड़ता है। और दीया देखते—देखते आंखें भी इतनी छोटी हो गई हैं कि अगर एक दफे सूरज की तरफ देखें, तो अंधेरा ही दिखाई पड़ेगा।

कृष्ण का सहारा सिर्फ इतना है कि आहिस्ता से अर्जुन को उसके दीए से हटा लें। और एक बार वह सूरज कृष्ण का देख ले, तो वह कृष्ण का सूरज नहीं है, वह सभी का सूरज है; वह सभी के भीतर बैठा है। इसे खयाल में रखें।

और हे अर्जुन, जो तेज सूर्य में स्थित हुआ संपूर्ण जगत को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चंद्रमा में स्थित है और जो तेज अग्नि में स्थित है, उसको तू मेरा ही तेज जान। और मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके अपनी शक्ति से सब भूतों को धारण किए हूं और रस—स्वरूप अर्थात अमृतमय सोम होकर संपूर्ण औषधियों को अर्थात वनस्पतियों को पुष्ट करता हूं।

सोम दो अर्थ रखता है। एक तो सोम का अर्थ है, चंद्रमा। हिंदुओं का जो रस—विज्ञान है, उसमें औषधियों को जो पुष्टि मिलती है, वह चंद्रमा से मिलती है। सूर्य उनको प्राण देता है। सूर्य के बिना औषधियां बड़ी नहीं होंगी, वनस्पतिया बड़ी नहीं होंगी; वृक्ष बड़े नहीं होंगे। सूरज उन्हें प्राण देता है। लेकिन जो रस है, जो उनमें जीवनदायी तत्व है, वह उन्हें चांद से मिलता है; वह चांद के द्वारा मिलता है।

यह बात काल्पनिक समझी जाती थी आज तक कि आयुर्वेद और हिंदुओं की यह जो रस—विद्या है, यह काव्य है, प्रतीक है। लेकिन इधर पचास वर्षों में जो खोजबीन हुई है, उससे सिद्ध हो रहा है कि चांद निश्चित ही प्राण देने वाला है।

और सूरज जो कुछ भी देता है, उसमें एक उत्तेजना है, और चांद जो भी देता है, उसमें एक शांति है। इसलिए जितनी शांत औषधियां हैं, उन सब में चांद छिपा है। और जो सर्वाधिक शांतिदायी औषधि थी, इसी कारण—वह दूसरा अर्थ है सोम का—उसे हम सोम—रस कहते थे।

पश्चिम में वैज्ञानिक बड़ी खोज में लगे हैं कि वेदों ने जिसको सोम—रस कहा है, वह क्या है? पच्चीसों प्रस्ताव किए गए हैं, पच्चीसों दावे किए गए हैं कि यह वनस्पति सोम—रस होनी चाहिए। कुछ लक्षण मिलते हैं, लेकिन पूरे लक्षण किसी

वनस्पति से नहीं मिलते। संभावना इस बात की है कि वह वनस्पति पृथ्वी से खो गई। या हिंदुओं ने उसे विलुप्त कर दिया।

काफी काम इस समय विज्ञान में चलता है। बड़े ग्रंथ लिखे जाते हैं, बड़ी शोध की जाती है सोम की खोज के लिए। क्यों? क्योंकि पश्चिम में इधर तीस वर्षों में वनस्पति के द्वारा, औषधि के द्वारा, रसायन के द्वारा समाधि कैसे प्राप्त की जाए, इस संबंध में बड़ा आंदोलन है। तो एल. एस डी., मारिजुआना, मेस्कलीन, इन सब की बड़ी पकड़ है। और सारी गवर्नमेंट्स डर गई हैं, सारी दुनिया में रुकावट लगा दी गई है कि कोई भी इन चीजों को न ले।

और यह बड़े मजे की बात है कि शराब सबसे ज्यादा खतरनाक है, लेकिन शराब सब जगह प्रचलित है! और ये औषधियां शराब जैसी खतरनाक नहीं हैं, लेकिन इन पर भारी रोक है। और डर इस बात का है कि ये औषधियां व्यक्ति में ऐसे क्रांतिकारी फर्क ले आती हैं कि आज का जो समाज है, वह उस व्यक्ति का उपयोग नहीं कर सकेगा।

जैसे अगर युवक एल. एस डी, मारिजुआना, और इस तरह की चीजों का उपयोग करने लगें, तो उनको युद्ध पर नहीं भेजा जा सकता। वे इतने शांत हो जाएंगे कि उनको युद्ध पर नहीं भेजा जा सकता। उनसे दंगे, उपद्रव नहीं करवाए जा सकते। उन्हें रस ही नहीं रह जाएगा लड़ने का।

इन सारी औषधियों के कारण पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक अल्डुअस हक्सले ने घोषणा की थी कि इस सदी के पूरे होते—होते हम सोम का पता लगा लेंगे। क्योंकि सोम इन्हीं sए मिलती—जुलती कोई चीज होनी चाहिए। इनसे बहुत श्रेष्ठ, लेकिन इनसे मिलती—जुलती। क्योंकि वेद में जो वर्णन है सोम का कि ऋषि सोम को पी लेते हैं और समाधिस्थ हो जाते हैं, और परमात्मा के आमने—सामने उनकी चर्चा और बातचीत होने लगती है। इस लोक से रूपांतरित हो जाते हैं; किसी और आयाम में प्रविष्ट हो जाते हैं।

हो सकता है, सोम इस तरह का रासायनिक रस रहा हो कि समाज को उसे विलुप्त कर देना पड़ा हो। क्योंकि समाज उसके सहारे नहीं चल सकता। अगर लोग बहुत आनंदित हो जाएं, नाचने—गाने लगें और तल्लीन रहने लगें, तो समाज नहीं चल सकता है। समाज के लिए थोड़े दुखी, परेशान लोग चाहिए; वे ही चलाते हैं। उनके बिना नहीं चल सकता।

अगर सभी लोग प्रसन्न हों, तो बहुत मुश्किल है काम। किसको लगाइएगा दौड़ में कि तू फैक्टरी चला। वह कहेगा, ठीक है, रोटी मिल जाती है। किसको दौड़ में लगाइएगा कि तू दिल्ली जा! वह कहेगा, हम पागल नहीं हैं। हम जहा हैं, वहीं दिल्ली है। हम मजे में हैं।

यह जो इतनी दौड़ चलती है, अर्थ की, राजनीति की, सब तरह की विक्षिप्तता की, इसके लिए दुखी लोग चाहिए। युद्ध चलते हैं, संघर्ष चलता है, और चैन नहीं है एक क्षण को, इसके लिए बेचैन लोग चाहिए।

हिप्पियों से अमेरिका डरा हुआ है। क्योंकि अगर सारे लड़के और लड़किया हिप्पियों जैसे हो जाएं, तो अमेरिका डूबेगा। इस अर्थ—तंत्र में उसकी कोई जगह न रह जाएगी।

इनको लड़वाया नहीं जा सकता है। ये लड़ने से इनकार करते हैं। और यह परिणाम है एल एस. डी. और मांरिजुआना और मेस्कलीन का, तो सोम का क्या परिणाम रहा होगा!

सोम अदभुततम रस है। हिंदू धारणा से सभी वनस्पतियों में चांद उतरता है। लेकिन सोम नाम की जो वनस्पति है, उसमें चांद पूरा उतरता है। वह चांद की पूरी शांति को पी जाती है। उसके पत्ते—पत्ते में, उसके फूल में, उसकी जड़ों में चांद छिप जाता है। और उसका अगर विधिवत उपयोग किया जाए, तो समाधि फलित होती है। निश्चित ही, उस पर रोक लगाई गई होगी; उसको छिपाया गया होगा या नष्ट कर दिया गया होगा। इसलिए बहुत खोज करके हिमालय में भी सोम वनस्पति उपलब्ध नहीं होती।

लेकिन कृष्ण यहां कह रहे हैं कि मैं वही सोम हूं। चांद भी मैं हूं, सूरज भी मैं हूं। इस जगत में जो तेज है, वह भी मेरा है, और इस जगत में जो शांति है, सन्नाटा है, वह भी मेरा है। इस जगत में जो तरंगें हैं, वे भी मेरी हैं। इस जगत में जो मौन है, वह भी मेरा है। इस जगत का जो ताप—उत्तप्त व्यक्तित्व है, वह भी मैं हूं; और इस जगत का जो शांत समाधिस्थ व्यक्तित्व है, वह भी मैं हूं।

मैं ही सब प्राणियों के शरीर में स्थित हुआ वैश्वानर अग्निरूप होकर प्राण और अपान से युक्त हुआ अन्न को पचाता हूं। और मैं ही सब प्राणियों के हृदय में अंतर्यामीरूप से स्थित हूं।

यह काफी महत्वपूर्ण बात है, सभी प्राणियों के हृदय में अंतर्यामीरूप से स्थित हूं।

आपके भीतर कहां अंतर्यामी है? अगर आप अपने अंतर्यामी को पकड़ लें, तो क्या के चरण हाथ में आ गए। कौन—सा तत्व है आपके भीतर जो अंतर्यामी है? कैसे उस तत्व को पकड़े?

अंतर्यामी का अर्थ होता है, भीतर का जानने वाला। भीतर जो छिपा है जानने वाला। तो जिस तत्व को आप जान नहीं सकते और जो सबको जानता है, धीरे— धीरे उसकी गहराई में डूबना है।

शरीर को मैं जानता हूं। शरीर को देखता हूं। तो जिसे मैं जानता हूं और देखता हूं वह अलग हो गया, पृथक हो गया, वह मेरा ज्ञाता न रहा, ज्ञेय हो गया, वह आब्जेक्ट हो गया। वह संसार का हिस्सा हो गया।

भीतर आंख बंद करता हूं तो हृदय की धड़कन भी मैं सुनता हूं? अपने हृदय की धड़कन भी सुनता हूं। तो यह हृदय की धड़कन मेरी न रही; यंत्रवत हो गई, शरीर की हो गई। मैं देखने वाला इसके पीछे खड़ा हूं। इसको भी मैं सुनता हूं; इससे मैं अलग हो गया, फासला हो गया।

आंख बंद करता हूं विचारों की बदलियां घूमती हैं। उनको भी मैं देखता हूं कि यह विचार जा रहा है, यह अच्छा, यह बुरा; यह क्रोध, यह लोभ। इन विचारों के पार मैं देखने वाला हो गया।

समस्त ध्यान की प्रक्रियाएं इतनी ही चेष्टा करती हैं कि तुम्हें यह समझ में आना शुरू हो जाए कि तुम क्या—क्या नहीं हो। नेति—नेति; यह भी मैं नहीं, यह भी मैं नहीं। काटते जाओ। जो भी दिखाई पड़ जाए, जो भी ज्ञेय बन जाए जो भी आब्जेक्ट बन जाए, उसे छोड़ते जाओ; इलिमिनेट करो, नकार करो। और उस जगह ही रुको, जहा सिर्फ जानने वाला ही रह जाए। वह अंतर्यामी है। वह जो भीतर छिपा और सब जानता है, और किसी के द्वारा कभी जाना नहीं जाता। क्योंकि उसके पीछे जाने का कोई उपाय नहीं है। वह सबसे पीछे है। वह अंत है। वह मूल है। वह उत्स है।

अगर हम अपने भीतर के अंतर्यामी को पकड़ लें, वही हम हैं, अगर उसमें हम खडे हो जाएं और ठहर जाएं, तो हम कृष्ण में खड़े हो गए। और तब हम भी कह सकेंगे कि यह सूरज मेरी ही रोशनी है, और यह चांद मुझसे ही चमकता है, औषधियां मुझसे ही बड़ी होती हैं; और इस जगत में जो सोम बरस रहा है, वह मैं ही हूं।

अंतर्यामी को आप पकड़ लें, तो यही घोषणा जो कृष्ण की है, आपकी घोषणा हो जाएगी। और तभी आप समझ पाएंगे कि कृष्ण अहंकार के कारण यह घोषणा नहीं कर रहे हैं, यह एक आतरिक अनुभव के कारण कर रहे हैं।

और मैं ही सब प्राणियों के हृदय में अंतर्यामीरूप से स्थित हूं तथा मेरे से ही स्मृति, जान और अपोहन, संशय—विसर्जन होता है और सब वेदों द्वारा मैं ही जानने के योग्य हूं तथा वेदात का कर्ता और वेदों को जानने वाला भी मैं ही हूं।

मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन।

तीन शब्दों का कृष्ण ने उपयोग किया है, स्मृति, ज्ञान और अपोहन। अपोहन का अर्थ है, संशय—विसर्जन। यह बड़ी समझने की बात है। अपोहन शब्द याद रखने जैसा है।

आपके भीतर सदा ऊहापोह चलता है। ऊहापोह का मतलब है, यह ठीक कि वह ठीक! यह भी ठीक, वह भी ठीक! कुछ समझ नहीं पड़ता, क्या ठीक। संशय! मन डोलता रहता है घड़ी के पेंडुलम की तरह, बाएं —दाएं; कहीं ठहरता नहीं मालूम पड़ता। यह ऊहापोह की अवस्था है।

अपोहन का अर्थ है, इससे विपरीत अवस्था। जहा कोई ऊहापोह नहीं, जहा संशय चला गया; जहा असंशय आप खड़े हो गए। जहा पेंडुलम घूमता नहीं है; खड़ा हो गया है थिर। जहा कोई कंपन नहीं है। जहा यह ठीक या वह ठीक, ऐसा भी कोई सवाल नहीं है। जहा आप सिर्फ खड़े हैं, जहा चुनाव न रहा। जिसको कृष्णमूर्ति च्वाइसलेसनेस कहते हैं, वह अपोहन है। जहा सब चुनाव शांत हो गए; जहा मुझे चुनना नहीं कि यहां जाऊं कि वहा जाऊं। जहा आप बिना चुनाव चुपचाप खड़े हैं, जहा चित्त थिर है।

कृष्ण कहते हैं, स्मृति मैं हूं। क्योंकि आपके भीतर जिसको आप स्मृति कहते हैं, उसको कृष्ण स्मृति नहीं कह रहे हैं। जिसको आप मेमोरी कहते हैं, वह नहीं। कि आपको पता है कि आपका नाम क्या है, आपकी तिजोरी में कितना रुपया जमां है, आपकी दुकान कहां है, इससे प्रयोजन नहीं है स्मृति का। स्मृति से इस बात का प्रयोजन है कि मैं कौन हूं। सेल्फ रिमेंबरिग। मेमोरी नहीं, आत्म—बोध, कि मैं कौन हूं!

आप दुकानदार हैं, यह आत्म—बोध नहीं है। क्योंकि दुकानदार होना सांयोगिक है; कोई आपका स्वभाव नहीं है।

लेकिन हम उसको भी स्वभाव की तरह पकड़ लेते हैं। दुकानदार को दुकान से हटाओ, उसको लगता है, उसकी आत्मा जा रही है। नेता को पद से हटाओ, उसको लगता है, मरे; गए। पद के बिना वह कुछ भी नहीं है।

मैंने सुना है, एक गाव से चार चोर निकलते थे। उन्होंने देखा कि एक नट छलांग लगाकर बड़ी ऊंची रस्सी पर चढ़ गया। और रस्सी पर नाचने के कई तरह के करतब दिखाने लगा। उन चोरों ने कहा, यह आदमी तो काम का है! इसको उड़ा ले चलें। हमें बड़ी मेहनत पड़ती है मकानों में चढ़ने में रात। यह तो गजब का आदमी है! एक इशारा करो कि दूसरी मंजिल पर पहुंच जाए।

उस नट को उन्होंने उड़ा लिया। रात उन्होंने बड़े से बड़ा जो नगर का सेठ था, उसकी हवेली चुनी; जिसको वे अब तक नहीं चुन पाए थे, क्योंकि हवेली बड़ी थी, चढ़ने में अड़चन थी।

नट को लेकर वे पहुंचे। बड़े प्रसन्न थे। उन्होंने नट से कहा, अब तू देर न कर भाई। एक, दो, तीन, छलांग लगा, ऊपर चढ़। लेकिन नट वहीं खड़ा रहा। उन्होंने फिर दुबारा कहा; नट वहीं फिर खड़ा रहा। उन्होंने फिर तीसरी बार कहा। तीसरी बार एक चोर बिलकुल नाराज हो गया, उसने कहा, अभी तू खड़ा क्यों है? चढ़! हमारे पास ज्यादा समय नहीं है।

नट ने कहा, पहले नगाड़ा बजाओ। बिना नगाड़े के कैसे नट चढ़ सकता है! नगाड़ा जब बजे, तब उसने कहा, मैं. नहीं तो मेरे पैर में गति ही नहीं है। हम खड़े नहीं हैं, कोई उपाय ही नहीं है। अब चोर नगाड़ा तो बजा नहीं सकता। पर नट ठीक कह रहा था। लेकिन उसको भी खयाल नहीं है कि अगर वह छलांग लगा सकता है, तो नगाड़े से कुछ लेना—देना नहीं है।

दुकानदार होना आपका, कि डाक्टर होना, कि मजदूर होना, कि स्त्री होना, कि पुरुष होना, सांयोगिक है। वह कोई आपका स्वभाव नहीं है। और आप वह नहीं रहेंगे, तो सब मिट गया, ऐसा कुछ नहीं है। कुछ नहीं मिटता। उसकी जो स्मृति है, उसको कृष्ण नहीं कह रहे हैं कि वह मैं हूं नहीं तो आप सोचें कि कृष्ण.।

कृष्ण कह रहे हैं, आत्म—स्मरण मैं हूं सेल्फ रिमेंबरेंस मैं हूं। जिस दिन आप स्मरण करेंगे इन सब संयोगों से हटकर आपका जो स्वभाव है, आप कौन हैं! मैं कौन हूं!

ये सारी सांयोगिक बातें हैं। मेरा नाम, मेरा घर, पता, ये सब कुछ मूल्य के नहीं हैं। मेरा न कोई नाम है, और न मेरा कोई घर है, और न मेरा कोई रूप है। मेरी वह जो अरूप और अनाम स्थिति है, उसको कृष्ण कहते हैं, वह स्मृति है।

स्मृति शब्द बाद में बिगड़ा और कबीर और दादू के समय में सुरति हो गया। नानक और दादू और कबीर सुरति का उपयोग करते हैं। वे कहते हैं, सुरति जगाओ। सुरति का मतलब है, जगाओ उसको, जो आपके भीतर परमात्मा है।

और जब रमण कहते हैं, जानो कि तुम कौन हो—हू एम आई; तो वे इसी कृष्ण के पीछे पड़े हैं। यही कह रहे हैं कि पीछे पहचानो। वह जो सब संयोगों के पार है, सब स्थितियों के पार है, सभी स्थितियों से गुजरता है, फिर भी किसी स्थिति के साथ एक नहीं है, सभी अवस्थाओं से गुजरता है.।

कभी आप बच्चे हैं; कभी जवान हैं; कभी के हैं; लेकिन आपके भीतर कोई है, जो न बच्चा है, न जवान है, न का है; जो तीनों से गुजरता है। जैसे तीन स्टेशनें हों और आपकी ट्रेन तीनों से गुजर जाए। वह जो यात्री भीतर बैठा है, जो सदा चल रहा है, कहीं भी ठहरता नहीं है, किसी भी अवस्था के साथ एक नहीं हो जाता है; सदा अवस्था—मुक्त है, उसकी स्मृति को कृष्ण कहते हैं, मैं हूं। शान! यहां ज्ञान से अर्थ नालेज का नहीं है। विश्वविद्यालय ज्ञान देते हैं। कृष्ण उस ज्ञान की बात नहीं कर रहे हैं। शिक्षक ज्ञान देते हैं! स्मृति इकट्ठी कर लेती है ज्ञान को। संग्रह हो जाता है आपके पास, बड़ी सूचनाएं इकट्ठी हो जाती हैं। कृष्ण उसको ज्ञान नहीं कह रहे हैं।

ज्ञान से अर्थ नालेज नहीं है। शान से अर्थ प्रज्ञा है। ज्ञान से अर्थ विजडम है। बड़ी अलग बात है। क्योंकि यह हो सकता है, आप कुछ न जानते हों और ज्ञानी हों। और यह भी हो सकता है, बहुत कुछ जानते हों और निपट अज्ञानी हों। आपके जानने से कोई संबंध नहीं है।

एक आदमी बहुत कुछ जान सकता है। सब शास्त्र कंठस्थ हों; तोते की तरह कंठस्थ हो सकते हैं, जरा भी भूल न करे। यंत्रवत स्मृति हो। और फिर भी जीवन में व्यवहार जो करे, वहां अज्ञानी सिद्ध हो।

आपको वेद कंठस्थ हों, सारी बातें याद हों, और गीता आपकी जबान पर बैठी हो; और आपको मालूम है बिलकुल कि न तो शस्त्रों से छिदता हूं न अग्नि मुझे जला सकती है। और जरा—सा दुख आ जाए और आप छाती पीटकर रो रहे हैं! सब गीता वगैरह रखी रह जाती है! वहा पता चलता है कि यह प्रज्ञा है या नहीं। प्रज्ञा आपके अनुभव में काम आती है। और शान केवल बुद्धि की बातचीत है। और बुद्धि की बातचीत तो हम कुछ भी इकट्ठी कर ले सकते हैं।

मैं एक प्रोफेसर के घर मेहमान था। ऐसे अचानक मेरे कान में पति—पत्नी की बात पड़ गई। मैं अपने कमरे में बैठा था, जहा उनके घर में रुका था। पति बाहर से आए। पत्नी से कहा—कुछ जोर से ही कहा, बड़े प्रसन्न थे—कि आज रोटरी क्लब में रात मेरा व्याख्यान है तिब्बत के ऊपर। पत्नी ने कहा, तिब्बत? लेकिन तुम तिब्बत तो कभी गए नहीं! पति ने कहा, छोड़ो भी। सुनने वाले ही कौन से तिब्बत होकर आए हैं!

यह मैं सुन रहा था। तब मुझे पता चला कि शान के लिए तिब्बत जाने की कोई जरूरत नहीं है, न सुनने वाले को, न बोलने वाले को। अक्सर अध्यात्म के नाम पर ऐसे ही तिब्बत के यात्री चलते रहे हैं। न सुनने वाले को कुछ पता है कि ब्रह्म क्या, न बोलने वाले को कुछ पता है। जब दोनों को पता नहीं, तो कोई अड़चन ही नहीं है। यहां जो कृष्ण कह रहे हैं ज्ञान, तो विजडम, प्रज्ञा से उसका संबंध है। अनुभव में जिसके, जीवन में जिसका बोध सधा हुआ है, कैसी भी अवस्था हो, जिसके बोध को डिगाया नहीं जा सकता, वह मैं हूं। स्मृति, ज्ञान और अपोहन, सब वेदों द्वारा जानने योग्य। ये ही तीन बातें हैं। सारा वेदांत इन्हीं तीन की खोज करता है। और न केवल सब वेदों द्वारा मैं ही जानने के योग्य हूं वरन वेदांत का कर्ता और वेदों को जानने वाला भी मैं ही हूं।

सारे वेद मुझे ही खोजते हैं। और सारे वेद मेरे ही अनुभव से निकलते हैं।

सारे वेदों की खोज क्या है? कि वह अंतर्यामी मिल जाए। वह जो भीतर छिपा हुआ राजों का राज है, वह मिल जाए। लेकिन वेद निकलते कहां से हैं?

जिनको वह मिल जाता है, उनकी वाणी वेद बन जाती है। जो उसे पा लेते हैं, उनकी सुगंध वेद बन 'जाती है। जो वहां तक पहुंच जाते हैं उस अंतर्यामी तक, फिर वे जो भी कहते हैं, वही वेद बन जाता है। वे न कहें, तो मौन उनका वेद हो जाएगा। वे चलें—फिरें, उठें, तो उनकी गतिविधि वेद हो जाएगी।

अगर बुद्ध को चलते हुए भी देख लो, तो भी उस चलने में समाधि है; उसमें भी इशारा है। अगर कृष्ण को बांसुरी बजाते हुए देख लो, तो उस बांसुरी में वेद है; उसमें सारा वेदांत है, उसमें सारा इशारा है।

कृष्ण कहते हैं कि मैं ही सबकी खोज, और मैं ही सब का मूल उत्स। और यह जो मैं है, तुम्हारे भीतर छिपा हुआ अंतर्यामी है। कृष्ण बाहर से बोल रहे हैं, लेकिन जिसकी तरफ इशारा कर रहे हैं, वह अर्जुन के भीतर है।

गुरु सदा बाहर से बोलता है, लेकिन जिस तरफ इशारा करता है, वह शिष्य के भीतर है। इसलिए दो पड़ाव हैं यात्रा के। एक तो बाहर का गुरु, वह पहला पड़ाव है। और फिर भीतर का गुरु, वह अंतिम पड़ाव है।

गीता दर्शन–(भाग–7)
अध्याय—15 (प्रवचन—छठवां) — पुरूषोत्तम की खोज

सूत्र—

द्वाविमौ पुरूषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।16।।
उत्तमः पुरूषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाह्वतः।
यो लस्केत्रयमाविश्य बिभर्त्सव्यय ईश्वरः।।17।।
यस्मात्क्षरमर्तोतोऽहमक्षरादीप चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।18।।
हे अर्जुन, हम संसार में क्षर अर्थात नाशवान और अक्षर अर्थात अविनाशी, ये दो प्रकार के पुरुष हैं। उनमें संपूर्ण भूत प्राणियों के शरीर तो क्षर अर्थात नाशवान और कूटस्थ जीवात्मा अक्षर अर्थात अविनाशी कहा जाता है।

तथा उन दोनों से उत्तम पुरुष तो अन्य ही है कि जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण—पोषण करता है, एवं अविनाशी ईश्वर और परमात्मा, ऐसे कहा गया है।

क्योंकि मैं नाशवान जड़वर्ग क्षेत्र से तो सर्वथा अतीत हूं और माया में स्थित अक्षर, अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम हूं इसलिए लम्बे में और वेद में पुरूषोत्तम नाम मे प्रसिद्ध हूं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्न :
कल एकाग्रता का आपने भारी मूल्य बताया है, पर आप अपने ध्यान प्रयोगों में एकाग्रता की अपेक्षा साक्षी— भाव पर अधिक जोर देते हैं। ऐसा किस कारण है?
एकाग्रता शक्ति को उपलब्ध करने की विधि है। साक्षी— भाव शांति को उपलब्ध करने की विधि है। शक्ति उपलब्ध करने से जरूरी नहीं है कि शांति उपलब्ध हो। लेकिन शांति उपलब्ध करने से शक्ति अनिवार्यरूपेण उपलब्ध हो जाती है।

जो व्यक्ति शक्ति की खोज में हैं, उनका रस एकाग्रता में होगा। जैसे सूरज की किरणें इकट्ठी हो जाएं, तो अग्नि पैदा हो जाती है। वैसे ही मन के सारे विचार इकट्ठे हो जाएं, तो शक्ति पैदा हो जाती है। थोड़े से प्रयोग करें, तो समझ में आ सकेगा।

जब भी मन एकजुट हो जाता है, तब आपके जीवन की पूरी ऊर्जा एक दिशा में बहने लगती है। और जितना संकीर्ण प्रवाह हो, उतनी ही शक्तिशाली हो जाती है। जितने विचार बिखरे हों, ऊर्जा उतने अनेक मार्गों से बहती है; तब क्षुद्र शक्ति हाथ में रह जाती है। जिस विचार के प्रति भी आप एकाग्र हो जाते हैं, वह विचार शीघ्र ही यथार्थ में परिणत हो जाएगा। जिस विचार में मन डांवाडोल होता है, उसके यथार्थ में परिणत होने की कोई संभावना नहीं है।

एकाग्रता तो सांसारिक मनुष्य भी चाहता है। और सांसारिक मनुष्य को भी अगर कहीं सफलता मिलती है, तो एकाग्रता के कारण ही मिलती है। वैज्ञानिक भी एकाग्रता के माध्यम से ही खोज कर पाता है। संगीतज्ञ भी एकाग्रता के माध्यम से ही संगीत की गहरी कुशलता को उपलब्ध होता है। लेकिन साक्षी— भाव में केवल धार्मिक व्यक्ति उत्सुक होता है।

सांसारिक व्यक्ति की साक्षी— भाव में कोई भी उत्सुकता नहीं होती। और अगर साक्षी— भाव उसे कहीं रास्ते पर पड़ा हुआ भी मिल जाए, तो भी वह उसे चुनना पसंद न करेगा। क्योंकि साक्षी— भाव का परिणाम शांति है। और साक्षी— भाव का परिणाम शून्य हो जाना है। साक्षी— भाव का परिणाम मिट जाना है। वह महामृत्यु जैसा है। एकाग्रता से तो आपका ही मन मजबूत होता है और अहंकार प्रबल होगा। साक्षी— भाव से मन शांत होता है, समाप्त होता है, अंततः मिट जाता है और अहंकार विलीन हो जाता है। साक्षी— भाव मन के पीछे छिपी आत्मा की अनुभूति है। और एकाग्रता मन की ही बिखरी शक्तियों को इकट्ठा कर लेना है।

इसलिए एकाग्रता को उपलब्ध व्यक्ति जरूरी नहीं है कि धार्मिक हो जाए। लेकिन साक्षी— भाव को उपलब्ध व्यक्ति अनिवार्यरूपेण धार्मिक हो जाता है।

एकाग्रता परमात्मा तक नहीं ले जाएगी। और अगर आप परमात्मा की खोज एकाग्रता के माध्यम से कर रहे हों, तो एक न एक दिन आपको एकाग्रता भी छोड़ देनी पड़ेगी। क्योंकि परमात्मा तभी मिलता है, जब आप ही बचे। इसे थोड़ा समझ लें।

अगर दो मौजूद हों, आप और आपका परमात्मा, तो परमात्मा की उपलब्धि नहीं होने वाली है। जब आप ही बचे, तब ही परमात्मा की उपलब्धि होने वाली है। या परमात्मा ही बचे, आप न बचें, तो उसकी उपलब्धि हो सकती है।

एकाग्रता में तो सदा दो बने रहते हैं। एक आप, जो एकाग्र हो रहा है; और एक वह, जिसके ऊपर एकाग्र हो रहा है। एकाग्रता में द्वैत नहीं नष्ट होता; दुई 'तो बनी ही रहती है। साक्षी— भाव में द्वैत नष्ट होता है, अद्वैत की उपलब्धि होती है।

इसलिए मेरा जोर तो साक्षी— भाव पर ही है। और अगर कोई व्यक्ति एकाग्रता में उत्सुकता भी रखता है, तो भी मैं उसे साक्षी— भाव की तरफ ही ले जाने की कोशिश करता हूं।

एकाग्रता के माध्यम से भी साक्षी— भाव की तरफ जाया जा सकता है। क्योंकि जिसका मन बिखरा है, उसे साक्षी— भाव भी साधना कठिन होगा। जिसका मन एकजुट है, उसे साक्षी— भाव भी साधना आसान हो जाएगा। इसलिए कुछ धर्मों ने भी एकाग्रता का उपयोग साक्षी— भाव की पहली सीढ़ी की तरह किया है। लेकिन वह सीढ़ी ही है, साधन ही है, साध्य नहीं है।

और ध्यान रहे, साक्षी— भाव साधन भी है और साध्य भी। साक्षी— भाव साधना भी है और साक्षी— भाव पाना भी है। साक्षी— भाव के पार कुछ भी नहीं है। इसलिए साक्षी— भाव की साधना पहले चरण से ही मंजिल की शुरुआत है।

एकाग्रता मंजिल की शुरुआत नहीं है। वह एक साधन है, एक रास्ता है। वह रास्ता वहां तक पहुंचा देगा, जहां से असली रास्ता शुरू होता है। और वह भी तभी पहुंचाएगा, जब आपको ध्यान में हो। अन्यथा खतरा है। एकाग्रता में भटक जाने की पूरी सुविधा है। ऐसा हुआ, विवेकानंद एकाग्रता की साधना करते थे। शक्तिशाली व्यक्ति थे और मन को इकट्ठा कर लेना शक्तिशाली व्यक्तियों के लिए बड़ा आसान है। सिर्फ कमजोरी के कारण ही हम मन को इकट्ठा नहीं कर पाते हैं। कमजोरी के कारण ही मन यहां —वह। भागता है, हम उसे खींच नहीं पाते। हाथ कमजोर हैं, लगाम कमजोर है, घोड़े कहीं भी भागते हैं। और इसलिए कमजोरी में हमसे सब भूलें होती हैं।

एक आदमी पर मुकदमा चल रहा था। उसने पहले एक आदमी को मारा, फिर दूसरे आदमी को धक्का देकर छत से नीचे गिरा दिया और तीसरे आदमी की हत्या कर दी। एक पंद्रह मिनट के भीतर तीन काम उसने किए।

जज उससे पूछ रहा था कि तू इतने भयंकर काम पंद्रह मिनट में कैसे कर पाया? उस आदमी ने कहा, क्षमा करें, कमजोरी के क्षण में ऐसा हो गया। कमजोरी के क्षण में, मोमेंट्स आफ वीकनेस। आप जिनको कमजोरी के क्षण कहते हैं, वहीं आपकी ताकत दिखाई पड़ती है। आपकी ताकत गलत में ही दिखाई पड़ती है। और गलत में इसलिए दिखाई पड़ती है कि वहां आपको ताकत दिखानी नहीं पड़ती, मन ही आपको खींचकर ले जाता है। मन के विपरीत जहां भी आपको ताकत दिखानी पड़े, वहीं आप कमजोर हो जाते हैं। वहीं फिर आपसे कुछ बनता नहीं।

अगर आपसे कोई कहे कि पांच मिनट शांत होकर बैठ जाएं, तो बड़ी कठिन हो जाती है बात। पचास साल अशांत रह सकते हैं; उसमें जरा भी अड़चन नहीं है। पाच क्षण शांत होना कठिन है। जन्मों—जन्मों तक विचारों की भीड़ चलती रहे, आपको कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन एक विचार पर मन को क्षणभर को लाना हो, तो बस कठिनाई हो जाती है।

पर विवेकानंद शक्तिशाली व्यक्ति थे। एकाग्रता के प्रयोग करते थे। एकाग्रता सध भी गई। जैसे ही एकाग्रता सधी, जो खतरा होना चाहिए, वह हुआ। क्योंकि एकाग्रता के सधते ही आपको लगता है कि मैं महाशक्तिशाली हो गया।

रूस में एक महिला है, जो पांच मिनट तक अपने को एकाग्र कर लेती है, तो फिर आस—पास की वस्तुओं को प्रभावित कर सकती है। बीस फीट के घेरे में पत्थर पड़ा हो, तो वह उसको अपने पास खींच ले सकती है, सिर्फ विचार से। टेबल रखी हो, तो सिर्फ विचार से हटा दे सकती है। टेबल पर सामान रखा हो, तो सिर्फ विचार से नीचे गिरा दे सकती है।

रूस में उसके बड़े वैज्ञानिक परीक्षण हुए हैं। और उन्होंने अनुभव किया कि जब विचार बिलकुल एकाग्र हो जाता है, तो जैसे विद्‌युत के धक्के लगते हैं वस्तुओं को, ऐसे ही विचार के धक्के भी

लगने शुरू हो जाते हैं। उसके फोटोग्राफ भी लिए गए हैं, और उसके वैज्ञानिक प्रयोग भी किए गए हैं। और सभी प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ कि उस स्त्री से कोई वैद्‌युतिक शक्ति प्रवाहित होती है, जो वस्तुओं को हटा देती है या पास खींच लेती है।

पंद्रह मिनट के प्रयोग में उस स्त्री का तीन पाउंड वजन कम हो जाता है। इतनी शक्ति प्रवाहित होती है कि उसका तीन पाउंड शरीर से वजन नीचे गिर जाता है।

तो दिखाई न पड़ती हो, लेकिन फिर भी शक्ति भौतिक है। नहीं तो तीन पाउंड वजन कम होने का कोई कारण नहीं है। अदृश्य हो, लेकिन मैटीरियल है, पदार्थगत है। इसलिए तीन पाउंड शरीर का वजन नीचे गिर जाता है। और वह स्त्री कोई एक सप्ताह तक अस्वस्थ अनुभव करती है। एक सप्ताह के बाद फिर प्रयोग कर सकती है, उसके पहले नहीं।

जब भी कोई चित्त को एकाग्र करता है, तो बड़ी शक्ति प्रकट होती है। अगर उसका उपयोग किया जाए, शक्ति क्षीण हो जाती है। अगर उसका उपयोग न किया जाए और सिर्फ उसका साक्षी रहा जाए, तो वह शक्ति स्वयं में लीन हो जाती है। और वह जो स्वयं में शक्ति की लीनता है, वह साक्षी का आधार बनने लगती है।

विवेकानंद ने एकाग्रता साधी और जैसा सभी को होगा, उनको भी हुआ, लगा कि मैं परम शक्तिशाली हो गया हूं। और कोई भी काम करना चाहूं, तो केवल विचार से हो सकता है।

रामकृष्ण के आश्रम में एक बहुत सीधा—सादा आदमी था। कालू उसका नाम था, कालीचरण। वह भक्त आदमी था। अपने छोटे—से कमरे में उसने कम से कम नहीं तो सौ—पचास देवी—देवता रख छोडे थे। सब तरह के देवी—देवताओं को नमस्कार करना...! उसको कोई तीन घंटे से लेकर छ: घंटे तक पूजा में लग जाते। क्योंकि सभी को थोड़ा— थोड़ा राजी करना पड़ता। इतने देवी—देवता थे।

और विवेकानंद उससे अक्सर कहते थे, क्योंकि विवेकानंद का मन वस्तुत: नास्तिक का मन था। शुरुआत से ही विचार और तर्क उनकी पकड़ थी। तो उस पर वे हंसते थे और उससे कहते थे, कालीचरण, फेंक। यह क्या कचरा इकट्ठा कर रखा है! और इन पत्थरों के पीछे तू तीन—तीन, छ: —छ: घंटे खराब करता है!

जैसे ही उनको एकाग्रता का पहला अनुभव हुआ, उनको खयाल आया कालीचरण का, कि वह पूजा कर रहा है बगल के कमरे में। तो उन्होंने अपने मन में ही सोचा कि कालीचरण, बस, अब बहुत हो गया। सारे देवी—देवताओं को एक कपड़े में बांध और गंगा में फेंक आ।

कालीचरण पूजा कर रहा था; अचानक उसे भाव आया कि सब बेकार है। सारे देवी—देवता उसने कपड़े में बांधे और गंगा की तरफ चला।

रामकृष्ण अपने कमरे में बैठे थे। उन्होंने कालीचरण को बुलाया कि कहां जा रहे हो? उसने कहा, सब व्यर्थ है; कर चुके पूजा—पाठ बहुत; इससे कुछ होता नहीं। ये सब देवी—देवताओं को गंगा में फेंकने जा रहा हूं। कालीचरण को रामकृष्ण ने कहा, एक दो मिनट रुक। और आदमी भेजा कि विवेकानंद को उनकी कोठरी से निकालकर बाहर ले आओ। कालीचरण को कहा कि यह तू नहीं जा रहा है।

विवेकानंद घबडाए हुए आए। रामकृष्ण ने कहा कि देख, यह तूने क्या किया! और अगर यही करना है एकाग्रता से, तो तेरी कुंजी सदा के लिए मैं रखे लेता हूं। अब मरने के तीन दिन पहले ही तुझे कुंजी वापस मिलेगी।

विवेकानंद मरने के तीन दिन पहले तक फिर एकाग्रता न साध सके।

विवेकानंद जैसा व्यक्ति भी अगर शक्ति का ऐसा क्षुद्र उपयोग करने को तैयार हो जाए, तो किसी दूसरे व्यक्ति के लिए तो बिलकुल स्वाभाविक है। इसलिए एकाग्रता पर मेरा जरा भी जोर नहीं है। पहले आपको एकाग्रता सधवाई जाए, फिर चाबी रखी जाए, इस सब अड़चन में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है।

साक्षी— भाव सहज मार्ग है। और चूंकि शक्ति सीधी उपलब्ध नहीं होती, बल्कि शांति उपलब्ध होती है। जैसे—जैसे साक्षी सधता है, वैसे—वैसे आप परम शांत होते जाते हैं। उस परम शांति के कारण ऐसे उपद्रवी खयाल आपमें उठेंगे ही नहीं। और दूसरे को कुछ करके दिखाना है, दूसरे के साथ कुछ करना है अपनी शक्ति से, ऐसी वासना नहीं जगेगी।

अन्यथा सभी तरह की शक्तियां भटकाव बन जाती हैं। धन की शक्ति से ही लोग बिगड़ते हैं, ऐसा मत सोचना आप, सभी तरह की शक्ति से बिगड़ते हैं। पद की शक्ति से लोग बिगड़ते हैं, ऐसा आप मत सोचना, सभी तरह की शक्ति से बिगड़ते हैं। सचाई तो यह है कि बिगड़ने की तो आपकी मनोदशा सदा ही है, सिर्फ आप कमजोर हैं और बिगड़ने के लायक आपके पास शक्ति नहीं है। मेरे पास अक्सर लोग आते हैं। वे कहते हैं, फला आदमी इतना भला था, सेवक था, भूदान में काम करता था; गरीबों के चरण दबाता था; मरीजों का इलाज करता था, विधवाओं के लिए आश्रम खोलता था। वह जब से राजपद पर चला गया है, कि मिनिस्टर हो गया है, तब से बिलकुल बदल गया है! शक्ति ने उसे खराब कर दिया।

शक्ति क्यों खराब करेगी? उस आदमी के भीतर खराबी के सारे मार्ग थे, लेकिन उन पर बहने की हिम्मत न थी, और कोई उपाय न था। जैसे ही हिम्मत मिली, उपाय मिला, साधन जुटे, वह आदमी बिगड़ गया।

लोग कहते हैं, फलां आदमी कितना भला था जब गरीब था। जब से उसके पास पैसा आया है, तब से वह पागलपन कर रहा है। पागलपन सभी करना चाहते हैं, लेकिन पागलपन करने को भी तो सुविधा चाहिए। पाप सभी करना चाहते हैं, लेकिन पाप करने के लिए भी तो सुगमता चाहिए। बुरा सभी करना चाहते हैं, लेकिन आपकी सामर्थ्य भी तो बुरा करने की होनी चाहिए। जब भी सामर्थ्य मिलती है, बुराई तत्क्षण पकड़ लेती है।

पर मैं आपसे कहता हूं कि धन और पद की ही शक्तियां नहीं, एकाग्रता की शक्ति भी बुराई के रास्ते पर ले जाएगी। क्योंकि बुरे तो आप होना ही चाहते हैं। वे बीज वहा पड़े हैं, वर्षा की जरूरत है। शक्ति की वर्षा हो जाए, अंकुर फूट आएंगे। और जो बीज आप में छिपे हैं, वे प्रकट होने लगेंगे। और हम सब जहर के बीज लिए चल रहे हैं।

इसलिए मेरी पूरी चेष्टा रहती है निरंतर कि आपको शक्ति की दिशा में जाने का खयाल ही न पकड़े। आप मौन, शांति और शून्यता की दिशा में जाएं। क्योंकि जैसे—जैसे आप शांत होंगे, वे जो जहर के बीज आपके भीतर पड़े हैं, उनके अंकुरित होने का कोई उपाय न रहेगा। आपके शांत होते—होते वे बीज दग्ध होने लगेंगे, जल जाएंगे। शक्ति आपको भी उपलब्ध होगी, लेकिन वह तभी उपलब्ध होगी, जब शांति इतनी घनी हो जाएगी कि सारे रोग के बीज जल चुके होंगे, तब आपको शक्ति उपलब्ध होगी। लेकिन उसका फिर कोई दुरुपयोग नहीं हो सकता है।

और उस शक्ति का, सच पूछिए तो, आप उपयोग भी नहीं करेंगे। और जब कोई व्यक्ति शक्तिशाली हो जाता है और उपयोग नहीं करता, तब परमात्मा उस शक्ति का उपयोग करता है। इस कीमिया को ठीक से समझ लें।

जब तक आप उपयोग करने वाले हैं, तब तक परमात्मा आपका उपयोग नहीं करता। जब तक आप कर्ता हैं, तब तक परमात्मा के लिए आप उपकरण नहीं बनते, निमित्त नहीं बनते। जैसे ही आपको खयाल ही मिट जाता है कि कुछ करना है और शक्ति आपके पास होती है, उस शक्ति का उपयोग परमात्मा के हाथ में चला जाता है। कृष्ण का पूरा जोर गीता में अर्जुन से यही है कि तू कर्तापन छोड़ दे। और जैसे ही तेरा कर्तापन छूट जाएगा, वैसे ही परमात्मा तेरे भीतर से प्रवाहित होने लगेगा, तब तू निमित्त—मात्र है।

तो साक्षी का मार्ग और एकाग्रता का मार्ग बड़े भिन्न—भिन्न हैं। पर आपकी आकांक्षा क्या है? अगर आप अपने अहंकार को और बड़ा करना चाहते हैं, उसको और महिमाशाली करना चाहते हैं, तो साक्षी की बात आपको न जमेगी। तब आप चाहेंगे कि एकाग्रता, कनसनट्रेशन, सिद्धियां, शक्तियां आपको उपलब्ध हो जाएं। पर ध्यान रहे, वैसी खोज धार्मिक नहीं है। जहां भी आपको यह खयाल होता है कि मैं कुछ हो जाऊं, आप धर्म से हट रहे हैं। इस बात को आप कसौटी बना लें।

यह भावना आपकी रोज गहरी होती जाए कि मैं मिट रहा हूं; मैं ना—कुछ हो रहा हूं। और अंततः मुझे उस जगह जाना है, जहां मैं खो जाऊंगा, जहां बूंद को खोजने से भी न खोजा जा सकेगा, बूंद पूरी सागर में एक हो गई होगी। तो मुझे शक्ति की जरूरत भी क्या है? शक्ति परमात्मा की है और मैं परमात्मा में खो जाऊंगा, तो सारा परमात्मा मेरा है। मुझे अलग से शक्ति की खोज की जरूरत क्या है! अलग से शक्ति की खोज का अर्थ है, आप अपने अहंकार को बचाने में लगे हैं। और अहंकार ही संसार है।

दूसरा प्रश्न :
सबको शास्त्र पढ़कर गुरु की खोज में निकलना पड़ता है। क्या शास्त्रों को पढ़ने की कष्ट—साध्य प्रक्रिया से गुजरना अनिवार्य है? क्या सीधे ही गुरु की खोज में नहीं निकला जा सकता है?
संभव है; क्योंकि गुरु की खोज शास्त्र की असफलता से शुरू होती है। जब आप शास्त्र में खोजते हैं, खोजते हैं, खोजते हैं और नहीं पाते हैं, तभी गुरु की खोज शुरू होती है। जहां बाइबिल, कुरान, गीता और वेद हार जाते हैं, वहीं से गुरु की खोज शुरू होती है। क्यों? और सीधे गुरु की तलाश में जाना क्यों असंभव है?

पहली बात, शास्त्र मुर्दा है। उससे आपके अहंकार को चोट नहीं लगती। गीता को सिर पर रखना बिलकुल आसान है। कुरान पर सिर झुकाना बिलकुल आसान है। लेकिन किसी जीवित व्यक्ति को सिर पर रखना बहुत कठिन है; और किसी जीवित व्यक्ति के चरणों में सिर रखना बहुत मुश्किल है।

किताब तो मुर्दा है। मरे हुए से आपके अहंकार को कोई खतरा नहीं है। एक जिंदा व्यक्ति खतरनाक है। और उसके चरणों में सिर झुकाते वक्त पीड़ा होती है। आपका अहंकार बल मारता है। इसलिए पहले व्यक्ति शास्त्र से खोज करता है कि अगर किताब से मिल जाए, तो क्यों झंझट में पड़ना!

फिर किताब आप खरीद सकते हैं, गुरु आप खरीद नहीं सकते। किताब दुकान—दुकान पर मिल जाती है। गुरु को बेचने वाली कोई दुकानें नहीं हैं। किताब के अर्थ आप अपने मतलब से निकालेंगे। किताब की व्याख्या करने के आप ही मालिक होंगे, क्या मतलब निकालते हैं, यह आप पर ही निर्भर होगा। और हमारा जो अचेतन है, वह अपने ही हिसाब से अर्थ निकालता है।

इसलिए कोई किताब आपको बदल नहीं सकती। कोई किताब आपको रूपांतरित नहीं कर सकती। क्योंकि किताब का अर्थ कौन करेगा? आप गीता पढ़ेंगे, माना; लेकिन उस गीता से जो मतलब निकालेंगे, वे आपके ही होंगे, वह आपका ही अहंकार होगा; उसका ही प्रक्षेपण होगा।

और हम किताब से वही निकाल लेते हैं, उस पर ही हमारा ध्यान जाता है, जो हमारी चित्त—दशा होती है।

मैंने एक घटना सुनी है। पता नहीं सच है या झूठ। बंगला देश में याह्या खान ने अपनी सारी ताकतें लगा दीं। और रोज—रोज सूर्यास्त होने लगा। तो वह बहुत घबड़ाया हुआ था। और उसने अमेरिकी राजदूत को बुलाया कि हमें और शस्त्रास्त्रों की जरूरत पडेगी। इसके पहले कि अमेरिकी राजदूत आए, उसने बाइबिल पलटनी शुरू की इस खयाल से कि कुछ बाइबिल से दों—चार वचन याद कर ले, तो अमेरिकी राजदूत को बाइबिल के आधार पर प्रभावित करना आसान होगा।

उसने किताब पलटी। जिस वाक्य पर पहली उसकी नजर पड़ी, तो वह थोड़ा धक्का खाया। पहला वचन जो उसने देखा, वह था, और जुदास ने अपने आपको फांसी लगा ली। उसकी हालत उस वक्त वही थी, फांसी लगाने जैसी। तो वह थोड़ा डरा। उसने जल्दी से पन्ना पलटा।

दूसरे पन्ने पर उसकी नजर पड़ी, एक वचन था कि और तुम भी उसी का अनुसरण करो। तब तो वह बहुत घबड़ा गया। उसने जल्दी से तीसरा पन्ना उलटा, उसकी नजर पड़ी कि समय क्यों खराब कर रहे हो? देर क्या है? सोच—विचार क्या है? इस पर शीघ्र अमल करो। उसने घबड़ाकर बाइबिल बंद कर दी।

इस आधार पर कि आपका अचेतन काम करता है, चीन में एक किताब है, आई चिंग। यह दुनिया की अनूठी से अनूठी किताब है। और लाखों लोग हजारों वर्षों से इस किताब का उपयोग कर रहे हैं। आई चिंग ज्योतिष की अनूठी किताब है। और आपका कोई भी प्रश्न हो, आई चिंग में उसके उत्तर हैं। बस, आप अपना प्रश्न तैयार कर लें और आई चिंग को उलटे। और उसके उलटने के हिसाब हैं। पासे फेंकने का हिसाब है, उससे उसका पन्ना उलट लें। और आपको उत्तर मिल जाएगा।

आई चिंग बड़ी अदभुत किताब है। क्योंकि एक तो चीनी भाषा में है। उसका अनुवाद भी हुआ है, तो भी चीनी भाषा अनूठी है, उसमें एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। क्योंकि शब्द होता नहीं, सिर्फ चित्र होते हैं। और आई चिंग ऐसी रहस्यपूर्ण किताब है कि कोई भी वचन साफ नहीं है। किसी वचन का कोई साफ मतलब नहीं है; धुंधला— धुंधला है।

ऐसे ही जैसे कि आप आकाश में देखें, बादल घिरे हैं; और बादलों में जो भी चित्र आप देखना चाहें, देख लें। आपको घोड़ा बनाना हो, तो घोड़ा बन जाए; हाथी बनाना हो, तो हाथी बन जाए। जो भी आपको बनाना हो। क्योंकि बादल तो—न वहां हाथी है, न वहां घोड़ा है—सिर्फ धुआं है उड़ता हुआ। रेखाएं प्रतिपल बदल रही हैं। आप उनमें कोई भी कल्पना कर लें, वह आपको दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा।

चांद पर बच्चे देखते हैं कि बुढ़िया चरखा चला रही है। वह उनको दिखाई पड़ने लगता है। एक बार खयाल में आ जाए, फिर दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है।

आई चिंग को लोग पढ़ते हैं; उनका जो अपना प्रश्न है, उसके हिसाब से वे उत्तर निकाल लेते हैं। उत्तर उसमें मिल जाते हैं। लोग सोचते हैं, बड़ी अनूठी किताब है। अनूठी सिर्फ इसलिए है कि जिसने भी रची, वह आदमी मिस्टिफिकेशन में, चीजों को धुंधला करने में महान कारीगर रहा होगा। कोई भी चीज का साफ रेखा में उत्तर नहीं है। इतना धुंधला है उत्तर कि आप जो भी मतलब निकालना चाहें, निकल सकता है। तो हर आदमी अपने मतलब का मतलब निकाल लेता है।

सभी शास्त्र धुंधले हैं। उसका कारण है। इसलिए नहीं कि धुंधले लोगों ने रखे हैं। लेकिन जिस सत्य की चर्चा है, शब्दों में आकर वह सत्य धुंधला हो जाता है। सत्य को शब्द के माध्यम में डालते ही धुंधलापन पैदा हो जाता है।

फिर शास्त्र से अर्थ आप अपना निकालते हैं। तो जो आदमी पढ़ता है, वही आदमी अपने को ही शास्त्र के माध्यम से पढ़ रहा है। इसलिए कोई शास्त्र आपको आपके ऊपर नहीं ले जा सकते, आपके भीतर ही रखेंगे। आपसे ज्यादा कोई शास्त्र आपको नहीं दे सकता। शास्त्र की हालत वैसी है, मैंने सुना है, एक आदमी, का आदमी, गाव का ग्रामीण, आंख के डाक्टर के पास गया। आंखों से उसको दिखना करीब—करीब बंद हो गया था। तो डाक्टर ने कहा, लेकिन आंखों में कोई मूलभूत खराबी नहीं है, चश्मा लगाने से सब ठीक हो जाएगा।

तो उस के आदमी ने कहा, क्या आंखें इतनी ठीक हो जाएंगी कि मैं लिख—पढ़ भी सकूं? डाक्टर ने कहा, बिलकुल। तुम लिख सकोगे, पढ़ सकोगे। तो उसने कहा, तब तो जल्दी करो, क्योंकि लिखना—पढ़ना मुझे आता नहीं।

अब जिसको लिखना—पढ़ना नहीं आता, वह चश्मा लगाने से भी लिख—पढ़ नहीं सकेगा। क्योंकि चश्मा उतना ही बता सकता है, जितना आपको आता हो, उससे ज्यादा नहीं।

शास्त्र में आप वह कैसे पढ़ सकते हैं, जो आपको आता ही नहीं। आप वही पढ़ सकते हैं, जो आपको आता है। इसलिए शास्त्र व्यर्थ हैं। शास्त्र आपको आपसे ज्यादा में नहीं ले जा सकता है, कोई आत्म— अतिक्रमण नहीं हो सकता है।

पर शास्त्र सुविधापूर्ण है। आप जो भी मतलब निकालना चाहें, निकालें। शास्त्र झगड़ा भी नहीं करता। वह यह भी नहीं कह सकता कि आप गलत अर्थ निकाल रहे हैं, कि यह मेरा भाव नहीं है, कि ऐसा मैंने कभी कहा नहीं है। शास्त्र कोई आज्ञा भी नहीं देता। सब आप पर निर्भर है।

इसलिए पहले अहंकार शास्त्र में खोजने की कोशिश करता है। और जब नहीं पाता.। और अभागे हैं वे लोग, जो सोचते हैं कि उनको शास्त्र में मिल गया। सौभाग्यशाली हैं वे लोग, जिनमें कम से कम इतनी बुद्धि है कि वे पहचान लेते हैं कि शास्त्र में हमें नहीं मिला। यह बुद्धिमान का लक्षण है।

अनेक तो बुद्धिहीन सोच लेते हैं कि उन्हें मिल ही गया। शास्त्र के शब्द कंठस्थ कर लेते हैं, और सोचते हैं, बात पूरी हो गई।

शास्त्र से जो असफल हो जाता है, उसकी नजर व्यक्तियों की तलाश में जाती है। क्योंकि अब अहंकार एक पराजय झेल चुका। और अब वह जीवित व्यक्ति में तलाश करेगा।

जीवित व्यक्ति के साथ अड़चनें हैं। पहली तो अड़चन यह है कि उसके सामने झुकना कठिन है। और बिना झुके सीखने का कोई उपाय नहीं है।

दूसरी अड़चन यह है कि आप अपना अर्थ न निकाल सकेंगे। वह जीवित व्यक्ति अपना ही अर्थ, अपने ही अर्थ पर आपको चलाने की कोशिश करेगा। जीवित आदमी को धोखा नहीं दिया जा सकता। अपनी मरजी उस पर थोपी नहीं जा सकती। और वह जीवित आदमी आपको आपके बाहर और आपसे ऊपर ले जाने में समर्थ है।

शास्त्र के द्वारा आत्म—क्रांति करने की कोशिश ऐसे है, जैसे कोई अपने जूते के बंधों को पकड़कर खुद को उठाने की कोशिश करे। आप ही पढ़ रहे हैं; आप ही अर्थ निकाल रहे हैं; आप ही साधना कर रहे हैं! अपने ही जूते के बंध पकड़े हैं और उठाने की कोशिश कर रहे हैं। इससे कुछ परिणाम नहीं है। लेकिन एक परिणाम हो सकता है कि इससे थक जाएं और गुरु की तलाश शुरू हो जाए। इसलिए शास्त्रों की एक ही उपयोगिता है कि वे गुरु तक आपको पहुंचा दें। मृत जीवित तक आपको पहुंचा दे, तो काफी काम है। और आप सोचते हों कि शास्त्र से बचकर हम गुरु तक पहुंच जाएं, तो बहुत कठिन है। क्योंकि वह असफलता जरूरी है। वह शास्त्र में भटकने की चेष्टा जरूरी है। वहां विषाद से, दुख से भर जाना जरूरी है।

दोनों तरह के लोग मेरे पास आ जाते हैं। ऐसा व्यक्ति भी आता है, जो शास्त्र से थक गया है। तो मैं पाता हूं उसके साथ काम बहुत आसान है। क्योंकि वह व्यर्थ से ऊब चुका है। अब उसकी व्यर्थ में बहुत उत्सुकता नहीं है। अब वह सार की ही बात जानना चाहता है, जो की जा सके। अब वह व्यावहारिक है। अब वह शास्त्रीय नहीं है। अब उसकी बौद्धिक चिंता नहीं है बहुत। अब उसकी साधनागत चिंता है। शास्त्र से वह छूट चुका। अब साधना की प्यास उसमें जगी है।

जो लोग बिना शास्त्र को जाने आ जाते हैं, उनकी जिज्ञासा शास्त्रीय होती है। वे पूछते हैं, ईश्वर है या नहीं? संसार किसने बनाया? यह काम तो शास्त्र ही निपटा देता, इनके लिए मेरे पास आने की जरूरत नहीं है। आत्मा कहां से आई? ब्रह्म कहां है? यह सब बकवास तो शास्त्र ही निपटा देता। इस सबके लिए किसी जीवित आदमी की कोई जरूरत नहीं है। और कोई जीवित गुरु इस तरह की व्यर्थ की बातों में पड़ेगा भी नहीं, क्योंकि समय खराब करने को नहीं है।

तो जो लोग शास्त्र से नहीं गुजरे हैं, उनके साथ तकलीफ यह होती है कि उनकी जिज्ञासाएं शास्त्रीय होती हैं और वे व्यर्थ समय जाया करते हैं।

शास्त्र से गुजर जाना अच्छा है। आपकी जो बचपनी, बच्चों जैसी जिज्ञासाएं हैं, उनका या तो हल हो जाएगा या आपको समझ में आ जाएगा कि वे व्यर्थ हैं; उनका कोई मूल्य नहीं है। और आप जीवन में बदलाहट कैसे हो सके, इसकी प्यास से भर जाएंगे। यह प्यास बड़ी अलग है।

और शास्त्रों को आपने समझा हो, तो गुरु को समझना आसान हो जाएगा। क्योंकि जो—जो शास्त्र में छूट गया है, वही—वही गुरु में है। गुरु परिपूरक है। जहां—जहां इशारे थे, थोड़ी दूर तक यात्रा थी और फिर मार्ग छूट जाता था, वहीं से गुरु शुरू होता है। वह परिपूरक है। क्योंकि जहां तक शब्द ले जा सकते हैं, उसके आगे ही गुरु का काम है।

महावीर के जीवन में उल्लेख है, बड़ी हैरानी का उल्लेख है। बुद्ध के जीवन में भी वही उल्लेख है। और सांयोगिक नहीं मालूम होता। महावीर के जो बड़े शिष्य थे ग्यारह, वे ग्यारह के ग्यारह महापंडित ब्राह्मण थे।

महावीर ब्राह्मणों के शत्रु हैं, एक लिहाज से। क्योंकि वे एक नए धर्म की उदभावना कर रहे थे, जो ब्राह्मण और पुरोहित के विरोध में थी। वे मंदिर, पुराने शास्त्र, वेद, उन सब का खंडन कर रहे थे। ईश्वर, उसका इनकार कर रहे थे। खुद क्षत्रिय थे, लेकिन उनके जो ग्यारह गणधर हैं, जो उनके ग्यारह विशेष शिष्य, जिनके आधार पर सारा जैन धर्म खड़ा हुआ, वे सब के सब महापंडित ब्राह्मण हैं। यह जरा हैरानी की बात है।

बुद्ध के साथ भी ठीक यही हुआ। बुद्ध क्षत्रिय हैं। उनके जो भी महाशिष्य हैं, वे सभी ब्राह्मण हैं। और साधारण ब्राह्मण नहीं, असाधारण पंडित हैं।

जब सारिपुत्त बुद्ध के पास आया, तो पांच सौ ब्राह्मण उसके शिष्य थे, उसके साथ आए थे। जब मौदगल्यायन बुद्ध के पास आया, तो उसके साथ पाच हजार उसके शिष्य थे। वह पाच हजार शिष्यों का तो स्वयं गुरु था।

ठीक ऐसा ही महावीर के जीवन में उल्लेख है। गौतम जब आया, सुधर्मा जब आया, तो ये सब बड़े—बड़े पंडित थे। और इनके साथ बड़े शिष्यों का समूह था।

महावीर जिंदा गुरु हैं। ये ग्यारह जो उनके गणधर हैं, ये सब शास्त्र जान चुके थे। ये सब वेद के ज्ञाता थे। पारंगत विद्वान थे। ये महावीर को समझ सके तत्क्षण, क्योंकि जो—जो शास्त्र में छूट रहा था, वह—वह महावीर में मौजूद था। इनको पकड़ फौरन आ गई। ये महाकाश्यप, सारिपुत्त, मौदगल्यायन, ये सब के सब महापंडित थे। इन्होंने सब शास्त्र तलाश लिए थे। शास्त्र में कहीं भी कुछ नहीं बचा था, जो इन्होंने न खोजा हो। फिर भी सब जगह बात अधूरी थी। बुद्ध को देखते ही सब बातें पूरी हो गईं। इस आदमी की मौजूदगी से शास्त्र में जो कमी थी, वह तत्काल भर गई। जहां—जहां शास्त्र का पात्र अधूरा था, वहां—वहा बुद्ध को देखकर पूरा हो गया। जिस तरफ शास्त्रों ने इशारा किया था, यह वही आदमी था।

तो अपने से विपरीत के प्रति भी समर्पण में कठिनाई नहीं आई। ये ग्यारह पंडित महावीर के चरणों में सिर रख दिए। इन्होंने अपने शास्त्रों में आग लगा दी। इन्होंने कहा, अब उनकी कोई जरूरत नहीं। क्योंकि जिंदा आदमी मिल गया, जिसकी हम तलाश करते थे।

नक्शो की तभी तक जरूरत है, जब तक घर न मिल गया हो जिसकी आप खोज कर रहे हैं। फिर आप नक्शो को फेंक देते हैं। फिर आप कहते हैं, मिल गई वह जगह, जिसकी ओर नक्शो में इशारा था, जहां हम चल रहे थे।

तो महावीर ने जब इन गणधरों से कहा कि छोड़ दो वेद। उन्होंने कहा, आपको देखकर ही छूट गए; छोड़ने को अब कुछ बचा नहीं है।

जब बुद्ध ने कहा महाकाश्यप को कि छोड़ दो स्ब—कोई शास्त्र, कोई वेद, कोई ईश्वर। तो उसने कहा, छूट गया! आपको देखते से ही छूट गया। आपकी मौजूदगी काफी है। आप उस सब के सिद्ध प्रमाण हैं, जिसको हम खोजते थे। अब तक पकड़ा था उसको, क्योंकि उसके सहारे खोज चलती थी। अब खोज पूरी हो गई, अब उसकी हमें कोई जरूरत नहीं।

तो आप जानकर चकित होंगे कि शास्त्र अगर ठीक से समझा जाए, तो उसे छोड़ने में जरा भी कठिनाई नहीं आती। जिन्होंने ठीक से नहीं समझा है, उन्हीं को कठिनाई आती है। जिनको शास्त्र पचता नहीं है, उन्हीं की कठिनाई है। वे उसे पकड़े रहते हैं। जिनको शास्त्र पच जाता है, उन्हें छोड़ने में क्या अड़चन है! छूट ही गया, पचने में ही समाप्त हो गया। शास्त्र का काम पूरा हो गया। और जहां शास्त्र पूरा होता है, वहां गुरु की तरफ आंख उठनी शुरू होती है। और गुरु के बिना कोई उपाय नहीं है। शास्त्र से तो कुछ होने वाला नहीं है। इतना ही हो जाए तो काफी है। इतना हो सकता है, पर वह भी आपकी बुद्धिमत्ता पर निर्भर है। आप अगर अपने अर्थ निकालते रहें, तो शायद यह भी न हो पाए।

मुल्ला नसरुद्दीन गुजर रहा था एक मंदिर के पास से। अपने बैलों को लिए जा रहा था। मंदिर में पूजा हो रही थी; आरती चल रही थी; ढोल बज रहे थे, घंटे का नाद हो रहा था। बैल बिचक गए। मुल्ला बहुत नाराज हुआ। वह अंदर पहुंचा। और उसने कहा, यहां क्या हो रहा है? यह क्या कर रहे हो? तो लोगों ने कहा, हम आरती उतार रहे हैं। तो नसरुद्दीन ने कहा, चढ़ाई ही क्यों, जब उतारना नहीं आता?

यह अर्थ उसने निकाला! अर्थ तो बिलकुल साफ है कि जब उतारना ही नहीं आता, इतना धूम—धड़ाका कर रहे हो, उपद्रव कर रहे हो, उतर नहीं रही, तो चढ़ाई किसलिए? पहले उतारना सीख लो, फिर चढ़ाओ।

आप शास्त्र पढ़ेंगे, क्या अर्थ निकालेंगे, वह अर्थ आपके भीतर से आएगा। नसरुद्दीन को पता ही नहीं था कि आरती चढ़ाना क्या है, आरती उतारना क्या है। का समझा, कोई चीज चढ़ा दी, चढ़ गई है, अब उतर नहीं रही है। अब ये इतना शोरगुल मचा रहे हैं, कूद—फांद रहे हैं, और इनसे उतर नहीं रही है।

शब्द कभी भी पूरा नहीं हो सकता। क्योंकि शब्द कोई वस्तु तो नहीं है। शब्द तो सिर्फ संकेत है। संकेत पूरा नहीं हो सकता। संकेत का अर्थ ही है कि वह सिर्फ इशारा है। वहां कुछ है नहीं, वहां सिर्फ तीर जाते' हैं।

सड़क के किनारे पत्थर लगा हुआ है, दिल्ली की तरफ। उस पर लिखा है दिल्ली और एक तीर लगा है। वहां दिल्ली नहीं है। नसरुद्दीन वहीं ठहर सकते हैं, कि आ गई दिल्ली; पत्थर पर लिखा हुआ है।

आप भी अगर शास्त्र को देखकर समझते हों, आ गई दिल्ली, तो भूल में पड़ रहे हैं। वह सिर्फ पत्थर है, जहां एक तीर लगा हुआ है कि यात्रा आगे की तरफ चलती है। अभी और आगे जाना है।

जब दिल्ली सच में आएगी, तो पत्थर पर शून्य बना होगा, वहां तीर नहीं होगा, जीरो होगा। और जिस दिन आपके भीतर भी जीरो आ जाए, शून्य आ जाए, समझना कि दिल्ली आ गई! उस दिन आप पहुंच गए; मुकाम आ गया। शून्य के पहले मुकाम नहीं है।

शास्त्र में खोजें। अगर समझ हो, तो शास्त्र बड़े प्यारे हैं। क्योंकि जिनसे वे निकले हैं, वे अनूठे लोग थे। उनमें उनकी थोड़ी सुवास तो है ही। जिस शब्द का उपयोग बुद्ध ने कर लिया, उसमें बुद्ध की थोड़ी सुवास तो आ ही गई। जो उनके होंठों पर रह लिया, जो इस योग्य समझा गया कि बुद्ध ने उसका अपनी वाणी से उपयोग कर लिया, उसमें बुद्ध थोड़े समा तो गए ही।

अगर आप में थोड़ी समझ हो, तो उतनी झलक उस शब्द से आपको आ सकती है। लेकिन उसके लिए बड़ा हल्का, बड़ा शांत और बुद्धिमत्तापूर्ण हृदय चाहिए। अत्यंत सहानुभूति से भरा हुआ हृदय चाहिए। तब उस शब्द में से थोड़ी—सी गंध आपको पता चलेगी। अगर जोर से झपट्टा मारकर शब्द को पकड़ लिया और कंठस्थ कर लिया, तो वह मर गया।

शब्द बहुत कमजोर हैं। उनकी गर्दन पकड़ने की जरूरत नहीं है। फूल की तरह हैं। तो जैसा कवि शब्दों का उपयोग करता है, वैसा ही जब कोई शास्त्र को पढ़ने वाला शब्दों का उपयोग करने लगता है; आहिस्ते चलता है, धीमे से स्पर्श करता है, शब्द को फुसलाता है, ताकि उससे अर्थ निकल आए। शब्द को निचोड़ता नहीं, पकड़कर उसकी गर्दन ही नहीं दबा देता कि इसकी जान निकालकर देख लें।

बहुत लोग वैसे ही हैं। आपने कहानी सुनी होगी, पुरानी यूरोप में प्रचलित कथा है। ईसप की कहानियों में एक है। कि एक आदमी के घर में एक मुर्गी थी, जो रोज एक सोने का अंडा दे देती थी। फिर लोभ पकड़ा। पति—पत्नी ने विचार किया कि ऐसे हम कब तक जिंदगीभर, एक—एक अंडा रोज मिलता है। और जब अंडा

एक—एक रोज मिलता है, तो इस मुर्गी के भीतर अंडे भरे हैं। तो हम एक दफा इकट्ठे ही निकाल लें। यह रोज की चिंता, फिक्र, आशा, सपना, फिर बाजार जाओ, फिर बेचो—क्या फायदा?

उन्होंने मुर्गी मार डाली। एक भी अंडा न निकला उससे। तब बहुत पछताए, रोएं— धोए; लेकिन फिर कोई अर्थ न था। क्योंकि मुर्गी में कोई अंडे इकट्ठे नहीं हैं। मुर्गी अगर जीवित हो, तो एक—एक अंडा निकल सकता है। अंडा रोज बनता है।

शास्त्रों में जो शब्द हैं, वे भी आपकी सहानुभूति से जीवित हो सकते हैं। और उनमें अर्थ भरा हुआ नहीं है कि आपने निचोड़ लिया और पी गए। वह कोई फलों का रस नहीं है कि आपने निचोड़ा और पीया! शब्द से अर्थ निकल सकता है, अगर सहानुभूति और प्रेम से आपने शब्द को समझा, शब्द को फुसलाया, राजी किया।

इसलिए हिंदुस्तान में हम शास्त्रों का अध्ययन नहीं करते, पाठ करते हैं। पाठ और अध्ययन में यही फर्क है। अध्ययन का मतलब होता है, निचोड़ो; तर्क से, विश्लेषण से अर्थ निकाल लो। पाठ का अर्थ होता, सिर्फ गाओ; भजो। गीत की तरह उपयोग करो, जल्दी नहीं है कुछ अर्थ की। शब्दों को भीतर उतरने दो, डूबने दो, तुम्हारे खून में मिल जाएं, तुम्हारे अचेतन में उतर जाएं। तुम उनके साथ एकात्म हो जाओ। तब शायद मुर्गी अंडा देने लगे।

अति सहानुभूति से, सिम्पैथी से शास्त्र का थोड़ा—सा अर्थ आपको मिल सकता है। और वह अर्थ आपको गुरु की तरफ ले जाने में सहयोगी होगा। क्योंकि वह अर्थ यह कहेगा कि यह तो शास्त्र है; जिनसे शास्त्र निकला है, अब उनकी खोज करो। क्योंकि जब शास्त्र में इतना है, तो जिनसे निकला होगा, उनमें कितना न होगा!

बुद्ध के वचन पढ़े, धम्मपद पढ़ा। तो धम्मपद बड़ा प्यारा है, लेकिन कितना ही प्यारा हो, इससे बुद्ध की क्या तुलना है! इससे बुद्ध का अनुमान भी नहीं लगता कि बुद्ध क्या रहे होंगे! धम्मपद प्यारा है, तो अब बुद्ध की खोज करो।

और बुद्ध कोई ऐसी बात थोड़े ही हैं कि एक दफा होकर नष्ट हो गए। रोज बुद्ध होते रहते हैं। अनेक लोगों में बुद्धत्व की घटना घटती है। इसलिए कभी पृथ्वी खाली नहीं होती। बुद्ध सदा मौजूद होते हैं। तो जरूरत नहीं है कि पच्चीस सौ साल पीछे अब जाओ, तब कहीं बुद्ध मिलेंगे। धम्मपद वाले बुद्ध न मिलें, तो कोई और बुद्ध मिल जाएगा। उसी को हम गुरु कहते हैं।

धम्मपद पढ़ा; गीता पढ़ी। गीता पढ़कर रस आया, तो अब कृष्ण की तलाश करो। कृष्ण सदा मौजूद हैं। वही गुरु का अर्थ है।

गुरु का अर्थ है, अब हम उसको खोजेंगे, जिनसे ऐसे शास्त्र निकले हैं। अब हम, जो निकला है, उससे राजी नहीं रहेंगे। अब हम गंगोत्री की तलाश करेंगे, जहां से गंगा निकलती है।

लोग गंगोत्री की यात्रा पर जाते हैं। पूरी गंगा का चक्कर लगाकर गंगोत्री तक पहुंचते हैं। ऐसे ही शास्त्रों की पूरी यात्रा करके गुरु तक पहुंचना होता है।

गुरु का अर्थ है, जहां से शास्त्र निकलते हैं। गुरु का अर्थ है, जिसने जाना, जिसने जीया सत्य को, और अब जिससे सत्य बहता है।

और गुरु से कभी पृथ्वी खाली नहीं होती। कहीं न कहीं कोई न कोई बुद्ध है ही। कहीं न कहीं कोई न कोई कृष्ण है ही। कहीं न कहीं कोई न कोई क्राइस्ट है ही।

तकलीफ हमारी यह है कि आप पुराने लेबल से जीते हैं, कि उस पर कृष्ण लिखा हुआ हो। वह नहीं मिलेगा। कि उस पर महावीर लिखा हो, तो हम मानेंगे। महावीर जिस पर लिखा था, वह एक दफा हो चुका। अब गुरु तो मिल सकता है, लेकिन पुराने नाम से नहीं मिलेगा।

नाम भर मिटते हैं। नाम बदलते चले जाते हैं। और अगर शास्त्र को सहानुभूति से समझा हो, उसकी कविता को भीतर पच जाने दिया हो, उसका गीत आपमें गंजने लगा हो, तो आप समझ जाएंगे कि नामों का कोई मूल्य नहीं है। तो फिर क्या को पकड़ लेना कहीं भी आसान है।

और गीता अगर कृष्ण तक न ले जाए, तो गीता का कोई भी सार नहीं है। इसीलिए सदियों—सदियों तक गीता की, वेद की, कुरान की, बाइबिल की हम चर्चा करते हैं। वह चर्चा इसीलिए है। वह एक तरह का जाल है।

मुझसे लोग पूछते हैं कि आप क्यों गीता पर बोल रहे हैं?

वह एक तरह का जाल है। जो मैं गीता पर बोल रहा हूं, वह सीधे ही बोल सकता हूं क्योंकि मैं ही बोल रहा हूं, गीता सिर्फ बहाना है। आखिर गीता का बहाना लेने की जरूरत भी क्या है?

तुम्हारी वजह से वह मुसीबत उठानी पड़ रही है। वह मैं सीधे ही बोल सकता हूं। लेकिन तुम्हें पुराने नाम का मोह है; कृष्ण का मोह है। अगर कृष्ण मार्का लगा हो, तो तुम को लगेगा कि ठीक है। बात ठीक होनी चाहिए।

जो मैं कह रहा हूं वह मैं कह रहा हूं। कृष्ण को किनारे रखकर कह सकता हूं। क्या अड़चन है! कृष्ण को भी बीच में लूं, तो भी जो मुझे कहना है, वही मैं कहूंगा। कृष्ण उसमें कुछ उपद्रव खड़ा नहीं कर सकते। पर उनके नाम का उपयोग तुम्हारी वजह से है। तुम्हें पुराने जालों का मोह है; और मुझे मछलियों से मतलब है। तुम पुराने में फंसते हो कि नए में, इससे क्या! तुम्हारा अगर पुराने जाल से ही मोह है, तो ठीक है।

गीता पर, कुरान पर, बाइबिल पर, ताओ तेह किंग पर, जो हजारों वर्ष तक चर्चा चलती है, उसका प्रयोजन यही है कि लोग पुराने के मोह में हैं। ठीक है। उनको कष्ट भी न हो और धीरे—धीरे उनको जब समझ में आ जाएगा, तो पुराने का मोह भी छूट जाएगा। शास्त्र से गुरु, और गुरु से स्वयं—ऐसी यात्रा है। शास्त्र ले जाएगा गुरु तक, और गुरु पहुंचा देगा स्वयं तक। और जब तक स्वयं का शून्य न आ जाए, तब तक समझना कि अभी मंजिल नहीं आई।

अब हम सूत्र को लें।

हे अर्जुन, इस संसार में क्षर अर्थात नाशवान और अक्षर अर्थात अविनाशी, ये दो प्रकार के पुरुष हैं। उनमें संपूर्ण भूत प्राणियों के शरीर तो क्षर अर्थात नाशवान और कूटस्थ जीवात्मा अक्षर अर्थात अविनाशी कहा जाता है। तथा उन दोनों से उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सब का धारण—पोषण करता है एवं अविनाशी ईश्वर और परमात्मा, ऐसा कहा गया है।

क्योंकि मैं नाशवान जड्वर्ग क्षेत्र से तो सर्वथा अतीत हूं और माया में स्थित अक्षर अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम हूं, इसलिए लोक में और वेद में पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूं।

यह सूत्र पुरुषोत्तम की व्याख्या है। पुरुषोत्तम शब्द हमें परिचित है। लेकिन कृष्ण का अर्थ खयाल में लेने जैसा है।

कृष्ण कह रहे हैं कि तीन स्थितियां हैं। एक विनाशशील जगत है। उस विनाशशील जगत के भीतर छिपा हुआ एक अविनाशी तत्व है। और इस अविनाशी और विनाशी दोनों के पार, दोनों को अतिक्रमण करने वाला एक तीसरा तत्व है।

इसे हम ऐसा कहें शरीर, संसार, आत्मा और परमात्मा। शरीर क्षर है, प्रतिपल विनष्ट हो रहा है, प्रतिपल बह रहा है, परिवर्तन है। शरीर के भीतर छिपी हुई आत्मा अविनाशी है। इन दोनों के पार क्या कहते हैं, मैं हूं; जो पुरुषोत्तम है। ये दो पुरुष, एक क्षर और एक अक्षर, और दोनों के पार मैं हूं।

जो लोग भी दार्शनिक चिंतन करते हैं, उनको सवाल उठता है कि दोनों से काम हो जाता है, तीसरे की क्या जरूरत है? जैनों की यही मान्यता है। वे कहते हैं, संसार है और आत्मा है। बात खतम हो गई। जीव है और अजीव है। क्षर है और अक्षर है। यह तीसरे की क्या जरूरत है! इन दो से काम हो जाता है। दोनों अनुभव के हिस्से हैं। इसलिए जैन विचार द्वैत पर पूरा हो जाता है। लेकिन कृष्ण कहते हैं, मैं तीसरा हूं। जैन विचार में इसलिए परमात्मा की कोई जगह नहीं है, क्योंकि तीसरे की कोई जगह नहीं है।

कृष्ण का यह जोर तीसरे के लिए क्यों है, यह समझना जरूरी है। क्योंकि अगर दो ही हैं, तो दोनों बराबर मूल्य के हो जाते हैं। दोनों का संतुलन हो जाता है। जैसे एक तराजू है, उस पर दो पलवे लगे हैं। और अगर एक तीसरा काटा नहीं, जो दोनों का अतिक्रमण करता हो, तो तराजू बिलकुल व्यर्थ हो जाता है।

एक कांटा चाहिए जो दोनों का अतिक्रमण करता है। और चूंकि दोनों के पार है, इसलिए हिसाब भी बता सकता है कि किस तरफ बोझ ज्यादा है और किस तरफ बोझ कम है। तौल संभव हो सकती है।

अगर पदार्थ है और आत्मा है, और इन दोनों के पार कुछ भी नहीं है, तब बडी अड़चन है। क्योंकि तब पदार्थ और आत्मा के बीच न तो कोई जोड्ने वाला है, न कोई तोड्ने वाला है। पदार्थ और आत्मा के बीच जो संघर्ष है, उससे पार जाने का भी उपाय नहीं है। इसलिए जैन चिंतन में एक पहेली सुलझती नहीं। जैन विचारकों से पूछा जाता रहा है कि आत्मा इस संसार में उलझी क्यों? तो उनकी बड़ी कठिनाई है। वे कैसे बताएं कि उलझी। अगर वे कहें कि पदार्थ ने खींच ली, तो पदार्थ ज्यादा शक्तिशाली हो जाता है। और अगर पदार्थ ज्यादा शक्तिशाली है, तो तुम मुक्त कैसे होओगे?

अगर वे कहते हैं, आत्मा खुद ही खिंच आई अपनी मरजी से, तो सवाल यह उठता है कि कल हम मुक्त भी हो गए, फिर भी आत्मा खिंच आए, तो क्या करेंगे? क्योंकि कभी आत्मा अपने आप खिंच आई बिना किसी कारण के, तो मुक्ति फिर शाश्वत नहीं हो सकती। मोक्ष में भी पहुंचकर क्या भरोसा, दस—पाच दिन में ऊब जाएं और आत्मा फिर खिंच आए! इतनी मेहनत करें—तप, उपवास, तपश्चर्या, ध्यान, साधना—मोक्ष में जाकर पंद्रह दिन में ऊब जाएं, और आत्मा फिर पदार्थ में खिंच आए।

फिर पूछा जाता है, इन दोनों के बीच नियम क्या है? किस नियम से दोनों का मिलना और हटना चलता है?

तीसरे को चूंकि वे स्वीकार नहीं करते, इसलिए बड़ी अड़चन है। और ध्यान रहे, गणित या तर्क की कोई भी चीज उलझ जाएगी, अगर दो के बीच तीसरी न हो। इसलिए हिंदू ईसाई, मुसलमान, दो की जगह त्रैत में विश्वास करते हैं, ट्रिनिटी में, त्रिमूर्ति में।

जहां दो हैं वहा तीसरा भी मौजूद रहेगा। क्योंकि दो को जोड़ना हो, तो तीसरे की जरूरत है; दो को तोड़ना हो तो, तीसरे की जरूरत है। दो के पार जाना हो, तो तीसरे की जरूरत है। दो के बीच जो नियम है, जो शाश्वत व्यवस्था चल रही है, उसके लिए भी तीसरे की जरूरत है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, मैं तीसरा हूं। और गहरे अनुभव से भी यही सिद्ध होता है।

एक तो शरीर है, जो दिखाई पड़ता है हमें। एक हमारा मन है, हमारी तथाकथित चेतना है, जो हमने अभी तक नहीं देखी। लेकिन अगर हम थोड़ा भीतर पीछे हटें और शांत हों, तो हमें मन भी दिखाई पड़ने लगेगा। और जब मन भी दिखाई पड़ेगा, तब हम तीसरे हो जाएंगे। तब एक तो शरीर होगा पदार्थ से निर्मित, और एक मन होगा चेतन कणों से निर्मित, और एक हम होंगे। और यह हमारा होना सिर्फ साक्षी का भाव होगा, द्रष्टा का भाव होगा। हम सिर्फ देखने वाले होंगे। ये दोनों का खेल चल रहा होगा, हम सिर्फ देखने वाले होंगे।

यह जो तीसरा है, यह पुरुषोत्तम है। यह पुरुषोत्तम प्रत्येक में छिपा है। पर्त शरीर की ऊपर है, फिर पर्त मन की ऊपर है। इन दोनों परतों को हम तोड़ दें, तो यह पुरुषोत्तम हमें उपलब्ध हो सकता है। अब हम कृष्ण के सूत्र को खयाल में लें।

इस संसार में क्षर अर्थात नाशवान और अक्षर अर्थात अविनाशी, ये दो प्रकार के पुरुष हैं। उनमें संपूर्ण भूत प्राणियों के शरीर तो क्षर अर्थात नाशवान और कूटस्थ जीवात्मा अक्षर अर्थात अविनाशी कहा जाता है। तथा उन दोनों से उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जो कि तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका धारण—पोषण करता है एवं अविनाशी ईश्वर और परमात्मा, ऐसा कहा गया है।

क्योंकि मैं नाशवान जडवर्ग क्षेत्र से तो सर्वथा अतीत हूं और माया में स्थित अक्षर अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम हूं इसलिए लोक में और वेद में पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूं।

ये तीन परतें दार्शनिक सिद्धात नहीं हैं। ये तीन परतें आपके भीतर अनुभव की परतें हैं। जैसे—जैसे आप भीतर जाएंगे, वैसे—वैसे पर्त उघड़नी शुरू हो जाएगी।

अधिक लोग पहली पर्त पर ही रुके हैं, जो अपने को मान लेते हैं कि मैं शरीर हूं। जिस व्यक्ति ने अपने को मान लिया कि मैं शरीर हूं, वह अपने भीतरी खजानों से अपने ही हाथ से वंचित रह जाता है। उसका तर्क ही गलत नहीं है, उसका पूरा जीवन ही अधूरा अधकचरा हो जाएगा। क्योंकि जो वह हो सकता था, जो उसके बिलकुल हाथ के भीतर था, वह उसने ही द्वार बंद कर दिए। जैसे अपने ही घर के बाहर आप बैठे हैं ताला लगाकर, और कहते हैं कि यही घर है। बाहर की जो छपरी है, उसको घर समझे हुए हैं। पोर्च में जी रहे हैं, उसको घर समझे हुए हैं।

नास्तिक की, शरीरवादी की भूल तार्किक नहीं है, जीवनगत है, एक्सिस्टेंशियल है। और एक दफा आप पक्का जड़ पकड़ लें कि यही मेरा घर है, तो खोज बंद हो जाती है। फिर आप डरते हैं, फिर आप आंख भी नहीं उठाते, फिर प्रयत्न भी नहीं करते।

आस्तिक के साथ संभावना खुलती है। क्योंकि आस्तिक कहता है, तुम जहां हो, उतना ही सब कुछ नहीं है और भीतर जाया जा सकता है। इसलिए नास्तिक बंद हो जाता है। आस्तिक सदा खुला है। और खुला होना शुभ है।

अगर आस्तिक गलत भी हो, तो भी खुला होना शुभ है, क्योंकि खोज हो सकती है। जो छिपा है, उसको हम प्रकट कर सकते हैं। नास्तिक अगर ठीक भी हो, तो भी गलत है, क्योंकि खोज ही बंद हो गई, आदमी जड़ हो गया। उसने मान लिया कि जो मैं हूं बस, यह बात समाप्त हो गई।

जैसे एक बीज समझ ले कि बस, बीज ही सब कुछ है, तो फिर अंकुरण होने का कोई कारण नहीं है। फिर अंकुरित हो, जमीन की पर्त को तोड़े, कष्ट उठाए, आकाश की तरफ उठे, सूरज की यात्रा करे—यह सब बंद हो गया। बीज ने मान लिया कि मैं बीज हूं। जो व्यक्ति मान ले कि मैं शरीर हूं उसने अपने ही हाथ से अपने पैर काट लिए। पोर्च भी हमारा है, लेकिन घर के और भी कक्ष हैं। और जितने भीतर हम प्रवेश करते हैं, उतने ही सुख, उतनी ही शांति, उतने ही आनंद में प्रवेश होता है। क्योंकि उतने ही हम घर में प्रवेश होते हैं। उतने ही विश्राम में हम प्रवेश होते हैं।

कृष्ण कहते हैं, शरीर, वह क्षर; आत्मा, वह अविनाशी, शरीर के साथ जुड़ा हुआ; और इन दोनों के पार साक्षी— आत्मा है, दोनों से मुक्त।

आत्मा और साक्षी— आत्मा में इतना ही फर्क है। वे दो नहीं हैं। एक ही चेतना की दो अवस्थाएं हैं।

आत्मा का अर्थ है, शरीर से जुड़ी हुई। आत्मा का अर्थ है, जिसे खयाल है मैं का। आत्मा शब्द का भी अर्थ होता है, मैं, अस्मिता। जिस आत्मा को खयाल है शरीर से जुड़े होने का, उसको खयाल होता है मैं का।

शरीर से मैं भिन्न हूं, तो मैं भी खो जाता है। और मैं के खोते ही सिर्फ शुद्ध चैतन्य रह जाता है। वहा यह भी खयाल नहीं है कि मैं हूं। उस शुद्ध चैतन्य का नाम पुरुषोत्तम है।

ये आपके ही जीवन की तीन परतें हैं। और पहली पर्त से तीसरी पर्त तक यात्रा करनी ही सारी आध्यात्मिक खोज और साधना है। और तीसरी का लक्षण है कि वह दोनों के पार है। न तो वह देह है, न वह मन है। न वह पदार्थ है, न अपदार्थ है। वह दो से भिन्न, तीसरा है।

आप अपने भीतर कभी—कभी उसकी झलक पाते हैं। और चेष्टा करें, तो कभी—कभी उसकी झलक आयोजन से भी पा सकते हैं। भोजन कर रहे हैं, तब एक क्षण को देखने की कोशिश करें। भोजन शरीर में जा रहा है, भोजन क्षर है और क्षर में जा रहा है। लेकिन जो उसे शरीर में पहुंचा रहा है, वह आत्मा है। और आत्मा मौजूद न हो, तो शरीर भोजन न तो कर सकेगा, न पचा सकेगा। भूख शरीर में लगती है, लेकिन जिसको पता चलता है, वह आत्मा है। आत्मा

न हो, तो शरीर को भूख लगेगी नहीं, पता भी नहीं चलेगी। भूख शरीर में पैदा होती है, लेकिन जिसको एहसास होता है, वह आत्मा है।

भूख, भूख की प्रतीति, ये दो हुए तल। क्या आप तीसरे को भी खोज सकते हैं, जो देख रहा है दोनों को कि शरीर में भूख लगी और आत्मा को भूख का पता चला और मैं दोनों को देख रहा हूं। इस तीसरे की थोड़ी— थोड़ी झलक पकड़ने की कोशिश करनी चाहिए।

कोई भी अनुभव हो, उसमें तीनों मौजूद रहते हैं। इन तीन के बिना कोई भी अनुभव निर्मित नहीं होता। लेकिन तीसरा छिपा है पीछे। इसलिए अगर आप बहुत संवेदनशील न हों, तो आपको उसका पता नहीं चलेगा। वह गुप्ततम है।

वह जो पुरुषोत्तम है, वह गुप्ततम भी है। जितनी संवेदना आपकी बढ़ेगी, धीरे— धीरे उसकी प्रतीति होनी शुरू होगी।

कोई आदमी आपको गाली दे रहा है। तत्क्षण गाली देने वाला और आप गाली सुनने वाले, गाली और आप, दो हो गए। अगर थोड़ी संवेदना को जगाए, तो आपको वह भी भीतर दिखाई पड़ जाएगा जो दोनों को देख रहा है। गाली दी गई, तो गाली भौतिक है; कान पर चोट पड़ी, मस्तिष्क में शब्द घूमे, मस्तिष्क ने व्याख्या की; यह सब भौतिक है। मस्तिष्क ने कहा, यह गाली बुरी है।

मुल्ला नसरुद्दीन को उसका पड़ोसी एक दिन कह रहा था कि तुम्हारा लड़का जो है फजलू बहुत भद्दी और गंदी गालियां बकता है। नसरुद्दीन ने कहा, बड़े मियां, कोई फिक्र न करो; छोटा है, बच्चा है, नासमझ है। जरा बड़ा होने दो, अच्छी— अच्छी गालियां भी बकने लगेगा।

व्याख्या की बात है। कभी—कभी गाली अच्छी भी लगती है, जब मित्र देता है। सच में मित्रता की कसौटी यह है कि गाली अच्छी लगे। अगर मित्र एक—दूसरे को गाली न दें, तो समझते हो कि कोई मित्रता में कमी है, मिठास नहीं है।

शत्रु भी गाली देते हैं, वही गाली; मित्र भी गाली देते हैं, वही गाली, शत्रु के मुंह से सुनकर बुरी लगती है, मित्र के मुंह से सुनकर भली लगती है, प्यारी लगती है। तो नसरुद्दीन एकदम गलत नहीं कह रहा है। अच्छी गालियां भी हैं ही। व्याख्या पर निर्भर है।

शरीर पर चोट पड़ती है, कान पर झंकार जाती है, मस्तिष्क व्याख्या करता है। यह सब भौतिक घटना है। व्याख्या जो करता है, वह चेतना है। इसलिए वझई गाली भली भी लग सकती है कभी, वही गाली बुरी भी लग सकती है कभी। वह जो व्याख्या करने वाली है, वह चेतना है।

क्या आपके पास कोई तीसरा तत्व भी है, जो दोनों को देख सके? इस घटना को भी देखे, इस बड़े यंत्र की प्रक्रिया को—गाली, कान में जाना, मस्तिष्क में चक्कर, शब्दों का व्याघात, ऊहापोह; फिर आत्मा का अर्थ निकालना। और क्या इनके पीछे दोनों को देख रहा हो कोई, ऐसी कभी आपको प्रतीति होती है? तो वही पुरुषोत्तम है। न प्रतीति होती हो, तो उसकी तलाश करनी चाहिए। और हर अनुभव में क्षणभर रुककर उसकी तरफ खयाल करना चाहिए।

लेकिन हमारी मुसीबत यह है कि जब भी कोई अनुभव होता है, हम बाहर दौड़ पड़ते हैं। किसी ने गाली दी; व्याख्या की, हम बाहर गए। उस आदमी पर नजर पड़ जाती है, जिसने गाली दी। क्यों दी गाली? या उसको कैसे हम बदला चुकाएं? तो जब हमें भीतर जाना था और तीसरे को खोजना था, तब हम बाहर चले गए। वह क्षणभर का मौका था, खो गया। रोज ऐसे अवसर खो जाते हैं।

तो जब भी आपके भीतर कोई घटना घटे, बाहर न दौड़कर भीतर दौड़ने की फिक्र करें। तत्क्षण! ध्यान बाहर न जाए, भीतर चला जाए। और भीतर अगर ध्यान जाए, तो आप पाएंगे साक्षी को खड़ा हुआ। और अगर साक्षी आपके खयाल में आ जाए, तो पूरी स्थिति बदल जाएगी, पूरी स्थिति का अर्थ बदल जाएगा।

किसी ने गाली दी हो, आत्मा व्याख्या करती है कि बुरा है या भला है, कोई प्रतिक्रिया करती है। अगर उसी वक्त तीसरा भी दिखाई पड़ जाए, तो भी आत्मा फिर व्याख्या करेगी। अब यह तीसरे की व्याख्या करेगी जो भीतर छिपा है। और हो सकता है, आपको हंसी आ जाए। शायद आप खिलखिलाकर हंस पड़े।

वह जो बाहर गाली आई थी, वह भी मस्तिष्क में आई, उसकी व्याख्या आत्मा ने की। फिर आपने पीछे लौटकर देखा और साक्षी का अनुभव हुआ, यह भी अनुभव मस्तिष्क में आएगा और आत्मा इसकी भी व्याख्या करेगी।

अगर आपको साक्षी दिखाई पड़ जाए, तो आपकी मुस्कुराहट धीरे— धीरे सतत हो जाएगी। हर अनुभव में आप हंस सकेंगे। क्योंकि हर अनुभव लीला मालूम पड़ेगा। और हर अनुभव एक गहरी मजाक भी मालूम पड़ेगी कि यह क्या चल रहा है! क्या हो रहा है! और इतनी क्षुद्र बातों को मैं इतना मूल्य क्यों दे रहा हूं! मैंने सुना है कि एक स्त्री ने अपने घर के भीतर झांककर अपने पति को कहा कि बाहर एक आदमी पड़ा है। पागल मालूम होता है। सामने सड़क पर लेटा है। पति ने भीतर से ही पूछा, लेकिन उसे पागल कहने का क्या कारण है? पत्नी ने कहा, पागल कहने का कारण यह है कि एक केले के छिलके पर फिसलकर वह गिर पड़ा है। उठ नहीं रहा है, केले को पड़ा—पड़ा गाली दे रहा है।

कोई भी सामान्य आदमी होता, तो पहला काम वह यह करता है कि किसी ने देख तो नहीं लिया! कपड़े झाड़कर, जैसे कुछ भी नहीं हुआ। केले को गाली भी देगा, तो भीतर और बाद में।

पत्नी ने कहा, आदमी बिलकुल पागल मालूम होता है। लेटा है वहीं, जहां गिर गया है; और सामने केले का छिलका पड़ा है, उसको गाली दे रहा है!

पति ने कहा, एक बात तय है, पागल हो या न हो, सामान्य नहीं है। मैं आया। वह बाहर जाकर देख रहा है। वह आदमी गाली भी दे रहा है, मुस्कुरा भी रहा है। तो उसने आदमी को पूछा कि यह क्या कर रहे हो? उसने कहा, बाधा मत दो।

वह एक सूफी फकीर था। वह केले पर से गिर पड़ा है। एक घटना घटी, एक भौतिक घटना। उसके मस्तिष्क में खबर पहुंची, जो सामान्य आदमी के सभी के पहुंचेगी। और जो केले पर नाराजगी आएगी, वह भी आई। लेकिन वहां से भागा नहीं वह। क्योंकि वह चूक जाएगा क्षण। वह वहीं लेट गया। क्योंकि यह मौका खो देने जैसा नहीं है।

एक केले का छिलका क्या कर रहा है? भीतर क्या हो रहा है? तो मस्तिष्क जो भी करना चाहता है, वह गाली भी दे रहा है। लेकिन एक तीसरी घटना वहा घट रही है। वह इन दोनों को देख भी रहा है, अपनी इस पागलपन की अवस्था को, इस पड़े हुए छिलके को। इस पूरी घटना में वह पीछे है, और धीमे—धीमे मुस्कुरा भी रहा है। इसलिए अक्सर संत पागल भी मालूम पड़ सकते हैं। एक बात तो पक्की है कि वे सामान्य नहीं हैं। एबनार्मल तो हैं ही। असाधारण तो हैं ही। क्योंकि आप यह नहीं कर सकेंगे। मगर अगर कर सकें, तो जो हंसी आएगी भीतर से……..।

आप कभी एक बात को सोचते हैं कि जब दूसरा आदमी कुछ करता है, उसमें आपको हंसी आती है। जैसे एक आदमी केले के छिलके से फिसला और गिर पड़ा। ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जिसको देखकर हंसी न आ जाए। अगर दूसरे को देखकर आपको इतनी हंसी आती है, कभी आपने खुद फिसलकर गिरकर और फिर हंसकर देखा? तब आपको तीसरे तत्व का थोड़ा—सा अनुभव होगा। क्योंकि उस वक्त गिरने वाले आप होंगे, गिरने वाले की जो प्रतिक्रिया है, वह भी आप होंगे, और देखने वाले भी आप होंगे। दूसरे को गिरते देखकर आप हंसते हैं, क्योंकि स्थिति पूरी की पूरी मजाक जैसी मालूम पड़ती है। पर कभी आपने इस पर विचार किया है कि ऐसा होता क्यों है? आखिर केले में, उसके छिलके पर से गिर जाने में ऐसा क्या कारण है जिससे हंसी आती है? इसमें हंसने योग्य क्या है?

मनोवैज्ञानिक बड़ी खोज करते हैं। क्योंकि इसमें हंसी सभी को आती है, सारी दुनिया में आती है। इसका कारण क्या है? इसमें ऐसी कौन—सी बात है जिसको देखकर हंसी आती है?

मेरी जो दृष्टि है, मुझे जो कारण दिखाई पड़ता है, वह यह है कि आदमी के अहंकार को केले का छिलका भी गिरा देता है, उसे देखकर हंसी आती है।

वह आदमी अकड़कर चला जा रहा था, हैट—वैट लगाए था, टाई वगैरह सब। ऐसा बिलकुल शक्तिशाली आदमी, अचानक एक केले का छिलका उसको जमीन पर चारों खाने चित्त कर देता है। उसकी सब सामर्थ्य खो जाती है। अकड़ खो जाती है। क्षणभर में पाता है कि दीन है, सड़क पर पड़ा है। इस दीनता से एकदम हंसी आती है। आदमी की इस असहाय अवस्था पर। उसके अकड़पन की स्थिति और फिर एकदम जमीन पर पड़े होने में इतना अंतराल है, इतना फर्क है, कि यह आप पहचान ही नहीं सकते थे कि यह आदमी केले के छिलके से गिरने वाला है। गिरने वाला नहीं है। यह सम्राट हो सकता है।

इसलिए आप खयाल रखें, अगर एक भिखारी गिरेगा, कम हंसी आएगी। अगर एक सम्राट गिरेगा, ज्यादा हंसी आएगी। आप सोचें, एक भिखारी गिर पड़े, आप कहेंगे, ठीक है। एक छोटा बच्चा गिरेगा, तो शायद हंसी न भी आए। क्योंकि बच्चे को हम समझते हैं, बच्चा ही है, इसकी अकड़ ही क्या है अभी! लेकिन अगर एक सम्राट गिरेगा, तो आप बिलकुल पागल हो जाएंगे हंस—हंसकर।

जिस—जिस स्थिति में हंसी आती है आपको देखकर, कभी—कभी उस स्थिति में अपने को देखें। तब भी एक हंसी आएगी; और वह हंसी ध्यान बन जाएगी; और उस हंसी से आपको साक्षी की झलक मिलेगी।

कोई भी अनुभव हो, तीसरे को पकड़ने की कोशिश करें। पुरुषोत्तम की तलाश जारी रखें। और हर अनुभव में वह मौजूद है। इसलिए न मिले, तो समझना कि अपनी ही कोई भूल—चूक है। मिलना चाहिए ही। क्षुद्र अनुभव हो कि बड़ा अनुभव हो, कैसा भी अनुभव हो, पुरुषोत्तम भीतर खड़ा है।

स्वामी राम को कुछ लोगों ने गाली दी, तो वे हंसते हुए वापस लौटे। लोगों ने कहा, इसमें हंसने की क्या बात है? लोगों ने अपमान किया है! राम ने कहा कि मैं देख रहा था। और जब राम को गाली पड़ने लगीं, और राम भीतर— भीतर कुनमुनाने लगा, तो मुझे हंसी आने लगी। मैं भीतर कहने लगा कि ठीक हुआ, अब भुगतो राम! अब भोगो फल!

यह जो भीतर से अपने को भी दूर खड़े होकर देखना है, यही पुरुषोत्तम तत्व है। और जिस व्यक्ति को यह धीरे—धीरे सध जाए, उसकी मा ने आंख बंद कर लीं। उसके चेहरे पर एक समाधि का भाव आ गया। उसने कहा, बेटे, अगर सोलह साल की हो जाऊं, तो फिर कुछ चाहने को बचता भी नहीं है। उतना काफी है। उतना बहुत है, फिर कुछ चाहने को बचता नहीं है।

जैसे ही किसी को भीतर के पुरुषोत्तम का स्वर सुनाई पड़ता है, फिर कुछ चाहने को बचता नहीं है। वह पा लेना सब पा लेना है। लेकिन उसकी तलाश करनी होगी। पास ही है बहुत, फिर भी खोदना पड़ेगा। और जितनी त्वरा से खोदेंगे, जितनी तीव्रता से, उतना ही निकट उसे पाएंगे। अगर तीव्रता परिपूर्ण हो, सौ प्रतिशत हो, तो बिना खोदे भी मिल सकता है।

धीरे— धीरे बेमन से खोदेगे, तो बहुत दूर है। ऐसे ही खोदेंगे कि चलो देख लें, शायद हो, कभी न मिलेगा। क्योंकि खोदने की भावना क्या है, इस पर सब निर्भर है। अगर कोई तीव्रता से, पूर्ण तीव्रता से चाहे, तो किसी भी क्षण उसके द्वार खुल जाते हैं।

और हमें अगर जन्मों—जन्मों से नहीं मिला पुरुषोत्तम, तो उसका कारण यह नहीं है कि वह दूर है। उसका एक कारण है कि एक तो हमने खोजा ही नहीं। कभी खोजा भी, तो बेमन से खोजा। कभी गहरी प्यास से न पुकारा। कभी पुकारा भी, तो ऐसा कि लोगों को दिखाने के लिए पुकारा। प्रार्थना भी की, तो वह हार्दिक न थी; ऊपर—ऊपर थी, शब्दों की थी।

अगर इतना स्मरण रहे, तो उसे किसी भी क्षण पाया जा सकता है। हाथ बढ़ाने भर की बात है।

गीता दर्शन–(भाग–7)
अध्याय—15 (प्रवचन—सातवां) — प्यास और धैर्य

सूत्र—

यो मामैवमसंमूढो जानति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वोविद्भजति मां सर्वभावेन भारत।।19।।
इति गुह्यतमं शास्त्रीमदमुक्तं मयानघ।
एतदबद्ध्वा बुद्धिमान्स्यत्कृतकृत्यश्च भारत।।20।।
है भारत, हस प्रकार तत्व से जो ज्ञानी पुरुष मेरे को पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकार मे निरंतर मुझ परमेश्वर को ही भजता है।

है निष्पाप अर्जुन, ऐसे यह अति रहस्ययुक्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया, हमको तत्व से जानकर मनुष्य ज्ञानवान और कृतार्थ हो जाता है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्न :
कल आपने कहा कि बिना शास्त्रों को पढे गुरु की तलाश नहीं करनी चाहिए, मगर मैंने कभी शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया और आपको पहली बार सुनकर ही गुरु मान लिया है। तो क्या मेरा रास्ता गलत है? कल से मुझे सूझ नहीं पड़ता; क्या मैं सदा ही भटकता रहूंगा?
बहुत—सी बातें समझनी जरूरी हैं। पहली बात, यह जन्म आपका पहला नहीं है। आप जमीन पर नए नहीं हैं। बहुत बार हुए हैं, बहुत बार खोजा है, बहुत बार शास्त्रों में भी खोजा है, बहुत बार गुरुओं के चरणों में भी बैठे हैं। सारे जन्मों का सार—संचित आपके साथ है।

यदि कभी ऐसा घटित होता हो कि किसी के निकट गुरु— भाव पैदा हो जाता हो, तो उसका केवल एक ही अर्थ है कि पिछले जन्मों की अनंत यात्रा में गुरु के प्रति समर्पित होने की पात्रता अर्जित की है। अगर वैसा न हो, तो गुरु— भाव पैदा होना संभव नहीं है।

जैसे फूल तो तभी लगेंगे वृक्ष पर, जब वृक्ष बड़ा हो गया हो, शाखाएं फैल गई हों, पत्ते लग गए हों, और फूल लगने का समय आ गया हो। बीज से सीधे फूल कभी नहीं लगते।

तो पहली बात तो यह खयाल रखनी चाहिए कि यदि सच में गुरु— भाव पैदा हुआ हो, तो शास्त्रों की खोज पूरी हो गई होगी। वह चाहे शांत न भी हो; चाहे आपके चेतन मन को उसका पता भी न हो।

और अगर गुरु—भाव भ्रांत हो, मिथ्या हो, सिर्फ खयाल हो, पैदा न हुआ हो, तो ज्यादा देर टिकेगा नहीं। उसका कोई बहुत मूल्य नहीं है। वह ऐसे ही है, जैसे फूल को किसी ने बीज के ऊपर रख दिया हो; बीज से निकला न हो।

यदि गुरु— भाव वस्तुत: पैदा हुआ है, तो जीवन बदलना शुरू हो जाएगा। वही लक्षण है कि गुरु— भाव वास्तविक है या नहीं। क्योंकि गुरु— भाव एक बड़ी क्रांतिकारी घटना है। किसी के प्रति समर्पण की भावना जीवन को आमूल बदलना शुरू कर देती है। समर्पित होते ही आप दूसरे होने शुरू हो जाते हैं। वह जो व्यक्ति समर्पित हुआ था, मर ही जाता है। नए व्यक्ति का ही उदभव हो जाता है।

अगर समर्पण की, शरण जाने की भावना वास्तविक हो—और वास्तविक का अर्थ यह है कि पिछले जन्मों के अनुभव से निकली हो—तो आपके जीवन में क्रांति शुरू हो गई। वह अनुभव आने लगेगी।

आपकी वृत्तियों में फर्क होगा, आपके लोभ में, क्रोध में, काम में फर्क होगा। आपकी करुणा गहन होगी, मैत्री बढेगी। सुख—दुख के प्रति उपेक्षा आनी शुरू होगी। भविष्य बहुत मूल्यवान नहीं मालूम होगा, वर्तमान ज्यादा मूल्यवान मालूम होगा। और जो दिखाई पड़ता है, उससे भी ज्यादा, जो नहीं दिखाई पड़ता है, उसकी तरफ आंखें उठनी शुरू हो जाएंगी। ऐसे जीवन में सब तरफ से फर्क पड़ने शुरू होंगे।

अगर गुरु— भाव, गुरु के प्रति समर्पण का भाव, अतीत के अनुभवों से निकला हो, तो पहचानने में अंतर नहीं पड़ेगा, कठिनाई नहीं पड़ेगी। लेकिन अगर ऐसे ही पैदा हो गया हो—ऐसे भी कभी पैदा हो जाता है—तब आपमें गुरु के प्रति भाव पैदा नहीं होता, गुरु के प्रभाव में आपके ऊपर फूल रख जाता है।

प्रभावशाली व्यक्ति हैं। उनके व्यक्तित्व में प्रभाव हो सकता है; उनकी वाणी में प्रभाव हो सकता है, उनके अस्तित्व में प्रभाव हो सकता है। उस प्रभाव की छाया में आपको लग सकता है कि आप समर्पित हो रहे हैं। लेकिन वह ज्यादा देर टिकेगा नहीं। वह सम्मोहन से ज्यादा नहीं है। जल्दी ही वर्षा, एक वर्षा भी उसे धुला देने के लिए काफी होगी।

तो यही कसौटी है कि अगर समर्पण आपको बदल रहा हो, टिकता हो और धीरे— धीरे स्थिर भाव बनता हो, तो समझना कि शास्त्रों की कोई जरूरत नहीं है, शास्त्रों का काम पूरा हो चुका होगा। अगर समर्पण— भाव कई बार आता हो, अनेक के प्रति आता हो, टिकता न हो; आता हो, चला जाता हो; जरा—सा पानी और सब बह जाता हो; तो समझना कि वह व्यक्तियों के प्रभाव में आपको लगता है कि समर्पण हो रहा है।

वह समर्पण आपका नहीं है। उससे कोई रद्दोबदल, कोई क्रांति कभी भी नहीं होगी। आप जैसे थे, आप वैसे ही रहेंगे। नुकसान भी हो सकता है। क्योंकि जो व्यक्ति स्वयं बिना बदले प्रभावित हो जाता है, उसके जीवन की सारी व्यवस्था ऊपर—ऊपर, सतह पर होने लगती है। वह किसी से भी प्रभावित हो सकता है। वह जहां जाएगा, वहीं प्रभावित हो जाएगा। लेकिन प्रभाव होगा ऊपर लहरों पर, उसके प्राणों की गहराई में कुछ भी नहीं होगा।

प्राणों की गहराई में तो जो घटना घटती है, वह आपके ही अनुभव से घटती है। आपका अनुभव तैयार हो और गुरु का मिलन हो जाए तो समर्पण, शरणागति पैदा होती है।

आपका अनुभव भीतर न हो और गुरु का मिलना हो जाए, तो प्रभाव पैदा होता है। लेकिन प्रभाव क्षण में आता है, क्षण में चला जाता है, उसका कोई बहुत मूल्य नहीं है। वह वैसे ही है, जैसे आप चित्र देखने गए; फिल्म देखी और थोड़ी देर को प्रभावित हो गए हैं। और बाहर निकलते ही बात समाप्त हो गई है।

यह भी हो सकता है कि फिल्म देखते क्षण में करुणा उमड़ आई हो, आंख आंसुओ से भर गई हो। लेकिन जैसे ही परदे पर प्रकाश होता है, घंटी बजती है, स्मरण आ जाता है कि सिर्फ फिल्म थी, प्रकाश—छाया का खेल था; रोने जैसा कुछ भी न था; और आप हंसते हुए बाहर आ जाते हैं। हो सकता है अभी भी आंखें गीली हों, लेकिन वह सब ऊपर—ऊपर था; भीतर उसके कोई परिणाम नहीं है। मुझे सुनकर भी प्रभाव हो सकता है। मेरी बात अच्छी लग सकती है, तर्कयुक्त मालूम हो सकती है। मेरी बात का काव्य मन को पकड़ ले सकता है। लेकिन उसका बहुत मूल्य नहीं है; मनोरंजन से ज्यादा मूल्य नहीं है। बाहर आप जाएंगे, वह सब खो जाएगा; धुआं—धुआं उड़ जाएगा।

लेकिन अगर आपके भीतर अनुभव भी पका हो और फिर मेरी बात का उससे मेल हो जाए; बीज भी पड़ा हो जमीन में और वर्षा हो, तो अंकुरण होगा। बीज आपको अपने साथ लाना है।

कोई भी गुरु आपको अनुभव नहीं दे सकता। गुरु वर्षा बन सकता है। अनुभव का बीज भीतर हो, तो अंकुरित हो सकता है। गुरु की मौजूदगी माली का काम कर सकती है। लेकिन कोई भी गुरु बीज नहीं बन सकता आपके लिए। उसका कोई उपाय नहीं है।

इसकी भी जांच निरंतर रखनी चाहिए कि हम केवल प्रभावों से तो नहीं जीते? अपने भीतर भी खोज करते रहना चाहिए कि हम सिर्फ सम्मोहित तो नहीं हैं? हमारे भीतर कुछ अंतर हो रहा है या नहीं? रोज लोग मंदिर में जाते हैं। मंदिर में उनके चेहरे देखें; भक्ति— भाव से भरे हुए मालूम पड़ते हैं! मंदिर से बाहर निकलते ही चेहरे बदल जाते हैं।

उस मंदिर को वे जन्मों से जा रहे होंगे, लेकिन मंदिर कहीं भी उनको बदल नहीं पाता। वे वही के वही हैं। मंदिर में जाकर एक चेहरा ओढ़ लेते हैं। उसकी भी आदत हो गई है! तो मंदिर में प्रवेश करते ही से भक्ति का भाव धारण कर लेते हैं।

लेकिन धारण किए हुए भाव का कोई मूल्य नहीं है। भाव भीतर से आना चाहिए। और अगर भीतर से आएगा, तो मंदिर में ही क्यों, मंदिर के बाहर भी रहेगा, मंदिर के भीतर भी रहेगा।

तो जब आप मुझे सुनते हैं, तभी अगर ऐसा लगता हो कि समर्पण कर दें, उसका बहुत मूल्य नहीं है। जब मुझे सुनकर चले जाते हैं, और अगर वह भाव आपके भीतर गूंजता ही रहता हो, उठते—बैठते, सोते—जागते, उसकी धुन आपके भीतर बजती रहती हो, वह आपका पीछा करता हो, न केवल पीछा करता हो, बल्कि उसकी मौजूदगी के कारण आपके जीवन में फर्क पड़ता हो, कि आप किसी की जेब में हाथ डालकर रुपया निकालने ही वाले थे, कि वह जो भाव आपके भीतर उठा था, वह आपको रोक देता हो, कि गाली बस निकलने को ही थी मुंह से, कि वह जो भाव भीतर उठा है, बाधा बन जाता हो; कि कोई गिर पड़ा था, उसको उठाने के लिए हाथ बढ़ जाता हो, वह भाव कृत्य बनता हो; तो समझना कि वह आपके भीतर है।

अगर भाव कृत्य बनने लगे, तो उसका अर्थ है कि वह आचरण को बदलेगा। अगर भाव कृत्य न बने, तो आप तो वही रहेंगे। हो सकता है, बुद्धि में थोड़ी अच्छी बातें संगृहीत हो जाएं। अच्छी बातों का कोई भी मूल्य नहीं है। अच्छी बातें अच्छे सपनों जैसी हैं। सपना कितना ही अच्छा हो, तो भी सपना है। और सपने में आप सम्राट भी हो जाएं, तो सुबह आप पाते हैं कि आप भिखारी हैं। उससे कुछ अंतर नहीं पड़ता।

तो मैं अगर कहूं कि आप स्वयं ब्रह्म हैं, और भीतर छिपा है अविनाशी अंतर्यामी; और मेरी बात सुनकर आपको लगे कि ठीक, और इससे जीवन में, कृत्य में कहीं कोई अंतर न पड़ता हो, तो इसका कोई भी मूल्य नहीं है; और इसे आप धोखा समझना। और इस धोखे से जितने जल्दी आप बाहर हो जाएं, उतना अच्छा है।

क्योंकि इस धोखे में आपने न मालूम कितना समय गंवाया होगा। लोग हैं, जो एक गुरु से दूसरे गुरु की यात्रा करते रहते हैं; एक आश्रम से दूसरे आश्रम में चलते रहते हैं। कोई आश्रम उनको बदल नहीं पाता। और तब वे क्या सोचते हैं, कि सभी आश्रम बेकार हैं; कहीं कोई सार नहीं है। कोई गुरु उनको नहीं बदल पाता। तब वे सोचते हैं कि सब गुरु बेकार हैं, सदगुरु कोई है ही नहीं।

कठिनाई सदगुरु की नहीं है, कठिनाई आपकी है। आप बदलने को तैयार हों, तो एक छोटा बच्चा भी आपको बदल दे सकता है। और आप बदलने को तैयार न हों; तो खुद कृष्ण भी आपके पास खड़े रहें, तो कुछ भी करने में समर्थ नहीं हैं।

इसे खयाल रखें। जो भी प्रभाव हो, वह आपका कृत्य बनने लगे, इसका स्मरण रखें। और मौका दें कि वह कृत्य बने। जहां भी अवसर मिले, तत्क्षण जो आपका भाव है, उसे कर्म में रूपांतरित होने दें। जब भी कोई भाव कर्म बनता है, तो उसकी लकीर आपके भीतर गहरी हो जाती है।

जो आप सोचते हैं, उसका बहुत मूल्य नहीं है। जो आप करते हैं, उसी का बहुत मूल्य है। क्योंकि जो आप करते हैं, वह आपके अस्तित्व से जुड़ता है। जो आप सोचते हैं, वह बुद्धि में भटकता रहता है।

बहुत लोग हैं जिनके पास अच्छे— अच्छे विचार हैं। उन अच्छे विचारों का कोई भी मूल्य नहीं है। समय पर काम नहीं आते। और जो वे करते हैं, उस करने से उनके विचारों का कोई संबंध नहीं जुड़ता।

मैं जो भी आपसे बोलता हूं, उसका प्रयोजन आपको प्रभावित करना नहीं है। बच्चों का खेल है प्रभावित करना। आप तो मदारी से प्रभावित हो जाते हैं, इसलिए उसका कोई मूल्य भी नहीं है। सड़क पर एक मदारी डमरू बजा रहा है। आप वहीं खड़े हो जाते हैं। तो आपको प्रभावित करने का कोई मूल्य नहीं है, न कोई अर्थ है। आप तो किसी से भी प्रभावित हो जाते हैं!

आपके भीतर जीवन का संचरण शुरू हो जाए! आपकी जीवन— धारा नई गति ले ले!

तो न शास्त्रों की फिक्र करें, न प्रभावों की फिक्र करें; फिक्र इस बात की करें कि आपके भीतर क्या घटित हो रहा है। इसका सतत निरीक्षण चाहिए। और आपके भीतर जो घटित होगा, वही संपदा बनेगी।

मरते क्षण में न तो आप शास्त्र ले जा सकेंगे, न गुरु को साथ ले जा सकेंगे; न गुरु के वचन काम आएंगे; न आपने जो प्रभाव इकट्ठे किए हैं, वे काम आएंगे। मरते क्षण में, आपने क्या किया जीवनभर, वही बस आपके साथ होगा। मरते क्षण में आपके कृत्यों का सार—निचोड़ आपके साथ यात्रा पर निकलेगा। मरते क्षण में सिर्फ आप ही बचेंगे; और आपके अपने सारे कृत्यों का संग्रह, जो—जो आपने किया, उसकी सब लकीरें आपके ऊपर हैं।

तो निरंतर यह सोचें कि आपके जीवन की धारा कैसी चल रही है। वही पहचान है।

दूसरा प्रश्न :
इतने दिन से आपको बड़ी उत्कंठा से सुनकर भी मैं अपने आपको वहीं या रहा हूं जहां मैं था! फिर मैं क्या आशा रख सकता हूं?
किससे आप आशा रख रहे हैं, मुझसे या अपने से? प्रश्न से ऐसा लगता है कि मुझसे कुछ आशा रख रहे हैं। जैसे मुझे सुनकर आप वहीं के वहीं हैं, तो कसूर मेरा है! मैंने कहा कब आपको कि आप सुनकर कुछ और हो जाएंगे? काश, इतना आसान होता कि लोग सुनकर बदल जाते, तो इस दुनिया में बदलाहट कभी की हो गई होती!

लोग सुनकर नहीं बदलते हैं, यह तो साफ ही है। और सच तो यह है कि जितना ज्यादा सुनते हैं, उतना ही जड़ हो जाते हैं। क्योंकि सुनने की उनको आदत हो जाती है। तो पहली दफे सुनकर शायद थोड़ी—बहुत उनकी बुद्धि में गति भी आई हो, बार—बार सुनने से उतनी गति भी खो जाती है! फिर सुनने के आदी हो जाते हैं! फिर उनको लगता है, यह तो सब परिचित ही है। फिर सुनना भी एक नशा हो जाता है। तो उसकी तलब होती है।

अगर आप मुझे सुनते हैं उत्कंठा से और कोई फर्क नहीं हो रहा, तो आठ बजे कि आप चले। वह तलब है। वह जैसे किसी को

सिगरेट पीने की तलब है, कि आठ बजे और सिगरेट न पीए, तो उसको तकलीफ होती है। तो यह एक व्यसन हुआ, नशा हुआ। नशे का एक मजा है। करो, तो कुछ मिलता नहीं; न करो, तो तकलीफ होती है। जाओ सुनने, कुछ फायदा नहीं; न जाओ, तो बेचैनी होती है! जब भी ऐसा हो, तो समझना कि यह व्यसन हो गया। यह रोग है। इस रोग से कुछ उपलब्धि होने वाली नहीं है।

पर निराश किससे होना है? यह सोचकर सुनना बंद कर दें, तो भी कुछ फर्क नहीं हो जाएगा। सुनने से नहीं हुआ, तो सुनना बंद करने से कैसे होगा! फर्क करने को कुछ आपको अपनी तरफ। सोचना पड़ेगा। सुनने में बड़ी सुगमता है, क्योंकि आपको कुछ करना ही नहीं है, सिर्फ बैठे हैं!

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि आपकी किताब पढ़ने से तो आपको सुनने में ज्यादा आनंद आता है! क्योंकि पढ़ने में कम से कम आपको थोड़ी मेहनत करनी पड़ती है, पढ़ना पड़ता है, उतना कष्ट! सुनने में वह भी कष्ट नहीं है। और सुनने में मन लीन हो जाता है, तो उतनी देर को आपको शांति भी मिलती है। उतनी देर को कम से कम दूसरे उपद्रव आप नहीं कर पाते। कम से कम उतनी देर को आपका मन व्यस्त हो जाता है। तो मन की जो निरंतर की चलती धारा है, वह नहीं चल पाती।

यह सब ठीक है, लेकिन इससे आप बदल नहीं जाएंगे। और अगर कोई सोचता हो कि सुनने से बदल जाएंगे, तो गलती सोचता है। वह तो कभी बदलेगा ही नहीं। अगर बदलना है, तो सुनने से सूत्र खोजे जा सकते हैं, जो बदलने के काम आ जाएं। सिर्फ सुनने से कोई नहीं बदलेगा।

वह करीब—करीब बात, पुरानी कहावत है, कि आप घोड़े को जाकर पानी दिखा सकते हैं, पिला नहीं सकते। घोड़े को ले जाकर नदी के किनारे खड़ा कर सकते हैं। पिलाके कैसे? पानी तो घोड़े को ही पीना पड़ेगा। वही मैं कर सकता हूं घोड़े को नदी के किनारे खड़ा कर सकता हूं; पिला नहीं सकता।

अब आप कहें कि घोड़े की तरह मैं खड़ा हूं इतने दिन से और प्यास मेरी अभी तक नहीं बुझी!

नदी बह रही है, घोड़ा खड़ा है। अब क्या करना है? और करना किसको है? वह जो घोड़े को नदी तक ले आया है, उसको कुछ करना है कि घोड़े को कुछ करना है?

जन्मों तक खड़े रहें। नदी बहती रहेगी। नदी हर पल बह रही है। लेकिन थोड़ा झुकना पड़ेगा घोड़े को। थोड़ी गर्दन झुकाकर पानी। तक मुंह को ले जाना पड़ेगा।

तो मैं जब बोल रहा हूं कुछ कह रहा हूं, तो नदी आपके पास बह रही है। आप बैठे रहें किनारे पर। कितने ही दिन तक बैठे रहें। नदी को देखने का मजा लेते रहें! नदी के बहने की ध्वनि आ रही है, उसका संगीत सुनते रहें। नदी पर सूरज की किरणें बिछी हैं, नदी सुंदर है, उसके सौंदर्य को देखते रहें। नदी के पास पक्षी उड़ रहे हैं, वृक्ष खड़े हैं, उनको देखते रहें। लेकिन प्यास न बुझेगी।

और नदी कुछ भी नहीं कर सकती आपकी प्यास बुझाने को। आप झुकें, चुल्ल से पानी भरें और पीए। और आपकी तैयारी हो, तो पीने की क्या बात है, नदी में डूब सकते हैं, नदी के साथ एक हो सकते हैं। लेकिन सिर्फ नदी की मौजूदगी से यह नहीं हो जाएगा; आपको कुछ करना पड़ेगा।

आप कहते हैं. यहां सुनते हैं, उत्कंठा से सुनते हैं।

यह कुछ करना नहीं है। इस नदी की धारा में से कुछ चुनना पड़ेगा, जो आप पीए। कोई विचार जो आपको लगता है सार्थक है, तो उसको सार्थक ही मत लगने दें, उसको सार्थक बनाएं। कोई विचार आपको लगता है कीमती है, तो सिर्फ ऐसा सोचते ही मत रहें कि कीमती है। अगर कीमती है, तो उसका उपयोग करें, उसको चर्खे, उसका स्वाद लें। उसको पी जाएं; कि वह आपके खून में बहने लगे, आपकी हड्डियों के साथ एक हो जाए।

अगर विचार इतना प्रीतिकर लगता है, तो जिस दिन वह आपका अंतस बन जाएगा, उस दिन कितनी मधुरिमा पैदा होगी, इसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। जो मैं कह रहा हूं अगर वह प्रीतिकर लगता है, तो जहां से वह कहना निकलता है, उस स्रोत पर जब आप डूब जाएंगे, एक हो जाएंगे, तो आपके जीवन में प्रकाश ही प्रकाश हो जाएगा।

लेकिन खतरा यही है कि बात अच्छी लगे, तो हम उसे स्मरण कर लेते हैं, वह हमारी बुद्धि में समा जाता है। उसका हम उपयोग भी करते हैं, तो एक ही उपयोग, किसी और से बात करने के लिए उपयोग कर सकते हैं। किसी और को बता देंगे, किसी और को समझा देंगे, बस इतना ही उपयोग है।

तो जो सुना है, उसे आप ज्यादा से ज्यादा अगर कुछ करेंगे, तो वाणी बना लेंगे। वह आपका जीवन नहीं बनेगा। और जीवन न बने, तो सुनने का कोई सार नहीं। वह व्यर्थ ही गया।

तो अगर आपको लगता हो कि सुनते हैं और कहीं जा नहीं रहे—कैसे जाएंगे? जाना आपको पड़ेगा। जाना शुरू करें।

और एक कदम भी उठाएं, तो भी बड़ा है। क्योंकि पहला कदम उठ जाए, तो दूसरे के उठने में आसानी हो जाती है। और एक कदम से ज्यादा तो एक समय में कोई उठा नहीं सकता। एक कदम उठा लिया, तो पूरी मंजिल भी एक अर्थ में हल हो गई। क्योंकि एक—एक ही कदम उठाकर हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है। लेकिन कदम उठाएं।

इसे नियम बना लें कि जो प्रीतिकर लगे, उसके अनुभव की कोशिश करें। जो मन को आच्छादित कर ले, उसके अनुभव की कोशिश करें। फिक्र करें कि इसे मैं भी जानने की कोशिश करूं, क्या!

मेरे पास एक युवक आते थे। ध्यान पर बड़ी उत्सुकता रखते थे। ध्यान के शिविरों में भी आते थे। लेकिन कभी मैंने उनको ध्यान करते नहीं देखा। दो—चार शिविर में देखा, अनेक बार मुझसे मिलने आए; अनेक प्रश्न लेकर आए। प्रश्न भी अच्छे लाते थे। सुनते भी बड़ी उत्सुकता से थे।

मैंने पूछा कि कर क्या रहे हो? उन्होंने कहा, मैं ध्यान पर शोध कर रहा हूं, रिसर्च कर रहा हूं। एक थीसिस लिखनी है।

तो यह व्यक्ति ध्यान को समझने की बड़ी चेष्टा कर रहा है, लेकिन ध्यान से इसे कोई प्रयोजन नहीं है। ध्यान से इसका निजी कोई संबंध नहीं है। थीसिस लिखकर बात समाप्त हो जाएगी। कोई युनिवर्सिटी इसको डिग्री दे देगी। बात खतम हो गई! ध्यान एक विषय है, जिस पर एक बौद्धिक व्यायाम करना है। लेकिन प्रयोग नहीं करना है।

यह करीब—करीब ऐसी हालत है, जैसे कहीं अमृत का सरोवर भरा हो, और कोई आदमी उस सरोवर के आस—पास खोज—बीन करता रहे कि अमृत पर उसको एक थीसिस लिखनी है और उसे पीए न! तो उस आदमी को हम महामूढ़ कहेंगे। क्योंकि थीसिस लिखने का काम तो पीकर भी हो सकता था; और पीकर ज्यादा ढंग से होता। क्योंकि जिसे खुद नहीं जाना, उसके संबंध में हम क्या कहेंगे! जो भी कहेंगे, वह उधार होगा। और जो भी कहेंगे, वह बासा और बाहर—बाहर का होगा। वह भीतर की प्रतीति नहीं है।

एक वैज्ञानिक हुआ मैक्स प्लांक, उसने अपना एक संस्मरण लिखा है। उसने लिखा है कि वह जीवशास्त्र का अध्ययन कर रहा था और मनोविज्ञान का भी अध्ययन कर रहा था, और कोशिश कर रहा था कि मनोविज्ञान में और जीवशास्त्र में क्या भीतरी संबंध है। और 'जब मन प्रभावित होता है, तो शरीर कैसा प्रभावित होता है।

एक युवती से उसका प्रेम था। लेकिन एक दिन युवती एकदम झटके के साथ खड़ी हो गई। उसके पास बैठी थी, चांद था आकाश में, वे दोनों बड़े प्रेम की बातें कर रहे थे। अचानक वह झटके से खड़ी हो गई। और उसने कहा कि क्षमा करो; यह बात खतम; अब मुझसे दुबारा मत मिलना। मैक्स प्लांक ने कहा, बात क्या है? उसने कहा कि मैं कई दिन से अनुभव कर रही हूं कि जब भी तुम मुझसे प्रेम की बातें करते हो, तो तुम अपना हाथ मेरी नाड़ी पर रखते हो।

वह जांच करता था कि जब मैं प्रेम की बात करता हूं तो उसकी नाड़ी में कोई फर्क पड़ता है कि नहीं! प्रेम भी थीसिस की बात थी! उसे कुछ प्रेम में उतरने का कोई कारण नहीं था, सिर्फ जांच रहा था कि जब मन प्रभावित होता है, तो शरीर प्रभावित होता है कि नहीं!

होता तो जरूर है। क्योंकि जब आप गहरे प्रेम में हों, तो आपकी नाड़ी तेजी से चलेगी। जिसको आप प्रेम करते हैं, जब आप उसके पास होते हैं, तो आपका पूरा शरीर ज्यादा ज्वलंत हो जाता है। खून तेजी से बहता है। नाड़ी तेजी से चलती है। हृदय तेजी से धड़कता है। आप जीवित हो जाते हैं। और जब आपका प्रेमी आपसे दूर हटता है, तो आप मुर्दा हो जाते हैं, कुम्हला जाते हैं; सब चीजें शिथिल हो जाती हैं।

यह तो ठीक है। लेकिन उस लड़की ने ठीक ही किया। उसने कहा, यह बात खतम हो गई। क्योंकि प्रेम कोई वैज्ञानिक जिज्ञासा की बात नहीं है। और उसने कहा कि शक तो मुझे कई बार होता था। क्योंकि तुम बात करते—करते कुछ और भी कर रहे हो। लेकिन आज मैंने बिलकुल साफ देख लिया कि तुम मेरी नाड़ी पकड़े बैठे हो। पहले वह लड़की समझती रही होगी कि मेरा हाथ प्रेम से पकड़े हुए है, और वह उसकी नाड़ी की जांच कर रहा है!

अब यह आदमी जरूर ही खोज लेगा संबंध मन के और शरीर के, लेकिन एक अनूठे अनुभव से वंचित रह जा सकता है। प्रेम से वंचित रह जा सकता है।

आप ध्यान में उत्सुक हो सकते हैं, एक बौद्धिक ऊहापोह की तरह। तब आप छिलके लेकर लौट आए जहां कि आपको फल मिल सकते थे।

मेरी बात जब आप सुनते हैं और आपको अच्छी लगती है, और प्रीतिकर लगती है, और उत्कंठा जगती है; इतना काफी नहीं है। इतना जरूरी तो है, क्योंकि इसके बाद कुछ और हो सकता है; लेकिन इतना काफी नहीं है। यह केवल प्राथमिक है। दूसरा कदम उठाएं। विचार से अनुभव की तरफ चलें।

विचार पर मत ठहर जाएं। नहीं तो आप सोचते ही रहेंगे, सोचते ही रहेंगे और समाप्त हो जाएंगे। और सोचने पर जो समाप्त हो गया, उसने जीवन को जाना ही नहीं। एक अपूर्व संपदा पास थी, वह उसे खो दिया अपने ही हाथों से। और विधि आपके पास भी रखी रही, तो भी आप उपयोग न कर सके!

एक रात मुल्ला नसरुद्दीन अपने घर वापस लौटा, बदहवास, पसीने से तरबतर, घबड़ाया हुआ। जल्दी से भीतर घुसकर दरवाजा बंद कर लिया।

पत्नी ने कहा, इतने घबडाए हुए हो! बात क्या है? कहां से आ रहे हो? उसने कहा कि दुकान से ही लौट रहा हूं। लेकिन एक बदमाश मिल गया। उसने मेरा चश्मा भी छीन लिया; फाउंटेन पेन भी खीसे से निकाल ली, रुपए भी खीसे से ले लिए; कोट भी उतार लिया। यहां तक कि मेरे जूते उतार लिए।

उसकी पत्नी ने कहा, और तुम तो पिस्तौल रखे हुए हो! तो नसरुद्दीन ने कहा, वह तो भाग्य की बात कहो कि बदमाश की नजर पिस्तौल पर नहीं पड़ी; नहीं तो क्या वह छोड़ देता!

अब पिस्तौल किस लिए रखे हुए है वह!

आपको ध्यान की विधि पता है। वह रखी रह जाएगी ऐसे ही जैसे पिस्तौल रखी है। उसको भी बचाने में लग जाएंगे और उसका उपयोग तो कभी कर ही न पाएंगे। आप क्या जानते हैं इसका मूल्य नहीं है, क्योंकि जाना हुआ तो पड़ा रह जाएगा। जिस—जिस ज्ञान को आपने जीवन बना लिया, वही बस आपके हाथ है।

मैंने सुना है, एक बहुत पुरानी यहूदी कथा है, कि परमात्मा ने जब संसार बनाया, तो उसने हिंदुओं के नेता से पूछा— शायद कृष्ण से पूछा हो—कि कुछ नियम हैं मेरे पास। ये उपयोगी होंगे। अगर तुम चाहो, तो मैं तुम्हें नियम दे दूं। तो कृष्ण ने, या हिंदुओं के नेता ने पूछा कि जरा नमूने के लिए; कौन से नियम हैं? तो उसने कहा कि जैसे, व्यभिचार पाप है। तो हिंदुओं के नेता ने कहा, यह बात तो ठीक होगी, लेकिन संसार से सब रस चला जाएगा। कोई उत्सुकता न दिखाई नियम लेने की।

मुसलमानों के नेता से पूछा—शायद मोहम्मद से पूछा होगा—उन्होंने भी कहा, लेकिन पहले मैं जान लूं कि कौन से नियम हैं, फिर लूं। तो ईश्वर ने यह सोचकर कि पहला नियम तो पसंद नहीं किया गया, तो उसने दूसरा नियम बताया कि हत्या मत करो। तो मोहम्मद ने कहा, यह बात तो बिलकुल ठीक है। लेकिन अगर हत्या बिलकुल न की जाए, तो दूसरे हमारी हत्या कर देंगे। और दुष्टों के हाथ में संसार चला जाएगा। और फिर बिना युद्ध के शांति कैसे स्थापित हो सकती है?

ऐसा ईश्वर घूमता रहा। आखिर में वह मूसा को मिला, यहूदियों के नेता को मिला। और जैसे कि यहूदी होते हैं, व्यापारी; ईश्वर भी चौंका। क्योंकि उसने और लोगों से पूछा था, सब ने नमूने मागे। मूसा ने पूछा, हाऊ मच इट कॉस्ट्स, इसकी कीमत कितनी है? वह जो नियम आप देते हो, उसका मूल्य कितना है?

ईश्वर भी चौंका; क्योंकि वह यह पूछ ही नहीं रहा है कि नियम क्या है! वह कहता है, मूल्य कितना है! तो ईश्वर ने कहा, मूल्य तो बिलकुल नहीं है; मुफ्त दे रहे हैं! तो उसने कहा, देन आई विल टेक टेन। मूसा ने कहा, तो फिर हम दस ले

लेंगे। जब मुफ्त ही दे रहे हैं, तो क्या दिक्कत है। इसलिए टेन कमाडमेंट्स, दस आज्ञाएं ईश्वर की! मगर वे किताब में रखी हैं।

आप भी मुक्त कुछ मिल रहा हो, तो एक की जगह दस ले लेंगे। कुछ करना न पड़ रहा हो, कुछ आपके जीवन में रूपांतरण न होता हो, कोई क्रांति न होती हो, बैठे—ठाले कुछ मिल जाता हो, तो एक की जगह दस ले लेंगे। लेकिन वह किताब में रखा रह जाएगा; उसका कोई मूल्य नहीं है।

आप यहां बैठकर सुन रहे हैं। आपको कुछ करना नहीं पड़ रहा है। बल्कि घंटे, डेढ़ घंटे के लिए कुछ करना पड़ता, उससे भी आप बच गए। राहत है! सुख लगता है।

इस सुख को आप व्यसन मत बना लें। अगर सुख लगता है बातों में, तो जहां से बातें आती हों, उस दिशा में यात्रा शुरू करें। और जो मैं कह रहा हूं वह अगर आपको भी किसी दिन दिखाई पड़ सके, तभी रुके, तभी समझें कि मंजिल आई। उसके पहले रुकना उचित नहीं है। और यह मैं न कर सकूंगा; यह आपको खुद ही करना पड़ेगा।

कोई दूसरा आपके लिए नहीं चल सकता। कोई दूसरा आपके लिए देख नहीं सकता। कोई दूसरा आपके लिए अनुभव नहीं कर सकता। और अच्छा ही है कि कोई दूसरा नहीं कर सकता। अन्यथा आप सदा के लिए वंचित रह जाते, आप पंगु रह जाते।

अगर दूसरा आपके लिए चले, तो आपके पैर नष्ट हो जाएंगे। और दूसरा आपके लिए अनुभव करे, तो आपका हृदय नष्ट हो जाएगा। और दूसरा आपके लिए देख सके, तो आपकी आंखों की कोई जरूरत नहीं। और दूसरा अगर आपके लिए आत्म— अनुभव कर सके, तो आपकी आत्मा सदा के लिए खो जाएगी।

इसलिए परमात्मा के गहरे नियमों में से एक नियम यह है कि दूसरा आपके लिए, जो भी मूल्यवान है, वह नहीं कर सकता। वह आपको ही करना पड़ेगा। क्योंकि करने से ही विकास होता है। करने से ही आप निर्मित होते हैं। करने से ही आपका वास्तविक जीवन और जन्म होता है।

तीसरा प्रश्न :
आपने कहा कि प्राण यदि प्रभु के लिए समग्ररूपेण आतुर हो जाएं, तो एक क्षण में मिलन घटित हो सकता है। और आप यह भी कहते हैं कि इस मिलन के लिए अनंत धैर्य अपेक्षित है। ये दोनों अति स्थितियां हैं!
नहीं; ये दोनों एक ही स्थिति के दो रूप हैं। या एक ही स्थिति के दो चरण हैं।

समझें! निरंतर मैं कहता हूं कि उसे पाने के लिए अनंत धैर्य चाहिए। और निरंतर यह भी कहता हूं कि उसे एक क्षण में पाया जा सकता है। दोनों बातें विपरीत मालूम पड़ती हैं। क्योंकि अगर उसे एक ही क्षण में पाया जा सकता है, तो अनंत धैर्य की जरूरत क्या? तब तो क्षणभर भी धैर्य रखने की जरूरत नहीं है। जिसे एक क्षण में ही पाया जा सकता है, उसे हम अभी ही पा ले।

और जब मैं कहता हूं कि उसको अनंत धैर्य रखो, तो पा सकेंगे, तब आपको लगता है कि अनंत धैर्य रखने का मतलब ही यह हुआ कि एक क्षण में पाना तो संभव नहीं, अनंत जन्म में भी पा लें, तो जल्दी पाया।

दोनों बातें विपरीत लगती हैं, पर ये दोनों बातें विपरीत नहीं हैं। और जीवन का गणित पहेली जैसा है। ये दोनों बातें परिपूरक हैं। समझने की कोशिश करें!

उसे एक क्षण में पाया जा सकता है, अगर आप में अनंत धैर्य हो। और अगर आप में धैर्य की कमी हो, तो उसे अनंत काल में भी नहीं पाया जा सकता। क्योंकि आपका धैर्य ही उसे पाने की योग्यता है। तो जितना धैर्य हो, उतने जल्दी वह घटित होता है।

अनंत धैर्य का अर्थ है, एक ही क्षण में घटित हो जाएगा। क्योंकि कोई कमी नहीं रही; आप पूरा धैर्य रखे हुए हैं। अनंत धैर्य का अर्थ है कि अगर वह कभी भी न घटे, तो भी मैं धीरज खोने वाला नहीं हूं। अनंत धैर्य का मतलब यह है कि वह कभी भी न घटे—कभी भी—तो भी मैं प्रतीक्षा करूंगा। ऐसा जिसका मन हो, उसके लिए इसी क्षण घट जाएगा। क्योंकि इसको अब प्रतीक्षा कराने का कोई प्रयोजन ही न रहा। बात ही खतम हो गई। यह तैयार है।

और जो इतने धैर्य के लिए तैयार है, क्या वह अशांत होगा? क्योंकि अशांत तो अधैर्य के साथ जुड़ा है। इतना धैर्य वाला व्यक्ति तो परिपूर्ण शांत होगा, तभी इतना धैर्य रख सकेगा। और जो इतने

धैर्य के लिए राजी है, क्या वह दुखी होगा? क्योंकि दुखी तो अधीर होता है।

दुखी जल्दी में होता है। सिर्फ जो आनंद में है, वह धीरे चलता है। सम्राट जब चलता है, तो तेजी से नहीं चलता। सम्राट अगर तेजी से चले, तो उससे पता चलता है कि सम्राट होने की कला उसे नहीं आती।

तेजी से तो वह भागता है, जिसको कुछ पाना है। जिसके पास सब है, वह क्यों भागे? भाग—दौड़ कमी की खबर देती है। अनंत धैर्य का अर्थ है कि मेरे पास सब है, जल्दी कुछ भी नहीं है। अगर प्रभु भी मिलेगा, तो वह अतिरिक्त है। इसे थोडा समझ लें।

मेरे पास सब था और अगर प्रभु मिलेगा, तो वह अतिरिक्त है। वह न मिलता तो कोई कमी न थी। वह मिल गया, तो मैं पूरे से भी ज्यादा पूरा हो जाऊंगा। लेकिन पूरा मैं था, क्योंकि मुझे कोई जल्दी न थी, न कोई प्रयोजन था; न कोई भाग—दौड़ थी।

पूरे धैर्य का अर्थ यह होता है कि आप जैसे हैं, उससे राजी हैं। वह तथाता की घड़ी है। आप पूरी तरह राजी हैं कि ठीक, सब ठीक है। और यह सब ठीक किसी सांत्वना के लिए नहीं कि अपने को समझाने के लिए। ठीक तो कुछ भी नहीं है, लेकिन अपने को समझा रहे हैं कि सब ठीक है। जानते हैं, ठीक कुछ भी नहीं है। लेकिन कह रहे हैं कि सब ठीक है, ताकि मन माना रहे।

नहीं, वैसा सब ठीक नहीं। कुछ भी गैर—ठीक मालूम नहीं होता। सब ठीक है। कहीं कोई असंतोष नहीं है। और कुछ पाने की दौड भी नहीं है। और प्रभु जब मिले, तब उसकी मरजी पर हम छोड़ सकते हैं समय को। हमारी तरफ से समय हम देते नहीं। आज न मिले, तो हम सांझ को पश्चात्ताप न करेंगे, रोके न, धोएंगे न, चिल्लाएंगे न, कि दिन निकल गया और आज तक। एक दिन खराब हुआ।

कल फिर राह देखेंगे। उस राह में कहीं भी धूमिलता न आएगी, उस प्रतीक्षा में हम कहीं भी चाह को न जुड़ने देंगे, जल्दबाजी न जुड्ने देंगे, अधैर्य न जुड्ने देंगे। ऐसा अनंत धैर्य हो, तो परमात्मा क्षणभर में मिल जाता है।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, आप कहते हैं क्षणभर में मिल जाता है, लेकिन मिलता क्यों नहीं?

उनका जो कहना है, मिलता क्यों नहीं? वही बाधा है। अगर क्षणभर में मिल जाता है, तो अभी मिलना चाहिए! और जो इतनी जल्दी में है कि अभी मिलना चाहिए, उसका मन इतने तनाव से भरा है, वह इतने दुख से भरा है, वह इतने असंतोष से भरा है, इतनी अशांति से भरा है कि परमात्मा से मिलना हो कैसे सके?

और जो कहता है, अभी मिलना चाहिए, वह परमात्मा को बहुत मूल्य भी नहीं दे रहा है। वह कह रहा है, मिलना हो तो अभी मिल जाओ, नहीं तो दूसरे काम हजार पड़े हैं; और अगर देरी हो, तो पहले हम उनको निपटा लें। परमात्मा उसके लिए कोई बहुत मूल्य की बात नहीं कि वह उसके लिए समय देने को तैयार हो!

जितनी मूल्यवान चीज हो, आप उतना ज्यादा समय देने को तैयार होते हैं। मौसमी फूल हम लगाते हैं, तो वे महीनेभर में आ जाते हैं, लेकिन महीनेभर में समाप्त भी हो जाते हैं।

अगर आकाश को छूने वाले वृक्ष हमें लगाने हैं, तो प्रतीक्षा करनी पड़ती है वर्षों तक। एक पीढ़ी लगाती है, दूसरी पीढ़ी उनके फल पाती है। अगले जन्म में आपको फल मिलेगा, इस जन्म में नहीं मिल सकता। बड़ा वृक्ष है!

परमात्मा का जिनकी नजर में मूल्य है, वे तो कभी भूलकर भी यह न कहेंगे कि अभी मिल जाए। क्योंकि वे जानते हैं, यह बात ही बेहूदी है। यह बात ही मुंह से निकालनी अधार्मिक है। यह सोचना भी कि अभी मिल जाए अधार्मिक है।

इतनी बड़ी घटना, इतना विराट विस्फोट, प्रतीक्षा से होगा। और जब इतनी बड़ी घटना है, तो जब भी घटेगी, मानना कि वह जल्दी घटी, क्योंकि देर का तो कोई कारण नहीं है। जब भी घटे, तभी भक्त कहेगा कि जल्दी घट गई; अभी मेरी पात्रता न थी और घट गई। इतनी बड़ी घटना, इतनी जल्दी घट गई! अपात्र कहता है, अभी घटे। और अभी नहीं घटती, तो फिर छोड़ो।

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, शाम की ट्रेन से हम जा रहे हैं। कुछ ऐसा बता दें कि बस, जीवन बदल जाए।

पता नहीं जीवन का क्या मूल्य समझते हैं! कोई मूल्य भी है जीवन का या नहीं है! भागे हुए हैं! और ऐसा पूरा जीवन खो जाएगा, कुछ भी उनको मिलेगा नहीं।

बुद्ध के पास कोई आता, तो बुद्ध कहते थे, एक साल तो बिना पूछे मेरे पास बैठ जाओ। एक साल बाद तुम पूछना शुरू करना। जो जल्दी में होता, वह कहता, तो फिर मैं एक साल बाद ही आ जाऊं! बुद्ध कहते, तब तुझे दो साल बिठाऊंगा। क्योंकि एक साल तो यह जो तूने गंवाया, और एक तो बाकी रहा ही।

झेन फकीर रिंझाई के पास कोई आया। और उसने कहा कि मेरा पिता बूढ़ा है; और ज्यादा समय मेरे पास नहीं है। मैं अकेला ही बेटा हूं और बाप बूढ़ा है; उसकी सेवा करनी जरूरी है। लेकिन ध्यान मुझे सीखना है। रिंझाई ने कहा कि कोई तीस साल लगेंगे, क्योंकि तुम इतनी जल्दी में हो! वह युवक कुछ समझ नहीं पाया। उसने कहा, जल्दी में हूं तो जल्दी करवाइए, कि तीस साल! मेरे पिता चल ही बसे होंगे।

उस युवक ने कहा कि अगर मैं दुगुनी मेहनत करूं, तो क्या होगा? रिंझाई ने कहा, तब साठ साल लग जाएंगे। क्योंकि मैं तो यह मानता था कि तू पहले ही पूरी मेहनत करने को तैयार है। तू कह रहा है, दुगुनी करूंगा, मतलब तूने आधी पहले ही बचा रखी थी। तू आदमी भी बेईमान है। वह तीस तो मैंने सोचकर बताए थे कि तू अगर पूरी मेहनत करे। तू कहता है, अगर मैं दुगुनी मेहनत करूं। साठ लग जाएंगे।

उस युवक ने कहा कि अब मैं आगे नहीं पूछता। क्योंकि यही ठीक है, साठ ही ठीक है। पता नहीं, तुम एक सौ बीस कर दो! और वह युवक रुक गया। तीन वर्ष तक वह रिंझाई के पास था। रिंझाई ने उससे फिर पूछा ही नहीं कि तुम कैसे आए? क्या सीखना है?

कई दफा उस युवक को भी खयाल उठा कि क्या करना? क्या नहीं करना? साल निकले जा रहे हैं! बाप बूढ़ा हुआ जा रहा है। और अभी तो कुछ शुरू भी नहीं हुआ! पर उसने कहा कि पूछना खतरनाक है। यह आदमी तो बड़ा उपद्रवी है! अगर पूछा और कहीं यह कहने लगे कि सौ साल लगेंगे! इसलिए उसने कहा कि चुप ही रहो। देखें, क्या होता है।

तीन साल बाद उसने कहा, अब तेरा पहला पाठ शुरू होता है—रिंझाई ने कहा—और तू योग्य है। अगर तू तीन साल में पूछता, तो मैंने तेरे एक सौ बीस साल कर दिए थे। फिर मुझसे यह काम पूरा होने वाला नहीं था। क्योंकि मैं भी बूढ़ा हो रहा हूं। आधा ही मैं करता, आधा मेरे शिष्य करते। लेकिन तूने तीन साल नहीं पूछा; अब मैं काम शुरू करता हूं।

पांचवें वर्ष रिंझाई का शिष्य समाधि को उपलब्ध हो गया। जब वह समाधि को उपलब्ध हुआ, तो उसने रिंझाई को कहा, इतने जल्दी! मैं तो सोच भी नहीं सकता था! रिंझाई ने कहा, चूंकि तू साठ के लिए राजी हो गया। वह तेरा राजीपन साठ साल के लिए, तेरी प्रतीक्षा की तैयारी थी।

साठ साल का मतलब होता है, पूरा जीवन गंवाने की तैयारी। वह युवक कम से कम पच्चीस साल का था, जब आया था। साठ साल का मतलब है कि मरेगा अब, अब लौटने का कोई उपाय नहीं है।

साठ साल के लिए तेरी तैयारी......।

अनंत प्रतीक्षा का अर्थ ही यह होता है कि हमारी तैयारी इतनी है कि कभी भी न घटे, तो भी हम शिकायत न करेंगे। भक्त का अर्थ ही यह होता है, जो शिकायत न करे। और जिसकी शिकायत है, वह भक्त नहीं है।

पर आप हैरान होंगे, नास्तिक तो मिल जाएंगे आपको जिनकी कोई शिकायत नहीं है, आस्तिक खोजना मुश्किल है बिना शिकायत के। और आस्तिक का लक्षण यह है कि उसकी कोई शिकायत न हो।

तो दुनिया में दो तरह के नास्तिक हैं। एक तो नास्तिक हैं, जो घोषणा किए हैं कि ईश्वर नहीं है। इसलिए शिकायत करने का उपाय भी नहीं है, किससे शिकायत करें? इसलिए जो है, ठीक है। दूसरे नास्तिक वे हैं, जो माने हुए हैं कि ईश्वर है। लेकिन माने सिर्फ इसीलिए हैं, ताकि शिकायत करने को कोई हो। बस, उनका ईश्वर सिर्फ शिकायत के लिए है, कि वे कह सकें कि देखो यह नहीं हो रहा, यह नहीं हो रहा, यह करो, यह क्यों नहीं किया? इतनी देर क्यों हो रही है? बिना ईश्वर के किससे शिकायत करिएगा?

आपका ईश्वर सिर्फ आपकी शिकायतों का पुंजीभूत रूप है। और भक्त का शिकायत से कोई संबंध नहीं है।

यह जो मैं कहता हूं अनंत प्रतीक्षा, यह शिकायत—शून्य, शर्तरहित धैर्य है। इसे जरा सोचें। अगर ऐसी आपके पास चित्त की दशा हो, तो कोई कारण नहीं है कि अभी क्यों घटना न घट जाए। अनंत धैर्य खुले आकाश की तरह हो जाता है। फिर हृदय के कहीं कोई द्वार, सीमाएं कुछ भी न रहीं। सब खुला है, कुछ बंद न रहा। अब और ज्यादा परमात्मा को उतरने के लिए चाहिए भी क्या? इतना ही चाहिए।

इसलिए इन दोनों में कोई विरोध नहीं है, पहली बात। ये दोनों एक ही साधना के हिस्से हैं।

रह गई दूसरी बात, निश्चित ही ये दोनों अतियां हैं, एक्सट्रीम्स हैं। लेकिन एक ही रेखा की दो अतियां हैं। और इस जगत में कोई भी रेखा रेखा नहीं है सीधी। सभी रेखाएं वर्तुलाकार हैं। सभी रेखाएं बड़े वर्तुल का हिस्सा हैं।

यूक्लिड कहता था, जिसने ज्यामिति खोजी, कि सीधी रेखा होती है। लेकिन फिर आइंस्टीन और बाद के खोजियों ने सिद्ध किया कि सीधी रेखा होती नहीं, स्ट्रेट लाइन होती ही नहीं। क्योंकि जिस

जमीन पर आप बैठे हैं, वह गोल है, आप उस पर कोई भी रेखा खींचें, अगर उसको बढ़ाए चले जाएं, तो वह पूरी जमीन को घेर लेगी, बड़े वर्तुल का हिस्सा हो जाएगी।

तो सभी रेखाएं किसी बहुत बड़े वर्तुल का हिस्सा हैं। इसलिए कोई रेखा सीधी नहीं है। सभी रेखाएं तिरछी हैं, घूमती हुई हैं, वर्तुल का अंग हैं। सीधी रेखा जैसी कोई चीज है ही नहीं जगत में।

इसलिए सभी चीजें गोल घूमती हैं। चांद, पृथ्वी, तारे, सूरज, मौसम, आदमी का जीवन, सब वर्तुलाकार घूमता है। और जब दो अतियां एक रेखा की करीब आती हैं, तो वर्तुल पूरा होता है। किसी भी रेखा को, उसकी अतियों को पास ले आएं; जहां दोनों अतियां मिलती हैं, वहीं वर्तुल पूरा होता है।

अनंत धैर्य रेखा का एक कोना है। और क्षण में घट सकती है घटना, सडेन, यह रेखा का दूसरा कोना है। जहां ये दोनों कोने मिलते हैं, वहा वर्तुल पूरा होता है। और इन दोनों के बीच जरा—सा भी फासला नहीं है। ये अतियां जरूर हैं, लेकिन अतियां मिलती हुई अतियां हैं।

और यह भी ध्यान रहे कि जीवन में जो भी छलांग लगती है, वह हमेशा अति से लगती है, मध्य से नहीं लगती। इस कमरे के बाहर जाना हो, तो या तो इस तरफ की खिड़की खोजनी पड़े या उस तरफ की खिड़की खोजनी पड़े। लेकिन यहां कमरे के मध्य में खडे होकर बाहर जाने का कोई उपाय नहीं है। मध्य से कोई द्वार जाता ही नहीं। मध्य का मतलब ही यह हुआ कि द्वार से दूरी है। परिधि पर जाना पड़ेगा। अति को पकड़ना पड़ेगा।

इसलिए दुनिया की सभी साधना—पद्धतियां अतियां हैं। अति का मतलब है, आखिरी छोर। वहा से छलांग लग सकती है। मध्य से कहां कूदिएगा? कमरे में ही उछलते रहेंगे। किनारे पर जाना पड़े। एक अति है कि क्षण में घटना घट सकती है। सडेन एनलाइटेनमेंट को मानने वाला वर्ग है। विशेषकर जापान में झेन फकीर, तत्क्षण मानते हैं कि घटना घट सकती है, एक क्षण में घट सकती है। और इसी के लिए तैयार करते हैं साधक को कि वह एक क्षण के लिए तैयार हो। तैयारी में वर्षों लगते हैं। घटना एक ही क्षण में घटती है, लेकिन तैयारी में वर्षों लगते हैं; कभी—कभी जन्म भी लगते हैं।

ऐसे ही जैसे हम पानी को गरम करते हैं, तो पानी भाप तो एक क्षण में बन जाता है, सौ डिग्री पर पहुंचा कि भाप बनना शुरू हुआ। लेकिन सौ डिग्री तक पहुंचने में घंटों लग जाते हैं। और इस पर

निर्भर करता है कि कितना ताप नीचे है, कितनी आग नीचे है।

अगर आप राख रखे बैठे हों, तो कभी नहीं पहुंचेगा। अंगारे हों, लेकिन राख से ढंके हों, तो बड़ी देर लगेगी। ज्वलित अग्नि हो, भभकती हुई लपटें हों, तो जल्दी घटना घट जाएगी।

तो कितनी त्वरा है भीतर, कितनी अभीप्सा है, कितनी आग है घटना को घटाने की, उतने जल्दी घट जाएगी। लेकिन घटना एक ही क्षण में घटेगी।

पानी गरम होता रहेगा, गरम होता रहेगा, निन्यानबे डिग्री पर भी पानी—पानी ही है। अभी भाप नहीं बना। एक सेकेंड में सौ डिग्री, पानी छलांग लगा लेगा। छलांग कीमती है। जब तक पानी था, पानी नीचे की तरफ बहता है। जैसे ही भाप बना, ऊपर की तरफ उठना शुरू हो जाता है। सारी दिशा बदल जाती है।

जब तक पानी था, तब तक दिखाई पड़ता था, पदार्थ था। जैसे ही छलांग लगती है, अदृश्य हो जाता है, वायवीय हो जाता है, आकाश में खो जाता है। जब तक दिखाई पड़ता था, जमीन उसको नीचे की तरफ खींच सकती थी। गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव था। जैसे ही भाप बना, गुरुत्वाकर्षण के बाहर हो जाता है; आकाश की तरफ उठने लगता है। कोई दूसरे जगत के नियम काम करने शुरू कर देते हैं। एक क्षण में घटना घटती है, लेकिन तो भी झेन फकीरों को जन्मों—जन्मों तक और एक जीवन में भी वर्षों तक गरमी पैदा करने के उपाय करने पड़ते हैं।

दूसरे फकीर हैं, सूफियों का एक समूह है इस्लाम में, वे अनंत प्रतीक्षा में मानते हैं। वे क्षण की बात ही नहीं करते हैं। वे कहते हैं, अनंत प्रतीक्षा करनी है। बैठे रहो, प्रतीक्षा करो। जागते रहो, प्रतीक्षा करो। कभी अनंत जन्म में घटेगी।

अब यह बड़े मजे की बात है। ये दोनों बिलकुल विपरीत साधना—पद्धतियां हैं, अतिया हैं। लेकिन झेन फकीर भी पहुंच जाता है और सूफी फकीर भी पहुंच जाता है। और मजे की बात यह है कि झेन फकीर जब पहुंचता है, तो उसको भी वर्षों तक श्रम करके क्षणभर की घटना पर पहुंचना पड़ता है। और जब सूफी फकीर पहुंचता है, तो वह भी अनंत प्रतीक्षा करके क्षणभर की घटना पर पहुंचता है। घटना तो वही है।

तो दो बातें हो गईं। पानी को हम गरम करते हैं, सौ डिग्री पर पानी भाप बन जाता है; एक। और पानी को गरम करना पड़ता है; दो। इनमें से जिस पर आप जोर देना चाहें।

अगर आपको गरमी पर जोर देना है, तो आप कह सकते हैं, लंबी यात्रा है। बड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। पानी गरम होगा, गरम होगा, गरम होगा; कभी अंत में भाप बनेगा। प्रोसेस, प्रक्रिया पर जोर दें। और अगर अंत पर जोर देना हो,

तो कहें कि पानी कभी भी भाप बने, कितनी ही देर लगे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, भाप तो क्षणभर में बन जाती है। पानी छलांग लगा लेता है।

पर ये दोनों एक ही प्रक्रिया के हिस्से हैं। इसलिए मैं दोनों को जोड़कर इकट्ठा कहता हूं। अनंत हो प्रतीक्षा, तो क्षणभर में घट जाता है। क्षण में घटाना हो, तो अनंत की तैयारी चाहिए। और इनमें विरोध नहीं है।

चौथा प्रश्न :
क्या गुरु के जाल में फंसना, तड़पना, मर जाना, रूपांतरण की प्रक्रिया के अनिवार्य अंग हैं?
निश्चित ही। फंसना पड़े, तड़पना भी पड़े और मरना भी पड़े। लेकिन जिस अर्थ में आपने— पूछा है, उस अर्थ में नहीं। पूछने वाले को तो ऐसा लगता है, बेचैनी है, भय है; फंसने से भय है, डर है।

डर किस बात का है? डर किसको है? वह जो अहंकार है हमारे भीतर, सदा डरता है कि कहीं फंस न जाएं। और यह जो अहंकार है, कहीं भी नहीं फंसने देता। लेकिन तब हम पूरे जीवन से वंचित रह जाते हैं।

एक युवक ने मुझे आकर कहा कि प्रेम तो मुझे करना है, लेकिन फंसना नहीं है। कोई झंझट में नहीं पड़ना चाहता हूं।

प्रेम करना हो, तो फंसना ही पड़े। क्योंकि वह प्रेम घटेगा ही तब, जब आप डूबेंगे। आप ऐसे दूर अपने को सम्हालकर खड़े रहे संतरी की तरह, तो वह घटना ही घटने वाली नहीं है।

और बचेगा भी क्या! बचाने को है भी क्या आपके पास? यह जो बचने की तलाश चल रही है, यह कौन है जो बचना चाहता है? यह जो इतना डरा हुआ प्राण है, इसको बचाकर भी क्या करिएगा? इसको स्वतंत्र रखकर भी क्या प्रयोजन है? और जो स्वतंत्रता इतनी भयभीत हो, वह स्वतंत्रता है भी नहीं।

मुल्ला नसरुद्दीन एक रात देर से घर लौटा। पत्नी ने शोरगुल शुरू कर दिया। और उसने कहा कि फिर देर से आए? और हजार बार कह दिया कि देर से आना बंद हो!

कहां थे? तो नसरुद्दीन ने कहा कि समझदार पत्नियां इस तरह के प्रश्न नहीं पूछतीं।

पत्नी आगबबूला थी, उसने कहा, और समझदार पति.......।

वह आगे कुछ कहे, उसके पहले ही नसरुद्दीन बोला कि ठहर! समझदार पति सदा कुंआरे रहते हैं।

वह जो डरा हुआ है, वह कितना ही समझदार मालूम पड़ता हो, लेकिन जीवन के अनुभव से वंचित रह जाएगा।

प्रेम एक अनुभव है। और उसमें उतरने से ही पता चलता है। और उसका फंसना उपयोगी है। क्योंकि उस फंसने के भीतर भी अगर तुम बिना फंसे रह सको, तो तुम्हारे जीवन में अमृत बरस जाएगा। उस कारागृह में प्रवेश करके भी तुम्हारी मुक्ति नष्ट न हो, तुम्हारी भीतरी मुक्ति तुम कायम रख सको, वही कला है।

तो एक तो प्रेम है जीवन में। गुरु और शिष्य का संबंध भी प्रेम का आखिरी संबंध है। वह और भी बड़ा फंसाव है। क्योंकि पत्नी के साथ रहकर स्वतंत्र रहना आसान है, गुरु के साथ रहकर स्वतंत्र रहना और भी मुश्किल है, और भी जटिल है, क्योंकि उसका जाल और भी बड़ा है। वह हृदय तक ही नहीं जाता, उसका जाल आत्मा तक चला जाता है। पर वहां भी स्वतंत्र रहने की संभावना है। और मजा यही है कि वहा जितने पूरे मन से कोई अपने को छोड़ देगा, उतना ही स्वतंत्र रहेगा।

परतंत्रता पैदा इसलिए होती है कि तुम छोड़ नहीं पाते। अगर तुम छोड़ दो, तो परतंत्र रहने का कोई अर्थ ही नहीं है। जेलखाना जेलखाना मालूम पड़ता है, क्योंकि तुम जेलखाने में रहना नहीं चाहते। और अगर तुम जेलखाने में रहना ही चाहते हो, तब? तब जेलखाना समाप्त हो गया। फिर अगर जेल के लोग तुम्हें बाहर निकालने लगें, तो वह परतंत्रता होगी। जिस बात से हमारा प्रतिरोध है, विरोध है, रेसिस्टेंस है, वहीं फंसना मालूम होता है।

अगर एक युवक एक युवती को सच में ही प्रेम करता है, तो फंसना मालूम होता ही नहीं। युवती अगर सच में प्रेम करती है, तो फंसना मालूम नहीं होता; तब प्रेम मुक्ति मालूम होता है। और अगर प्रेम न हो, डर हो, भय हो, बचाव की चेष्टा हो, तो फंसना मालूम होता है, तो बंधन और कारागृह मालूम होता है।

मैं यह कह रहा हूं आपसे कि वहीं आपको बंधन मालूम होता है, जहां आप लड़ते हैं।

भूमिदान आंदोलन असफल हुआ, तो सारे मुल्क में भूमि हथियाओ आंदोलन चला। तो मैंने एक घटना सुनी है कि उसकी नकल पर एक गांव में—निश्चित ही गांव गुजरात में रहा

होगा—पत्नियां हथियाओ आंदोलन लोगों ने चला दिया। और उन्होंने कहा कि समाजवाद में जब कि सभी के पास एक—एक पत्नी नहीं है, तो कुछ लोगों के पास दो—दो हैं, यह नहीं हो सकता। यह बर्दाश्त के बाहर है।

तो जिन युवकों के पास पत्नियां नहीं थीं, उन्होंने एक जुलूस निकाला और कहा कि पत्नियां हथियाओ। जिनके पास दो हैं, उनसे

एक छीनो, और उनको दो जिनके पास एक भी नहीं है। और यह समाजवाद के लिए बिलकुल जरूरी है।

मुल्ला नसरुद्दीन बाहर गया था; उसकी दो पत्नियां थीं। वह घर पहुंचा, तो हाय—तोबा मची थी। जुलूस उसकी एक पत्नी को लेकर आगे बढ़ गया था। मुल्ला भाग।; जाकर नेता के हाथ पकड़ लिए और कहा कि अन्याय मत करो। उस नेता ने कहा, अन्याय कौन कर रहा है? तुम अन्याय कर रहे हो जनता पर कि हम? जब कि गाव में सौ आदमी मौजूद हैं जिनके पास एक भी पत्नी नहीं, और तुम दो—दो पर कब्जा जमाए बैठे हो? तुम दो—दो का सुख ले रहे हो? और ज्यादा हमारे पास समय नहीं। अभी हमें और कोई पचास पत्नियां हथियानी हैं। उसने घड़ी देखी, उसने कहा, हटो रास्ते से। नसरुद्दीन ने फिर भी हाथ पकड़ लिया और बिलकुल कंपने लगा और कहा कि नहीं, ऐसा अन्याय मत करो। भीड को भी दया आ गई और नेता ने कहा, मर्द जैसे मर्द होकर भी इस तरह रिरिया रहे हो औरतों की तरह! ले जा अपनी पत्नी को! नसरुद्दीन एकदम जमीन पर गिर पड़ा और पैर पकड़ लिए और कहा कि आप समझे नहीं; दूसरी को भी लेते जाइए।

बंधन! जहां प्रेम समाप्त हुआ, वहा विवाह बंधन बन जाता है, परतंत्रता बन जाता है। जहां श्रद्धा खो गई, वहां गुरु जेलखना हो जाता है।

श्रद्धा हो, तो गुरु मुक्ति है। प्रेम हो, तो प्रेम का संबंध स्वतंत्रता है। और प्रेमी एक—दूसरे को और स्वतंत्र कर देते हैं, जितने अकेले होकर वे कभी भी नहीं हो सकते थे। क्योंकि दो स्वतंत्रताएं मिलती

और गुरु तो परम मुक्त है। उसके मोक्ष से जब आपका मिलना होता है या उसके जाल में जब आप फंसते हैं, तो अगर आपका विरोध न हो तो आप परम मुक्त हो जाएंगे। और अगर विरोध हो, तो ही आपको लगेगा कि जाल में फंसे हैं। जाल में फंसा हुआ होना जाल के कारण नहीं लगता; मुझे फंसना नहीं है, इसलिए लगता है। नदी में एक आदमी तैर रहा है, तो उसको लगता है, नदी मेरे खिलाफ बह रही है! क्योंकि वह नदी से उलटा जाने की कोशिश कर रहा है। उसको लगता है, नदी मेरी दुश्मन है। और एक आदमी नदी में बह रहा है, जहां नदी जा रही है, उसी में बह रहा है। उसको लगता है, नदी मेरी मित्र है, नदी मेरी नाव है। और नदी मुझे ले जा रही है, जरा भी श्रम नहीं करना पड़ रहा है।

अगर गुरु के साथ आप उलटी धारा में बह रहे हों, तो फंसना लगेगा। और अगर गुरु के साथ बह रहे हों, तो मुक्ति अनुभव होगी। आप पर निर्भर है, शिष्य पर निर्भर है कि गुरु परतंत्रता बन जाएगा कि स्वतंत्रता।

तड़पना भी पड़ेगा। क्योंकि यह खोज बड़ी है और यह खोज गहन है। और मिलने के पहले बहुत पीड़ा है। पानी मिले, उसके पहले गहन प्यास से गुजरना होगा। और जैसे ही आप किसी गुरु के पास पहुंचेंगे, आपकी तड़प बढ़ेगी, घटेगी नहीं। अगर घट जाए, तो समझना कि यह गुरु आपके काम का नहीं है। क्योंकि घटने का मतलब यह हुआ कि आग ठंडी हो रही है।

गुरु के पास पहले पहुंचकर तो प्यास बढ़ेगी, क्योंकि गुरु को देखकर आपको पहली दफा पता चलेगा कि पानी पीए हुए लोग किस आनंद में हैं! पहली दफा तुलना पैदा होगी, तकलीफ पैदा होगी। पहली दफा तृषा गहन होगी। पहली दफा लगेगा कि ऐसा मैं भी कब हो जाऊं? कैसे हो जाऊं? यह मुझे भी कब हो?

आनंद की पहली झलक आपके दुख को बहुत गहन कर जाएगी। ऐसे ही जैसे रास्ते से आप गुजर रहे हों, अंधेरे रास्ते से, लेकिन अंधेरे में ही गुजर रहे हों, तो अंधेरे में भी दिखने लगता है। फिर एक कार गुजर जाए तेज प्रकाश को करती हुई, तो कार के गुजरने के बाद रास्ता और भी भयंकर अंधकार मालूम होता है। तुलना पैदा होगी।

गुरु के पास आकर पहली दफा तुलना पैदा होगी। पहली दफा आपको लगेगा, आप कहां हैं! किस नरक में हैं! किस पीड़ा में हैं! तो तड़प तो पैदा होगी। और गुरु की कोशिश होगी कि और जोर से तड़पाए। क्योंकि जितने जोर से आप तड़पें, उतनी ही आग पैदा होगी, उतना ही उबलने का बिंदु करीब आएगा। और जितने आप तड्पें, उतनी ही खोज जारी होगी, सरोवर के निकट पहुंचना आसान होगा। अगर आप पूरी तरह तड़प उठें, तो सरोवर उसी क्षण प्रकट हो जाता है।

इसलिए तड़पना भी होगा और मरना भी होगा। क्योंकि वह आखिरी है। गुरु का काम ही वही है। गुरु यानी मृत्यु। जो आपको मार न सके, वह गुरु नहीं; जो आपको मिटा न सके, वह गुरु नहीं। वह आपको काटेगा ही। और जब आप बिलकुल समाप्त हो जाएंगे, तभी आपको छोड़ेगा कि बस, अब काम पूरा हुआ। बिना

मिटे परमात्मा को पाने की कोई व्यवस्था नहीं है। बिना खोए उसकी खोज पूरी नहीं होती।

इसलिए पुराने सूत्रों में कहा है कि आचार्य, गुरु मृत्यु है। और वह जो कठोपनिषद में नचिकेता को भेजा है यम के पास, वह गुरु के पास भेजा है। यम गुरु का प्रतीक है। वहा जाकर आप मर जाएंगे। इसलिए गुरु से लोग बचते हैं। पच्चीस तरह की युक्तियां खोजते हैं कि कैसे बच जाएं; रेशनलाइजेशन खोजते हैं कि कैसे बच जाएं। गुरु को सुन भी लेते हैं, तो कहते हैं, बात अच्छी है, लेकिन अभी अपना समय नहीं आया! करेंगे कभी जब समय आएगा! हजार तरकीब आदमी करता है अपने को बचाने की।

जैसे आप मृत्यु से बचते हैं, वैसे ही आप गुरु से बचते हैं। और जिस दिन आप ठीक से समझ लेंगे। गुरु के पास जाने का मतलब ही यह है कि मैं गलत हूं और गलत को जला डालना है। और मैं भ्रांत हूं और भ्रांत को मिटा देना है। और मैं जैसा अभी हूं मरणधर्मा हूं; इस मरणधर्मा को मर जाने देना है, ताकि अमृत का उदय हो सके।

मृत्यु द्वार है अमृत का। और जो मिटने को राजी है, वह उसको उपलब्ध हो जाता है, जो कभी नहीं मिटता है। एक तरफ गुरु मारेगा और दूसरी तरफ जिलाएगा। वह मृत्यु भी है और पुनर्जन्म भी, नव—जीवन भी।

क्या गुरु के जाल में फंसना, तड़पना, मर जाना, रूपांतरण की प्रक्रिया के अनिवार्य अंग हैं?

बिलकुल अनिवार्य अंग हैं। और इसके पहले कि फंसो या तो भाग खड़े होना चाहिए; फिर लौटकर नहीं देखना चाहिए। गुरु खतरनाक है। जरा भी रुके, तो डर है कि फंस जाओगे। और फंस गए, फिर तड़पना पड़ेगा। तड़पे, कि फिर मरना पड़ेगा। वे एक ही मार्ग की सीढ़ियां हैं।

लेकिन जो व्यक्ति स्वयं का रूपांतरण चाहता है, वह चाहता क्या है? वह चाहता यही है कि मैं गलत हूं जैसा हूं। जो मुझे होना चाहिए, वह मैं नहीं हूं। और जो मुझे नहीं होना चाहिए, वह मैं हूं। तो वह मिटने के लिए तैयार है, वह बिखरने के लिए तैयार है, वह शून्य होने को राजी है। और जो व्यक्ति शून्य होने को राजी है, उसी का गुरु से मिलन हो पाता है।

अब हम सूत्र को लें।
हे भारत, इस प्रकार तत्व से जो ज्ञानी पुरुष मेरे को पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकार से निरंतर मुझ परमेश्वर को ही भजता है।

हे निष्पाप अर्जुन, ऐसे यह अति रहस्ययुक्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया, इसको तत्व से जानकर मनुष्य ज्ञानवान और कृतार्थ हो जाता है।

एक—एक शब्द समझें।

इस प्रकार से जो ज्ञानी पुरुष मेरे को पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकार से निरंतर मुझ परमेश्वर को ही भजता है। जिसको भी यह स्मरण आ गया कि परिधि पर शरीर है, मध्य में चेतना है और अंत में केंद्र पर अंतर्यामी पुरुषोत्तम है, जिसको भी यह स्मरण आ गया कि केंद्र परमात्मा है, फिर उसकी परिधि भी परमात्मा के ही गुणगान करने लगती है। फिर उसकी परिधि पर भी परमात्मा का ही स्वर गूंजने लगता है। फिर उसके बाहर भी वही प्रकट होने लगता है, जो भीतर है। फिर वह उठता भी है, तो परमात्मा में, बैठता भी है, तो परमात्मा में। फिर परमात्मा उसके लिए कुछ पृथक नहीं रह जाता, उसके अपने होने का अभिन्न अंग हो जाता है। फिर वह जो भी करता है, वह सब परमात्मा में ही घटित होता है। जैसे मछली सागर में होती है, ऐसा फिर वह परमात्मा में होता है। भजने का यही अर्थ है।

भजने का यह अर्थ नहीं कि आप बैठे हैं, कभी—कभी राम—राम, राम—राम कर लिया। भजने का यह अर्थ है कि आपके जीवन की कोई भी गतिविधि परमात्मा से शून्य न हो। आप जो भी करें, जो भी न करें, सब में परमात्मा का स्मरण सतत भीतर बना रहे। आपके जीवन के कृत्य माला के मनके हो जाएं और परमात्मा आपके भीतर का धागा हो जाए। हर मनके में दिखाई पड़े या न दिखाई पड़े, वह धागा भीतर समाया रहे। सभी मनके उसी धागे से बंध जाएं, भजन का यह अर्थ है।

पर हम तो हर चीज को विकृत कर लेते हैं। तो हम काम करते जाते हैं और सोचते हैं, भीतर राम—राम करते जाओ। लोग अभ्यास कर लेते हैं उसका। तो वे कार ड्राइव करते रहेंगे और भीतर राम—राम करते रहेंगे! वह अभ्यस्त हो जाता है।

मन जो है, आटोमैटिक किया जा सकता है। तो मन स्वचालित यंत्र बन जाता है। आप अपना काम करते रहें, वहां राम—राम, राम—राम, राम—राम चलता रहे। उसका कोई मूल्य नहीं है। वह मन का एक कोना दोहराता रहता है।

भजन का अर्थ है, अपने जीवन में डूब जाए स्मृति परमात्मा की। कैसे यह हो?

किसी मित्र की आंख में झांकें, तब आपको मित्र तो दिखाई पडे, वह परिधि रहे, लेकिन उसमें पुरुषोत्तम भी दिखाई पड़े, तो वह भजन हो जाएगा। फूल को देखें, फूल तो परिधि रहे और फूल में जो सौंदर्य प्रकट हुआ है, वह जो खिलावट, वह जो जीवन की अभिव्यक्ति हुई है, वह जो पुरुषोत्तम वहां मौजूद है, उसका स्मरण आ जाए। चाहे फूल देखें, चाहे आंख देखें, चाहे आकाश देखें, जो भी देखें वहां आपको पुरुषोत्तम की स्मृति बनी रहे।

ऐसा नहीं कि फूल देखें, तो भीतर राम—राम, राम—राम करने लगें। उसमें तो फूल भी चूक जाएगा। राम—राम करने की शाब्दिक बात नहीं है। फूल के अनुभव में पुरुषोत्तम का अनुभव मौजूद रहे। भोजन करें, पुरुषोत्तम का अनुभव मौजूद रहे। स्नान करें, पुरुषोत्तम का अनुभव मौजूद रहे।

लोग नदी में स्नान करने जाते हैं। मेरे गांव में नियम से लोग सुबह नदी में स्नान करने जाते हैं। सर्दी के दिनों में भी जाते हैं। सर्दी के दिनों में वे ज्यादा भजन करते हैं। और राम—राम, जय शिव शंकर.......!

पानी में ठंड लगती है, भुलाने के लिए वे जोर से भगवान का नाम लेते हैं। इधर मन भगवान के नाम में लग जाता है, एक डुबकी लगाई और बाहर निकल आए। फिर वे भगवान का नाम नहीं लेते। जैसे ही बाहर हुए, वे भूले। तो वे जब भगवान का नाम ले रहे हैं, ऐसा लगेगा सुबह नदी के किनारे कि बड़े भक्त आए हुए हैं। वह सिर्फ ठंड से बचने का उपाय है।

वह वैसे ही जैसे आप अकेले गली में जा रहे हों, तो जोर से सीटी बजाने लगें, उससे ऐसा लगता है कि अकेले नहीं हैं। सीटी सुनाई पड़ती है, अपनी ही सीटी! जो नहीं हैं धार्मिक, वे फिल्मी गाना गाकर भी स्नान कर लेते हैं। उसमें भी फर्क नहीं पड़ता।

भजन का अर्थ कोई शब्दों से राम की स्मृति नहीं है। क्योंकि वह धोखा भी हो सकती है; दुख से बचने का उपाय हो सकती है; ठंड से बचने का उपाय हो सकती है, अकेलेपन से बचने का उपाय हो सकती है। वह एक तरह की व्यस्तता हो सकती है।

नहीं, भगवान को अनुभव में जानना है, अनुभव से पलायन करके नहीं। उससे बचना नहीं, उससे भागना नहीं। जैसा भी जीवन है, जहां भी जीवन ले जाए, वहां मेरी आंख परिधि पर ही न रहे, केंद्र पर सदा पहुंचती रहे। जो भी मैं देखूं, उसमें मुझे केंद्र की प्रतीति बनी रहे, वह धारा भीतर बहती रहे कि पुरुषोत्तम मौजूद है। ऐसी अगर प्रतीति हो जाए, तो आपका पूरा जीवन भजन हो जाएगा। वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकार से निरंतर मुझ परमेश्वर को भजता है। तभी निरंतर भजन हो सकता है। अगर राम—राम जपेंगे, तो निरंतर तो हो ही नहीं सकता। क्योंकि दो राम के बीच में भी जगह छूट जाएगी। एक दफा कहा राम, दूसरी दफा कहा राम, बीच में खाली जगह छूट गई, तो निरंतर तो हो ही नहीं पाया।

फिर कब तक कहिए! जब तक होश रहेगा कहिए, रात नींद लग जाएगी, वह चूक जाएगा। कोई डंडा सिर पर मार देगा, क्रोध आ जाएगा; वह निरंतर का चूक जाएगा, निरंतर नहीं रह पाएगा। कितनी ही तेजी से कोई राम—राम जपे, तो भी दो राम के बीच में जगह छूटती रहेगी, उतनी खाली जगह में परमात्मा चूक गया। निरंतर तो तभी हो सकता है कि जो भी हो रहा हो, उसी में परमात्मा हो। जो डंडा मार रहा है सिर पर, अगर उसमें भी पुरुषोत्तम दिखे, तो भजन निरंतर हो सकता है। और जो राम—राम के बीच में खाली जगह छूट जाती है, उस खाली जगह में भी पुरुषोत्तम दिखे, तभी पुरुषोत्तम निरंतर हो सकता है।

और जब तक भजन निरंतर न हो जाए, सतत न हो जाए, तब तक ऊपर—ऊपर है, तब तक चेष्टित है, तब तक वह हमारी सहज आत्मा नहीं बनी है।

हे निष्पाप अर्जुन, ऐसे यह अति रहस्यमय—रहस्ययुक्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया, इसको तत्व से जानकर मनुष्य ज्ञानवान और कृतार्थ हो जाता है।

कृष्ण निरंतर अर्जुन को निष्पाप कहते हैं। कहे चले जाते हैं, निष्पाप! क्योंकि यह हिंदू धारणा है और बड़ी मूल्यवान है कि निष्पापता हमारा स्वभाव है। उससे वंचित होने का उपाय नहीं है। पाप करके भी आपके निष्पाप होने में कोई फर्क नहीं पड़ता। यह हिंदू विचार की बड़ी गहन धारणा है।

पश्चिम, विशेषकर ईसाइयत इसको समझने में बिलकुल असमर्थ होती है। क्योंकि जब पाप किया, तो निष्पाप कैसे रहे? पाप किया, तो पापी हो गए।

यहीं हिंदू चिंतन बड़ा कीमती है। हिंदू चिंतन कहता है, क्या तुम करते हो, यह ऊपर ही ऊपर रह जाता है। जो तुम हो, उसे तुम्हारा कोई भी करना नष्ट नहीं कर पाता। तुम्हारी निर्दोषता तुम्हारा स्वभाव है। तो जिस दिन भी तुम यह

समझ लोगे कि कृत्य से मैं दूर हूं? उसी दिन तुम पुन: अपनी निष्पाप स्थिति को उपलब्ध हो जाओगे। उसे तुमने कभी खोया नहीं है, चाहे तुम भूल गए हो।

तो ज्यादा से ज्यादा संसार एक विस्मरण है। ज्यादा से ज्यादा पाप अपनी निष्पाप दशा का विस्मरण है। हमने उसे खोया नहीं है; हम उसे खो भी नहीं सकते। हमारी निर्दोषता, हमारी जो इनोसेंस है, वह हमारी सहज अवस्था है, वह सांयोगिक नहीं है। उसे नष्ट करने का उपाय नहीं है।

जैसे आग गरम है, ऐसे हम निष्पाप हैं। चेतना का निष्पाप होना धर्म है। अर्जुन को इसीलिए कृष्ण निष्पाप कहते हैं। हे निष्पाप अर्जुन!

अर्जुन को स्मरण नहीं है इस निष्पाप स्थिति का, इसलिए वह भयभीत है। वह डरा हुआ है कि पाप हो जाएगा। युद्ध मैं लडूंगा, काटूंगा, मारूंगा—पाप हो जाएगा। फिर इस पाप के पीछे भटकूगा अनंत जन्मों तक। और कृष्ण कह रहे हैं, तू निष्पाप है।

जैसे ही कोई व्यक्ति पहली पर्त से पीछे हटेगा, वैसे ही निष्पापता की धारा शुरू हो जाती है। और तीसरी पर्त पर सब निष्पाप है।

इसे मैं ऐसा समझ पाता हूं। पहली पर्त पर सभी पाप है। शरीर के पर्त पर सभी पाप है। वह शरीर का स्वभाव है। पुरुषोत्तम के पर्त पर सभी निष्पाप है। वह पुरुषोत्तम का स्वभाव है, केंद्र का स्वभाव है। और दोनों के बीच में हमारा जो मन है, वहा सब मिश्रित है, पाप, निष्पाप, सब वहां मिश्रित है। इसलिए मन सदा डांवाडोल है। वह सोचता है, यह करूं न करूं? पाप होगा कि पुण्य होगा? अच्छा होगा कि बुरा होगा?

अर्जुन वहीं खड़ा है, दूसरे बिंदु पर। कृष्ण तीसरे बिंदु से बात कर रहे हैं। अर्जुन दूसरे बिंदु पर खड़ा है। भीम और दूसरे, पहले बिंदु पर खड़े हैं। उनको सवाल भी नहीं है।

उस महाभारत के युद्ध में तीन तरह के लोग मौजूद हैं। पहली पर्त पर सभी लोग खड़े हैं। वह पूरे युद्ध में जो सैनिक जुटे हैं, योद्धा इकट्ठे हुए हैं, वे पहली पर्त में हैं। उनको सवाल ही नहीं है कि क्या ' गलत और क्या सही! इतना भी उनको विचार नहीं है कि जो हम कर रहे हैं, वह ठीक है या गलत है! वह शरीर के तल पर कोई विचार होता भी नहीं। शरीर मूर्च्छित है, वहा सभी पाप है।

अर्जुन बीच में अटका है। उसके मन में संदेह उठा है। उसके मन में चितना जग गई है; विमर्ष पैदा हुआ है। वह सोच रहा है। सोचने से दुविधा में पड़ गया है। वे जो पहली पर्त में खड़े लोग हैं, उनकी कोई दुविधा नहीं है, स्मरण रखें। वे निसंदिग्ध लड़ने को खड़े हैं।

उनके मन में कोई संदेह, कोई सवाल नहीं है। लड़ने आए हैं, लड़ना उनका धर्म है, लड़ना नियति है, उसमें कोई विचार नहीं है।

अर्जुन दुविधा में पड़ा है। उसकी बुद्धि अड़चन में है। बुद्धि सदा अड़चन में होगी, क्योंकि वह मध्य में खड़ी है। वह पाप के जगत की तरफ भी जा सकती है और निष्पाप के जगत की ओर भी जा सकती है। वह दोनों की तरफ देख रहा है। और पीछे कृष्ण हैं, वे पुरुषोत्तम हैं, वहां सभी निष्पाप है।

एक बात मजे की है कि जो पाप के तल पर खड़े हैं, उन्हें भी कोई संदेह नहीं। जो निष्पाप के तल पर खड़ा है, उसे भी कोई संदेह नहीं। क्योंकि वहा सभी निष्पाप है। कुछ पाप हो ही नहीं सकता। जो पाप के तल पर खड़े हैं, उसे निष्पाप का कोई पता ही नहीं है, इसलिए तुलना का कोई उपाय नहीं है। अर्जुन मध्य में खड़ा है।

अर्जुन शब्द का अर्थ भी बड़ा कीमती है। अर्जुन शब्द बनता है ऋजु से। ऋजु का अर्थ होता है, सीधा। अऋजु का अर्थ होता है, तिरछा, डांवाडोल, कंपता हुआ। अर्जुन का अर्थ है, कंपता हुआ, लहरों की तरह डांवाडोल, इरछा—तिरछा। कुछ भी सीधा नहीं है। और दोनों तरफ उसके कंपन हैं। वह तय नहीं कर पा रहा है।

कृष्ण निष्पाप पुरुषोत्तम हैं। वहा कोई कंपन नहीं है। इसलिए अर्जुन कृष्ण से पूछ सकता है और इसलिए कृष्ण अर्जुन को उत्तर दे सकते हैं। कृष्ण की पूरी चेष्टा यह है कि अर्जुन पीछे सरक आए, निष्पाप की जगह खड़ा हो जाए; वहां से युद्ध करे। यही गीता का पूरा का पूरा सार है। कैसे अर्जुन सरक आए निष्पाप की दशा में और वहा से युद्ध करे!

दो हालतों में युद्ध हो सकता है। एक तो अर्जुन सरक जाए शरीर के तल पर, जहां भीम और दुर्योधन खड़े हैं, वहा; वहां युद्ध हो सकता है। और या वह कृष्ण के तल पर सरक आए, तो युद्ध हो सकता है।

पहले तल पर सरक जाए, तो युद्ध साधारण होगा। जैसा रोज होता रहता है। तीसरे तल पर सरक जाए तो युद्ध असाधारण होगा। असाधारण होगा, जैसा कभी—कभी होता है, सदियों में कभी कोई एक आदमी तीसरे तल पर खड़े होकर युद्ध में उतरता है। और अगर वह बीच में खड़ा रहे, तो वह कुछ भी न कर पाएगा; युद्ध होगा ही नहीं। वह सिर्फ दुविधा में नष्ट हो जाएगा। वह संदेह में डूबेगा और समाप्त हो जाएगा। अधिक लोग संदेह में ही डूबते—उतराते रहते हैं।

हे निष्पाप अर्जुन, ऐसे यह अति रहस्ययुक्त गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया, इसको तत्व से जानकर मनुष्य ज्ञानवान और कृतार्थ हो जाता है।

सुनकर नहीं; क्योंकि सुन तो अर्जुन ने लिया। अगर सुनकर ही होता होता, तो अर्जुन कहता कि बात खतम हो गई, कृतार्थ हो गया। सुन आपने भी लिया......।

तत्व से जानकर! ऐसा जो कृष्ण ने कहा है, जब अर्जुन ऐसा स्वयं जान ले; जब यह उसकी अनुभूति बन जाए; जब उसकी प्रतीति हो जाए; जब वह कह सके, ही, पुरुषोत्तम मैं हूं तो कृतार्थ हो जाता है। तो फिर जीवन में अर्थ आ जाता है। फिर प्रत्येक किया अर्थवान हो जाती है। फिर व्यक्ति जो भी करता है, सभी में फल और फूल लग जाते हैं। फिर व्यक्ति जो भी, जिस भांति भी जीता है, सभी तरह के जीवन से सुगंध आनी शुरू हो जाती है। उस व्यक्ति में पुरुषोत्तम के फल लगने शुरू हो जाते हैं, पुरुषोत्तम के फूल आने शुरू हो जाते हैं।

और कृष्ण कहते हैं, इस रहस्यमय गोपनीय शास्त्र को मैंने तुझसे कहा।

यह रहस्यमय तो बहुत है, और गोपनीय भी है। रहस्यमय इसलिए है कि जब तक आपने नहीं जाना, इससे बड़ी कोई पहेली नहीं हो सकती कि पाप करते हुए कैसे निष्पाप! संसार में खड़े हुए कैसे पुरुषोत्तम! दुख में पड़े हुए कैसे अमृत का धाम! इससे ज्यादा पहेली और क्या होगी? स्पष्ट उलझन है। इसलिए रहस्यमय।

और गोपनीय इसलिए कि इस बात को, कि तुम पुरुषोत्तम हो, कि तुम निष्पाप हो, अत्यंत गोपनीय ढंग से ही कहा जाता रहा है। क्योंकि पापी भी इसको सुन सकता है। और पापी यह मान ले सकता है कि जब निष्पाप हैं ही, तो फिर पाप करने में हर्ज क्या है? और जब पाप करने से निष्पाप होने में कोई अंतर ही नहीं पड़ता, तो किए चले जाओ।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, गोपनीय भी, गुप्त रखने योग्य भी। हम सब इसी तरह के लोग हैं। हम अपने मतलब का अर्थ निकाल ले सकते हैं। हम सोच सकते हैं, जब निष्पाप हैं, तो बात खत्म हो गई। अब हम चोरी करें, बेईमानी करें, डाका डालें, हत्या करें, कोई हर्ज नहीं। क्योंकि भीतर का निष्पाप तो निष्पाप ही बना रहता है; पुरुषोत्तम को तो कोई अंतर पड़ता नहीं है!

इसलिए बात गोपनीय है। उन्हीं से कहने योग्य है, जो सोचने को, बदलने को तैयार हुए हों। उन्हीं को समझाने योग्य है, जो उसे ठीक से समझेंगे; जो उसे सम्यकरूपेण समझेंगे; जो उसका

विपरीत अर्थ निकालकर अपने को नष्ट न कर लेंगे। क्योंकि सभी कुंजिया ज्ञान की खतरनाक हैं। उनसे आप नष्ट भी हो सकते हैं। जरा—सा गलत उपयोग, और जो अग्नि आपके जीवन को बदलती, वही अग्नि आपको भस्मीभूत भी कर दे सकती है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं, यह गोपनीय है शास्त्र, रहस्यमय है। क्योंकि जब तक तू अनुभव न कर ले, तब तक यह पहेली बना रहेगा। और इसको तत्व से जानकर ही मनुष्य ज्ञानवान और कृतार्थ हो जाता है।

सुनकर नहीं, समझकर नहीं; अनुभव करके।

आपने भी सुना। उसमें से थोड़ा कुछ सोचना, पकड़ना, थोड़ा—सा, एक रंचमात्र। और उस रंचमात्र के आस—पास जीवन को ढालने की कोशिश करना। एक छोटा—सा बिंदु भी इसमें से पकड़कर अगर आपने जीवन को बसाने की कोशिश की, तो वह छोटा—सा बिंदु आपके पूरे जीवन को बदल देगा।

छोटी—सी चिंगारी पूरे पर्वत को जला डालती है। चिंगारी असली हो, चिंगारी जीवंत हो। चिंगारी शब्द नहीं जंगल को नहीं जला देगा, चिंगारी जलाएगी।

बहुत—सी चिंगारियां कृष्ण ने अर्जुन को दी हैं। अगर मनपूर्वक सहानुभूति से समझा हो, तो उसमें से कोई चिंगारी आपके मन में भी बैठ सकती है, आग बन सकती है।

लेकिन सिर्फ मुझे सुन लेने से यह नहीं होगा। करने का खयाल मन में जगाए।

जल्दी परिणाम न आएं, घबडाएं मत। आपने शुरू किया, इतना ही काफी है। परिणाम आएंगे; परिणाम सदा ही आते हैं। परमात्मा की तरफ उठाया गया कोई भी कदम व्यर्थ नहीं जाता।